आत्मज्ञान की सरल साधना

ज्ञानदीपक



प्रवृत्ति में निवृत्ति

निर्मोह राजा की कथा

• मूल्य •

चिंतन मनन निदिध्यासन

ॐ

卐ॐ जय सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मन् 卐

॥ नूतन सन् १९६१ के लिए शुभकामनाएँ ॥

भक्तिमयी मीनाक्षी (निजनाम) के नामरूपमें प्रगट जीवात्मा !

आपका वास्तविक असली स्वरूप आत्मा परमात्मा ही है परन्तु अपने वास्तविक असली स्वरूप आत्मा को यथार्थ न जानने के कारण (अर्थात् अज्ञान के कारण) आप अपने नकली (बनावटी) जीवरूप (व्यक्तिरूप) को ही अपना असली स्वरूप जानते हो। इसीके कारण तुम स्थूल शरीर में होने वाले रोगों को अपना रोग जानकर दुःखी होते हो और सूक्ष्मशरीर (मन-बुद्धि अहंकार तथा इन्द्रियों एवं प्राणों के) द्वारा होनेवाले कर्मों तथा सुख-दुःख आदि भोगों को अपना मानकर दुःखी-अशान्त-व्यथित-चिन्तित-परेशान रहते हो। समस्त दुःखों आदि से सदा के लिए छुटकारा (मुक्ति) प्राप्त करके परम आनन्दमें सदैव रहने के अभिलाषी-(इच्छुक) जीवात्मा को यह पुस्तक भलीप्रकार पढ़कर-सममकर, इसमें जो बातें बहुत अच्छी लगें, उनको रेखांकित (चिन्हित) करके उनको बार-बार भलीप्रकार पढ़कर-सममकर हृदयंगम करके आत्मज्ञानकी बातें सुदृढ़ कर लेना चाहिये। इसीलिए यह पुस्तक दीगयी है।

इसी आशा-विश्वास सहित यह पुस्तक सप्रेम समर्पित है कि आप आलस्य-प्रमाद त्यागकरके अपने आत्मास्वरूप का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके परम आनन्दमें सदा स्थित रहें और स्थूल एवं सूक्ष्मशरीरों को माया (त्रिगुणमयी प्रकृति) का सममकर इनसे व्यवहारिक कार्य करते हुए अपने आत्मास्वरूप आनन्दमें सदा प्रेमपूर्वक स्थित रहो। शुभकामनी आपसबका निजनाम।

॥ ओ३म् तत्सत् ॥

आत्मज्ञान की सरळ साधना

ज्ञान दीपक

मनन तथा निदिध्यासन रूप चिन्तन के लिए अरण्य अथवा एकान्त में विचारने योग्य अनुभव पूर्ण विचार।

लेखक : एक आत्मदर्शी महात्माश्री

प्रवृत्ति में निवृत्ति

अगर आप हर एक प्रवृत्ति में अपने को निवृत्ति रूप में देखना चाहते हैं तो इस पुस्तक के विचारने से आप को कर्म में अकर्मणता, भेद में अभेदता और विक्षेप में समता का गोप्य रहस्य का अपने आत्मा में प्रत्यक्ष अनुभव होने लगेगा।

रचयिता : आत्मदर्शी प. पू. श्रीसत्चित् परमानन्द साहिब

निर्मोह राजा को कथा

यह निर्मोह राजा की कथा पढ़ते पढ़ते हृदय अवश्य ही वैराग्यवासित हो जाता है।

रचयिता : प. पू. संत महात्मा श्री हरनामदासजी

एक विरक्त आत्मदर्शी महात्मा को प्रेरणा से

卐

मूल्य :

नित्य चिन्तन–मनन–निदिध्यासन

● आत्मज्ञान की सरोवना ●

ज्ञानदीपक की प्रवृत्ति में निवृत्ति की निर्मोह राजा की कथा

: प्रकाशक :

अमृतलाल अंबालाल मोदी

३७, सरस्वतीनगर सोसायटी,

सिद्धपुर—३८४१५१ (गुजरात)

●

वि. सं. २०४४ इस्वीसन् १९८७

नूतनवर्ष

●

: मुद्रक :

कांतिलाल डी. शाह

भरत प्रिन्टरी

न्यु मार्केट, पांजरापोळ, रीलिफरोड,

अहमदाबाद—३८० ००१

卐 ॐ तत्सत् । सद्गुरवे नमः 卐

नित्य निरन्तर स्मरणीय सर्वभूतहितेरताः सद्गुरुदेव भगवान् महामण्डलेश्वर अनन्त श्री स्वामी भजनानन्द सरस्वती जी महाराज की कृपा से प्रकाशित एवं वितरित यह अमूल्य पुस्तक शुभ-आकांक्षा सहित सादर-सप्रेम समर्पित है।

इस पुस्तक (आत्मज्ञान की सरल साधना) का सारांश यही है कि यथार्थ आत्मज्ञान न होने के कारण (अर्थात् अज्ञान के कारण) ही जीवात्मा अपने को एक व्यक्ति जानकर एक देहसङ्घात (स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीर) में परिच्छिन्न चेतन-आभास को ही 'मैं–मेरा' मानकर, इसमें प्रतीत होने वाले जन्म-मरण; मान-अपमान; सुख-दुःख; भूख-प्यास; शीत-उष्ण; हानि-लाभ; मिलन-वियोग; आना-जाना; जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति इत्यादि समस्त व्यवहारों को सत्य समझ कर सचमुच हर्ष-शोक करता हुआ भव-सागर (संसार-समुद्र) में गोते खा रहा है। यही मूल अज्ञान है। इसी अज्ञान को दूर करने के लिए ही यह अमूल्य पुस्तक (आत्मज्ञान की सरल साधना) सादर समर्पित है।

शुभाकांक्षी आपसबका निजात्मा

कृपया यह अमूल्य पुस्तक वही व्यक्ति ले, जो सङ्कल्प करे कि—

१— मैं इस पुस्तक को अवश्य ही भली प्रकार पढ़ूँगा।

२— इस पुस्तक में जो बातें बहुत अच्छी लगेंगी, उनको मैं रेखाङ्कित (चिह्नित) कर लूँगा। फिर अवश्य उन बातों को थोड़ा-थोड़ा नित्य प्रति पढ़ कर, समझ कर अपने हृदय में धारण करने का प्रयास करूँगा।

३— मेरा परम लक्ष्य यथार्थ आत्म-बोध (ज्ञान) ही है। इसीलिए मैं यह पुस्तक ले रहा हूँ। मैं आत्म-स्वरूप में सुदृढ़ रहने का पूर्ण प्रयास करूँगा।

29/12/90

卐 ॐ जय सत्-चित्-आनन्द आत्मा 卐

भजन

[१]

अखिल विश्व का जो कि परमात्मा है ।
सभी प्राणियों का वही आत्मा है ।
वही आत्मा सच्चिदानन्द मैं हूँ ।
सोऽहं सोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं ॥

जिसे शस्त्र काटे न अग्नि जलावे ।
गलावे न पानी न मृत्यु मिटावे ।
वही आत्मा सच्चिदानन्द मैं हूँ ।
सोऽहं सोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं ॥

अजर अमर जिसको वेदों ने गाया ।
वही ज्ञान अर्जुन को प्रभु ने बताया ।
वही ज्ञान हम सब को गुरु ने सिखाया ।
वही आत्मा सच्चिदानन्द मैं हूँ ।
सोऽहं सोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं ॥

अमर आत्मा है मरणशील काया ।
जो सत् आत्मा है सभी में समाया ।
वही आत्मा सच्चिदानन्द मैं हूँ ।
सोऽहं सोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं ॥

है चन्दा में सूरज में प्रकाश जिसका ।
है तारों में बिजली में आभास जिसका ।
वही आत्मा सच्चिदानन्द मैं हूँ ।
सोऽहं सोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं ॥

नहीं तीनों कालों में है नाश जिसका ।
सभी प्राणियों में है वास जिसका ।
वही आत्मा सच्चिदानन्द मैं हूँ ।
सोऽहं सोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं ॥

[२]

रम रहे आत्माराम, सभी के मन मन्दिर में ।
यह रहस्य कोई-कोई जाने, जब होवे निष्काम ।
सभी के मन मन्दिर में रम रहे आत्माराम ॥१

बिन जाने कंगाल बना है, सत् चेतन सुखधाम ।
सभी के मन मन्दिर में, रम रहे आत्माराम ॥२

जगमग-जगमग ज्ञान प्रकाशे, हर दम आठों याम ।
सभी के मन मन्दिर में रम रहे आत्माराम ॥३

जब जाने नारायण आपको, तब पावे विश्राम ।
सभी के मन मन्दिर में रम रहे आत्माराम ॥४

[३]

भाई जो आत्मज्ञान में डट जाय ।
उसका कट जाय फन्द चौरासी के ॥

निश्चय करे सार-असार,
वृत्ति रहे हरदम आत्माकार ।

तन मन धन जब सब मिथ्या भासे,
तब लग जाय फल बारह मासी के ।

भाई जो आत्मज्ञान में डट जाय,
उसका कट जाय फन्द चौरासी के ॥

जब मन के सब संशय भागे,
तब मिल जाय घर अविनाशी के ।

आत्मा परमात्मा मिले ठौर-की-ठौर,
मिट जाय भ्रम मथुरा काशी के ।

भाई जो आत्मज्ञान में डट जाय,
उसका कट जाय फन्द लाख चौरासी के ॥

[४]

मेरा सत्-चित्-आनन्द रूप, कोई-कोई जाने रे ।
मन वाणी का मैं हूँ द्रष्टा, द्वैत वचन का भी मैं सृष्टा ।
मैं हूँ अनुभव रूप, कोई-कोई जाने रे ॥ मेरा सत् ...
पंच कोश से मैं हूँ न्यारा, तीनों गुणों से भी मैं पारा ।
मैं हूँ साक्षी भूप, कोई-कोई जाने रे ॥ मेरा सत् ....

जनम-मरण मेरा धर्म नहीं है, पाप-पुण्य मेरे कर्म नहीं हैं।
मैं हूँ अज निर्लेपी रूप, कोई-कोई जाने रे ॥ मेरा सत्....

सूर्य चन्द्र में तेज मेरा है, अग्नि में भी ओज मेरा है ।
मैं हूँ अद्वैत स्वरूप, कोई-कोई जाने रे ॥ मेरा सत्....

तीनों लोक का मैं हूँ स्वामी, घट-घट व्यापी अन्तर्यामी ।
ज्यों सूत की माला में सूत, कोई-कोई जाने रे ॥ मेरा सत्....

नारायण निज स्वरूप पहिचानो, आत्मा ब्रह्म में
भेद न मानो ।
मैं हूँ ब्रह्म स्वरूप, कोई-कोई जाने रे ॥ मेरा सत्....

[५]

सच्चिदानन्द मैं, नित्य निर्द्वन्द्व मैं,
जीव माना, बन गया देह में ही दीवाना ।

अपने अज्ञान से मैं भरमाया,
आत्मा होके 'मैं-मैं' मचाया ।

मेरा घर बार है, मेरा परिवार है, मेरा खजाना ।
सीप में चाँदी देख लुभाया ॥ सच्चिदानन्द मैं.....

होके अविनाशी जन्मा, मरा मैं,
रज्जु में सर्प देख डरा मैं ।

यही भ्रम भूल है, इसी से शूल है, जो भुलाना ।
झूठे सपने को है सत्य मानो ॥ सच्चिदानन्द मैं.....

मेरी माया ही मुझ को फँसाती,
खेल रच-रच कर मुझ को दिखाती ।

खेल मैं खेलता, नित्य दुःख झेलता, न अघाना ।
चाहूँ मृगतृष्णा के जल में नहाना ॥ सच्चिदानन्द मैं.....

देह मानव की हीरा-सी पायी,
कर लूँ मैं इस में पूरी कमायी ।

शुद्ध मन को बना, लख स्वरूप अपना,
जो भुलाना ।
यदि पूर्ण आनन्द है पाना ॥ सच्चिदानन्द मैं.....

ज्ञानदीपक

प्र....स्ता....व....ना

जब तलक इन्सान को अपनी खबर आती नहीं।
तब तलक मन की परेशानी कभी जाती नहीं॥

सब शास्त्रों का सार यही है कि अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान ही दुखों की अत्यन्त निवृत्ति तथा शाश्वत शान्ति रूप अक्षय सुख की प्राप्ति में हेतु है। वैसे तो एक से एक उत्तम ग्रन्थ संसार में मौजूद हैं परन्तु उस गम्भीर तथा अथाह सागर से मोती निकाल लेना भी कोई आसान काम नहीं हैं। प्रथम तो उन ग्रन्थों की क्लिष्ट भाषा तथा अलंकारों को समझना ही कठिन है। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न ऋषियों की रचना होने से उनमें मत भेद इतना है कि जब तक किसी अनुभवी गुरु की शरण प्राप्त न हो तब तक संसारी बुद्धि वाला तो चतुर से चतुर व्यक्ति भी चक्कर में पड़ जायेगा और स्वयं अध्ययन करके किसी भी संतोष जनक निर्णय पर नहीं पहुँच सकता। वर्तमान पतन के युग में योग्य तथा अनुभवी महापुरुषों का उपलब्ध होना बडा ही कठिन है। किसी भाग्यशाली को भगवत् कृपा से ही ऐसे अनुभवी महापुरुषों का सत्संग प्राप्त होता है जिनके अनुग्रह से समुद्र से निकाले हुवे मोती सहज ही में मिल जाते हैं। ज्ञान दीपक नाम की यह छोटी सी पुस्तक भी ऐसे ही मोतियों की एक माला है जो हमें एक अत्यन्त गम्भीर तथा अनुभवी संत की कृपा से प्राप्त हुवे हैं और जिनको हम सभी अधिकारी सज्जनों के लाभार्थ प्रकाशित कर रहे हैं। ज्ञानदीपक में दिये गये विचारों में जिस सरल और विलक्षण ढंग से जिज्ञासु का पथ प्रदर्शन किया गया है वह अन्य किसी ग्रन्थ में भी उपलब्ध नहीं है ऐसा हमें पूर्ण विश्वास है। आशा है कि अधिकारी सज्जन ज्ञानदीपक से लाभ उठाकर हमारे श्रम को सफल बनायेंगे।

प्रवृत्ति में निवृत्ति

आज

वर्तमान समय में विशेष कर हर एक मनुष्य का चित्त प्रवृत्ति की ओर आकर्षित हो रहा है। चाहे हम सारा दिन शरीर मन इन्द्रियों से कोई न कोई कर्म करते रहते हैं, तो भी देश के लिए विदेशों से बड़ी-२ मशीनें मंगाई जारही हैं कि जैसे हम अपने जरुरतों का सामना कर सकें। इससे ज्ञात होता है कि यह प्रवृत्ति ही का युग है। परन्तु हमारा मुख्य उद्देशय यह होना चाहिये कि हम प्रवृत्ति में रहते हुए अपने को निवृत्ति याने निर्लेप निशोक रूप में अनुभव करें। साधारण लोग प्रवृत्ति में अपने ही आसक्ति वश अनेक कामनाओं में फँस जाता हैं। इस लिये मनुष्य का प्रवृत्ति में अपने निवृत्ति स्वरूप आत्मज्ञान की परम आवश्यकता है, नहीं तो शरीर, मन, इन्द्रियों की प्रवृत्तिरूपी जाल से कभी हम छूट नहीं सकते। ऐसे भारी बन्धन से मुक्त होने के लिए यह प्रवृत्ति में निवृत्ति नामा अमोल प्रकरण प्रिय पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। कितने सज्जन यह सुन कर बड़े विस्मय को प्राप्त होंगे कि हम प्रवृत्ति करते हुए अपने को निवृत्ति रूप में कैसे अनुभव कर सकते हैं। वेदांत कहता है कि आपके अति समीप शरीर मन इन्द्रियों से लेकर अभिमान पर्यन्त जो भी प्रवृत्ति हो रही है, आप उनसे निराले सदा साक्षीरूप में स्थित रहते हैं। अपने निज निवृत्ति स्वरूप के साक्षात किये बिना कोई भी सिर्फ बाहर की प्रवृत्ति को छोड़ कर अत्यन्त निवृत्ति रूप में रह नहीं सकता। क्योंकि आँखों की पलकों का हिलना, प्राणों का आना जाना अथवा हाथ पांवों का चलना फिरना, कोई भी बन्द नहीं कर सकता। इस लिये गीता में केवल बाहर से प्रवृत्ति रोकने वाले को हठधर्मी कहा गया है। अर्जुन युद्ध की प्रवृत्ति से घबराया हुआ अपने क्षत्रीकर्म को छोडना चाहता था, परन्तु गीता ज्ञान से वह जाग उठा. और भगवान को कहा कि अब जो आप कहेंगे वह मैं करने को तैयार हूँ। क्योंकि गीता श्रवण करने से उसे अपने निवृत्ति स्वरूप आत्मा का ज्ञान हो चुका था।

जैसे रथ का सारा बोझ पृथ्वी पर समझ कर रथ के चलाने वाला घोड़ों की बाग डोर अपने हाथों में रख कर असली लक्ष पर पहुँच जाता हैं। वैसे आप भी इस पुस्तक के यथार्थ सिद्धान्त को समझ कर अपनी प्रवृत्ति का सारा बोझ प्रकृति पर रख कर नित्य निवृत्ति रूप जो साक्षी स्वरूप तुम्हारा आत्मा है, उस स्वरूप के निश्चय को बढ़ा कर अपना जीवन मुक्ति का लक्ष इस वर्तमान समय में प्राप्त करें।

ओ३म् आनन्द

—श्री सत् चित् परमानन्द

निर्मोह राजा की कथा

शुभ उपदेश

जो पुरुष अपनी कमाई के धन से ज्ञान वैराग्य की पुस्तक छपा-कर अधिकारी पुरुषों को दान करें उनको महान पुण्य की प्राप्ति होती है, क्योंकि परिपूर्ण परमात्मा सर्व शक्तिमान के कीर्तनवाले ग्रन्थों से सर्व ज्ञान की प्राप्ति द्वारा अविनाशी सुख प्राप्त होवे है। इस से सर्व दानों के बीच भक्ति ज्ञान के ग्रन्थों का दान करना महान फल है। यदि सज्जन पुरुष परोपकार के वास्ते छपवायें तो छपवा सकते हैं

सफलता का संदेश

मैं संसार में पैदा हुआ इस की खुशी है, कितने दुख कष्ट सहने पडे उन कर भी मैं प्रसन्न हूँ अनेक संयोग वियोग आए और गये उनसे भी आनन्द मिला है। आज जो अखंड एकता का अनुभव कर रहा हूँ इसी अनुभव कर रहा हूँ इसी सफलता को मैं किसी से भी कम नहीं समझता, अगर मेरे को दुनियाँ में और भी रहना पडा तो किसी विशेष लाभ के लिये नहीं, न किसी कमी पूरी करने के लिये। क्योंकि मेरा वास्तविक स्वरूप नित्य तृप्त और कृत्य कृत्य अनुभव हो रहा है, जिसे प्रकृति की प्रवृत्ति व निवृत्ति छू नहीं सकती।

आत्मज्ञान की सरल साधना

वि....ष....या....नु....क्र....म

क्रम	विषय	पृष्ठ
	पहला पुष्प	१–४
१	मुमुक्षु को चेतावनी	१
२	ज्ञान की सात भूमिकायें	२
	दूसरा पुष्प	५–१८
३	आत्म चिन्तन अर्थात् अपनी खोज	५
४	स्वप्न के अनुभव	१०
५	दृष्टा तथा साक्षी का अन्तर	१२
६	समष्टि तथा व्यष्टि	१३
७	अज्ञानी की तीन अवस्थायें	१४
८	तीनों अवस्थाओं और गुणों का सम्बन्ध	१४
९	विश्व तैजस और प्राज्ञ	१५
१०	बोधवान की अवस्था तुरीय	१६
११	जाग्रत तथा स्वप्न की एकता	१७
१२	दृश्य की प्रतीति कैसे होती है ?	१७
	तीसरा पुष्प	१८–६२
१३	मन से बहार सृष्टि नहीं है	१८

क्रम	विषय	पृष्ठ
१४	जन्म–मरण का स्वरूप	२७
१५	बिजली का दृष्टान्त	२९
१६	विवेक	३०
१७	अहंभाव की निवृत्ति	३१
१८	जन्म–मरण क्या है ?	३२
१९	सनीमा तथा स्वप्न	३३
२०	जीवन सनीमा का एक गम्भीर दिग्दर्शन	४२
२१	दीखने मात्र प्राणी पदार्थों का मूल्य मत बढ़ाओ	५०
२२	प्रश्नोत्तर	५३
२३	पद्य	५८
२४	**प्रवृत्ति में निवृत्ति**	६३
२५	जगत क्या है ?	६८
२६	प्रवृत्ति में बन्धन क्यूँ ?	८०
२७	जीव कैसे बना ?	८९
२८	आत्मपालन	१००
२९	निज निवृत्ति का ज्ञान	१०६
३०	हद में बेहद	११४
३१	मुक्त अवस्था	१२४
३२	ज्ञानी का घर	१३९
३३	ज्ञान भी मैं हूँ	१४०

क्रम	विषय	पृष्ठ
३४	निर्मोह राजा की कथा—भूमिका	१४२
३५	निर्मोह राजा का ब्रह्मवेता के पास जाना	१४३
३६	बाँदी का वचन	१४६
३७	राजकुमार की स्त्री का वचन	१४८
३८	,, ,, बहन का वचन	१५६
३९	,, ,, माता का वचन	१७२
४०	राजकुमार का पिता का वचन	१७९
४१	,, ,, भाई का वचन	१८८
४२	,, ,, मित्र का वचन	१९७
४३	राजकुमार का वचन	२११—२२८

आत्मज्ञान की सरल साधना

ज्ञान दीपक—पहला पुष्प

मुमुक्षु को चेतावनी

अधिकार निर्णय

१—मुमुक्षु को किसी अनुभवी गुरु की शरण अवश्य ग्रहण करनी चाहिये। अर्जुन ने भी जब तक भगवान श्री कृष्ण की शरण ग्रहण करके शिष्यत्व स्वीकार नहीं किया तब तक भगवान की कोई बात उसकी समझ में नहीं आई।

२—जब तक किसी अनुभवी महापुरुष की शरण ग्रहण नहीं की जाती तब तक मुमुक्षु के अधिकार का निर्णय तथा उचित पथ प्रदर्शन भी नहीं हो पाता, और मुमुक्षु अपने अधिकार से ऊंची या नीची पुस्तकें पढ़कर भ्रान्ति में पड़ जाते हैं अर्थात् या तो वह अपने अधिकार से उंची पुस्तकें पढ़कर कर्म उपासना छोड़ देते है या नीची पुस्तकें पढ़कर मन मानी उपासना और कर्म काण्ड में लग जाते हैं, क्या करने से उनका लाभ होगा इस बात का वह स्वयं निर्णय नहीं कर पाते। अपना अधिकार क्या करने में है इसका ठीक ठीक निर्णय गुरु द्वारा ही होता है।

३—कर्म, उपासना तथा ज्ञान का क्रम इस प्रकार है कि पहले निष्काम कर्म तथा उपासना द्वारा अन्तःकरण शुद्ध किया जाता है। अन्तःकरण शुद्ध हो जाने पर ज्ञान मार्ग में प्रवेश और महावाक्यों के श्रवण का अधिकार प्राप्त होता है। अशुद्ध चित्त में यदि वेदान्त शास्त्र पढ़कर कर्म उपासना छोड़ दिये जाते हैं तो ज्ञान

में निष्ठा कदापि नहीं हो सकती। अपितु वाचक ज्ञानी बन जाने से पतन अवश्य हो सकता है। इस लिए मुमुक्षु को ज्ञान मार्ग में प्रवेश करने से पूर्व अपने अधिकार का निर्णय अवश्य कर लेना चाहिये।

४—चित्त शुद्धि का मापदण्ड वासना है। संसार की वासनाओं से जब मन विवेकपूर्वक पूर्णतः उपराम और उदासीन हो जाये तब अन्तःकरण शुद्ध होता है। वासना रहते हुवे कर्म उपासना नहीं छोड़ना चाहिये।

५—शुद्ध चित्त में ज्ञान स्वतः उपजता है और निष्ठा में परिणित हो जाता है। महापुरुषों का कहना है कि यदी अन्त करण शुद्ध हो चुका है तो मुमुक्षु को श्रवण काल में ही साक्षात्कार हो जाता है चित्त शुद्ध हो जाने पर मुमुक्षु को ज्ञान की सातों भूमिकाओं की प्राप्ति क्रमशः करनी चाहिये। वह सात भूमिकायें इस प्रकार हैं।

ज्ञान की सात भूमिकायें

१–शुभेच्छा, २–सुविचारणा, ३–तनुमानसा, ४–सत्त्वापत्ति, ५–असंसक्ति, ६–पदार्थाभावनी, ७–तुरीयगा।

सातों भूमिकाओं का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

१. **शुभेच्छा :** पूर्व जन्मों में अथवा इसी जन्म में किये हुवे निष्काम कर्म और उपासना द्वारा जिन का मन शुद्ध और एकाग्र हो गया है उनमें शास्त्रों के अध्ययन तथा सत्संग से विवेक, वैराग्य, षट-सम्पत्ति और मुमुक्षुता यह चारों साधन शीघ्र ही परिपक्व हो जाते हैं। इन चारों साधनों के परिपक्व हो जाने पर मुमुक्षु को आत्मा के जानने की तीव्र इच्छा उत्पन्न होती है। मुमुक्षु की उस तीव्र इच्छा का नाम शुभेच्छा है। यह स्थिति ज्ञान की पहली भूमिका है।

२. **सुविचारणा :** आत्मा को अर्थात् स्वयं को जानने की तीव्र इच्छा से प्रेरित हुआ मुमुक्षु विधिपूर्वक ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण

में जाता है और अपनी सेवा से गुरु को प्रसन्न करके उन से जीव-ब्रह्म की एकता के बोधक वेदान्त महावाक्यों का श्रवण करके जीव ब्रह्म की एकता को बुद्धि में उतारने के लिए अनेकों युक्तियों द्वारा मनन करता है। मुमुक्षु की इस स्थिति का नाम सुविचारणा है। यह ज्ञान की दूसरी भूमिका है। इस भूमिका को प्राप्त हुवे मुमुक्षु के प्रमाणगत तथा प्रमेयगत संशय अर्थात् असम्भावना दोष की निवृत्ति हो जाती है।

३. तनुमानसा : मुमुक्षु ने जीव-ब्रह्म की एकता पर जो श्रवण मनन किया है उस के निर्णय को एकान्त में जाकर निरन्तर चिन्तन रूप निदिध्यासन करके जब मन की स्थूलता अर्थात् बहिर्मुखता नष्ट होकर सूक्ष्मता अर्थात् अन्तर्मुखता प्राप्त होती है। मुमुक्षु की उस अन्तर्मुखता और एकाग्रता की स्थिति को तनुमानसा कहते हैं। यह ज्ञान की तीसरी भूमिका है। इस स्थिति को प्राप्त हुवे मुमुक्षु के विपर्यय दोष अर्थात् विपरीत भावना की भी निवृत्ति हो जाती है।

नोट–वेदान्ता शास्त्रों में जीव ब्रह्म का भेद प्रतिपादन किया है या अभेद प्रतिपादन किया है, ऐसी शंका को प्रमाणगत संशय कहते हैं। और जीव ब्रह्म का भेद सत्य है या अभेद सत्य है ऐसी शंका को प्रमेयगत संशय कहते हैं। यह दोनों संशय मिलकर असम्भावना दोष कहाते हैं।

४. सत्त्वापत्ति : जब श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा मुमुक्षु के संशय और विपर्यय दोष निवृत्त हो जाते हैं तो मुमुक्षु बिलकुल संकल्प रहित अवस्था को प्राप्त होता है। इसी अवस्था को निर्विकल्प सहज समाधि कहते हैं। इस प्रकार इस अवस्था में मुमुक्षु को अपने स्वरूप का पूर्णज्ञान रूप साक्षात्कार हो जाता है। इस समय उस का अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध होने के कारण उसको तत्त्व-ज्ञानयुक्त मन अर्थात् सत्व की प्राप्ति होती है। इसलिए इस भूमिका का नाम सत्त्वापत्ति है। यह ज्ञान की चौथी भूमिका है। इस स्थिति

को प्राप्त हुवा मुमुक्षु जीवन मुक्त कहाता है और वह जन्म मरण के चक्कर से छूट जाता है!

५. असंसक्ति : निदिध्यासन के निरन्तर अभ्यास द्वारा निर्विकल्पता की परिपक्वता से जब जीवन्मुक्त की अहंता ममता रूप आसक्ति बिलकुल निकल जाती है तो उस सर्वथा आसक्ति अभाव की स्थिति को असंसक्ति कहते हैं। यह ज्ञान की पांचवीं भूमिका है। इस स्थिति में जीवनमुक्ति का विशेष आनन्द मिलता है।

६. पदार्थाभावनी : अतिशय निर्विकल्प समाधि के निरन्तर अभ्यास से देहादिकों में से जीवनमुक्त की दृश्यबुद्धि का अत्यन्त अभाव हो जाता है और समस्त दृश्य की अधिष्ठान ब्रह्म रूप से प्रतीति होने लगती है। इस स्थिति का नाम पदार्थाभावनी है। यह ज्ञान की छट्ठी भूमिका है। आनन्द की विशेषता की माप से यह जीवन मुक्ति की तीसरी भूमिका है।

७. तुरीयगा : चौथी तथा पांचवीं भूमिका में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय रूप त्रिपुटी की प्रतीति मिथ्या बुद्धि के साथ भाव रूप में होती रहती है। छट्ठी भूमिका में सर्वत्र अधिष्ठान ब्रह्म की प्रतीति रूप त्रिपुटी के अभाव की प्रतीति रहती है त्रिपुटी के भाव अभावरूप प्रतीति का भी जहाँ अभाव है अर्थात् जहाँ अधिष्ठानब्रह्म रूप से भी प्रतीति नहीं होती उस स्थिति का नाम तुरीयगा है। इसी का नाम विदेह मुक्ति है। यह ज्ञान की सातवीं भूमिका है। इस स्थिति में पहुंचा हुआ जीवनमुक्त विदेह मुक्त कहाता है।

इस प्रकार पहली तीन भूमिकायें तत्त्वज्ञानरूप जीवन्मुक्ति का साधन है। चौथी भूमिका जीवनमुक्ति की है। पांचवीं, छट्ठी और सातवीं भूमिकायें जीवनमुक्ति के विशेष आनन्द का साधन है।

दूसरा पुष्प

आत्म चिन्तन अर्थात् अपनी खोज

ज्ञान की पहली भूमिका को प्राप्त हुआ मुमुक्षु गुरु की शरण में जाकर प्रश्न करता है और गुरुदेव उसका उत्तर देते हैं।

मुमुक्षु—श्री गुरुदेव ! मैं शरीर नहीं हूँ अपितु साक्षी आत्मा हूँ यह बात मेरी समझ में नहीं आती। इसको भली प्रकार समझाने की कृपा कीजियेगा।

गुरुजी— बेटा ! तेरा शरीर से भिन्न होना तो इतना प्रत्यक्ष है कि अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता ही नहीं है। परन्तु फिर भी तू यह कहता है यह बात मेरी समझ में नहीं आती। तू अपने आप को बुद्धि से समझना चाहता है इसी से तुझे कठिनाई हो रही है। तू बुद्धि का विषय तो है ही नहीं। जब बुद्धि होती है तू छिपा रहता है। जब तू प्रत्यक्ष अनुभव होता है तो बुद्धि उपस्थित नहीं होती। तो बुद्धि बेचारी तुझे कैसे जान सकती है। तू तो बुद्धि सहित समस्त जड़ चेतन जगत का मूल कारण है। कार्य अपने कारण को कदापि जानने में समर्थ नहीं होता। इसलिए बुद्धि तुझे नहीं जान सकती। तेरा तो सदा ही, सर्वत्र ही विद्यमान होना स्वतः सिद्ध है परन्तु तू अविद्या के आवरण के कारण अपना अनुभव नहीं कर पाता। समस्त स्थावर जंगम जगत की प्रतीति, स्थिति और लय जिस बोध मात्र सत्ता में होता रहता है, वही बोध मात्र आत्म सत्ता तेरा अपना आप है, तू शरीर तो हो ही नहीं सकता।

मु०— पिताजी ! मेरी समझ में तो अब भी कुछ नहीं आया । इस प्रकार तो पुस्तकों में भी पढ़ा है । किसी सरल युक्ति द्वारा समझाने की कृपा होनी चाहिये जिस से मेरी अल्प बुद्धि में भी बैठ सके ।

गु०— अच्छा, अब तू स्वप्न के अनुभव को काम में ला । स्वप्न तो तू ने अनेकों बार देखे होंगें । स्वप्न के अनुभव से अपने आपको तू इस प्रकार समझ कि स्वप्न से जाग कर जो स्वप्न का हाल बताता है वही स्वप्न का साक्षी तेरा वास्तविक स्वरूप है । तू ही बता कि स्वप्न का हाल बताने वाला कौन है ?

मु०— पिताजी ! स्वप्न का हाल बताने वाला तो मैं ही हूँ । स्वप्न का हाल तो मैं ही बताता हूँ । साक्षी को तो मै नहीं जानता ।

गु०—क्योंकि जाग कर स्वप्न की घटनाओं की तू गवाही देता है, इसलिए तू ही साक्षी है । क्या तू अपने आप को नहीं जानता जो यह कहता है कि मैं साक्षी को नहीं जानता ?

मु०—नहीं पिताजी ! अपने आप को तो मैं जानता हूँ । भला अपने आप को कौन नहीं जानता ?

गु०—नहीं वत्स ! अपने आप को सब नहीं जानते । अपितु यह कहना चाहिये कि अपने आप को तो कोई बिरला ही जानता है । जो स्वयं को जान लेता है शंकायें तो उसकी भी मिट जाती हैं परन्तु निष्ठा वाले के तो शोक मोह भी जड़ मूल से नष्ट हो जाते हैं । तू तो अभी अपने आप को जानता भी नहीं । इसी लिए तो शकायें उठ रही हैं । अच्छा यदि तू अपने आपको जानता है तो बता कि स्वप्न देखने वाला "तू" कहां है ? उस स्वप्न देखने वाले के हम दर्शन करना चाहते हैं ।

मु०— पिताजी! वह तो मैं ही हूं जिसने स्वप्न देखा था। सो मैं तो आपके सामने खड़ा हूँ।

गु० — मेरे सामने तो तेरा साढ़े तीन हाथ का शरीर खड़ा है। और तो मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता। क्या इसी हाड़मांस के शरीर ने स्वप्न देखा था? क्या यह तू सच कह रहा है कि स्वप्न देखने वाला "तू" मेरे सामने खड़ा है? यह शरीर तो तेरी बुद्धि के अनुसार भी उस समय सोया पड़ा था। क्या स्वप्न देखने वाली यही आंखें थीं? क्या स्वप्न में चलने वाले यही पैर थे? क्या स्वप्न में बोलने और खाने वाला यही मुंह था? क्या स्वप्न में गंगा में स्नान इसी शरीर ने किया था? तनक सोच कर बता कि क्या तू यह सच कह रहा है कि स्वप्न देखने वाला "तू" यही है जो मेरे सामने खड़ा है?

मु०— कुछ देर तो उत्तर देने में चकराया परन्तु फिर बोला कि, पिताजी! यह तो आप सच कहते हैं कि यह शरीर तो उस समय सोया पड़ा था। यह शरीर तो न स्वप्न देखने वाला है और न स्वप्न में गंगा में स्नान करने वाला हैं। इस शरीर का तो स्वप्न में कहीं पता भी नहीं था। इस से तो यही अनुमान होता है कि स्वप्न देखने वाला और स्वप्न में गंगा में स्नान करने वाला स्वप्न वाला ही शरीर था। वह तो अब नहीं है। उस को मैं आप को दर्शन कराने को कहाँ से लाऊं।

गु०— अरे! अब यह क्या कहने लगा कि स्वप्न देखने वाला तो अब नहीं है, मैं उसे कहां से लाउँ। अभी अभी तो यह कह रहा था कि स्वप्न देखनेवाला मैं तो आपके सामने खड़ा हूँ। इतनी ही देर में वह कहाँ चला गया? क्या यह पहले झूठ कहा था कि मैं स्वप्न देखने वाला तो आपके सामने मौजूद हूँ?

शि०— नहीं, पिताजी ! यह बात तो ठीक ही है कि स्वप्न तो मैं ने ही देखा था ।

गु०— फिर अब यह क्यों कहने लगा कि जिसने स्वप्न देखा था वह तो अब नहीं है । तेरे ऐसा कहने का तो यह तात्पर्य होगा कि तू यह कह रहा है कि मैं तो अब नहीं हूँ । यह तो तू कह सकता है कि स्वप्न में जिसने गंगा में स्नान किया था वह तो अब नहीं है परन्तु यह कैसे कह सकता है कि जिसने स्वप्न दृश्य को देखा था वह अब नहीं है? वह न होता तो यह कौन बताता कि स्वप्न में ऐसा ऐसा देखा था । स्वप्न देखने वाला "तू" तो अब भी मौजूद ही है तब ही तो यह कह रहा है कि स्वप्न तो मैं ने ही देखा था, सो मैं मौजूद हूँ । तू मौजूद तो अवश्य है परन्तु तू स्वयं को जानता नहीं । इसीलिए कह उठा कि स्वप्न देखने वाला तो अब मौजूद नहीं है । तनक सोच कि जब तू यह कहता है कि स्वप्न तो मैंने ही देखा था और साथ ही यह भी कहता है कि स्वप्न देखनेवाला तो अब मौजूद नहीं है । तो इसका तात्पर्य तो यही होगा कि तू अपना ही अभाव बता रहा है । अब बता कि स्वप्न देखने वाला "तू" अब मौजूद है या नहीं?

शि० पिताजी ! मैं तो हूँ । "मैं नहीं हूँ" ऐसा कहना तो कभी सम्भव ही नहीं है।

गु० जब "तू" स्वप्न देखने वाला मौजूद ही है तो तू हमें अपने दर्शन करा दे । तेरे ही तो हम दर्शन करना चाहते हैं । तू ही तो साक्षी है । जब तू यह कहता है कि स्वप्न देखने वाला "तू" मौजूद है तो उसके दर्शन कराने में तुझे क्या कठिनाई है?

मु० पिताजी ! मैं तो चक्कर में पड़ गया । विचार से तो यही पता लगता है कि जाग्रत वाला शरीर भी स्वप्न देखने वाला नहीं है और स्वप्न वाला शरीर भी स्वप्न देखने वाला नहीं था । क्योंकि स्वप्न देखने वाला जाग्रत तथा स्वप्न दोनों अवस्थाओं में मौजूद होना चाहिये तब ही तो स्वप्न में दृश्य को देख कर जाग्रत में उस का हाल बता सकेगा । परन्तु जाग्रत का शरीर स्वप्न में नहीं होता और स्वप्न का शरीर जाग्रत में नहीं होता । इसलिए शरीर तो कोई सा भी स्वप्न देखने वाला नहीं हो सकता । दोनों शरीर अपनी अपनी अवस्था के दृश्य की पंक्ति में तो होते हैं परन्तु दृष्टा नहीं हो सकते । देखने वाला तो दृश्य से भिन्न ही होना चाहिये । वह दृष्टा कौन है ? और कहाँ है ? इस का तो मुझे पता नहीं चलता । स्वप्न देखने वाले को न तो मैं ने कहीं स्वप्न में देखा और वह न कहीं अब दिखाई दे रहा है । मैं आपको उस के दर्शन कैसे कराऊं । मेरी बुद्धि तो अब इस में कुछ काम नहीं करती । **बडा ताज्जुब है कि स्वप्न देखने वाला स्वप्न में भी था और अब भी मौजूद है परन्तु वह दोनों अवस्थाओं में मौजूद होते हुवे भी दिखाई कहीं भी नहीं देता । इसमें भी सन्देह नहीं कि स्वप्न देखने वाला हूँ भी मैं ही । इसका तात्पर्य तो यह हुवा कि मुझे आज तक न तो किसी और ने देखा और न मैंने ही आज तक कभी अपने आप को देखा ।**

मेरी बुद्धि तो हैरान है । मैं अपने विषय में कुछ भी निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ । आप ही इस पहेली को हल करने की कृपा कीजियेगा । अब तो यही कहना पड़ता है कि मैं अपने आप को नहीं जानता ।

गु०—वत्स ! पहले तू अपने स्वप्न के अनुभव को साफसाफ नोट

करले जिससे बार बार भ्रान्ति लगने की सम्भावना न रहे। यह स्वप्न के अनुभव का नोट इस मार्ग में पग पग पर तेरा पथ प्रदर्शन करेगा।

स्वप्न के अनुभव

१—तू ने स्वप्न के अनुभव से यह निश्चय किया कि स्वप्न में तेरे दो स्वरूप थे। एक "तू" स्वप्न शरीर के रूप में स्वप्न दृश्य की पंक्ति में था दूसरे रूप में तू अपने शरीर सहित समस्त स्वप्न दृश्य को देख रहा था।

२—दूसरा अनुभव स्वप्न का यह है कि जागने पर तेरा शरीर रूप तो अन्य दृश्य के साथ ही लोप हो जाता है परन्तु स्वप्न दृश्य को देखने वाला "तू" जागने पर भी मौजूद रहता है।

३—तीसरा अनुभव स्वप्न का यह है कि स्वप्न देखने वाला तेरा स्वरूप मौजूद होते हुवे भी दिखाई नहीं देता अर्थात् निराकार है।

४—चौथा अनुभव स्वप्न का यह है कि तेरा वास्तविक स्वरूप निराकार दृष्टा या साक्षी मात्र है। तू शरीर नहीं है।

क्योंकि तू अपने अभाव को किसी अवस्था में भी स्वीकार नहीं करता। जाग्रत में बड़े विश्वास के साथ कहता है कि मैं सुषुप्ति में बड़े सुख से सोया और स्वप्न में मैं ने ऐसा ऐसा देखा। तेरे ऐसे कहने से यह सिद्ध होता है कि तू तीनों अवस्थाओं में मौजूद था। शरीर तो अवस्था बदलते ही बदल जाता है। जाग्रत का शरीर स्वप्न में नहीं रहता और स्वप्न का शरीर जाग्रत में लोप हो जाता है। सुषुप्ति में जाग्रत का या स्वप्न का कोई सा शरीर भी नहीं होता यदि तू शरीर होता तो अवस्थाओं

के शरीरों के साथ साथ अपना बदलना या अपना अभाव भी स्वीकार करता। परन्तु तू अपने बदलने का या अपने अभाव को कदापि स्वीकार करने को तैयार नहीं होता। इसलिए तू शरीर कोई सा भी नहीं हो सकता अपितु तेरा वास्तविक स्वरूप निराकार दृष्टा या साक्षी ही है।

५—पांचवाँ अनुभव स्वप्न का यह है कि बिलकुल खयाली और अनहुवा दृश्य भी सत्य सा प्रतीत होता है। और दीखते समय उनमें सत्य बुद्धि हो जाने से मिथ्या प्राणी पदार्थों से भी सत्य की नाईं ही हानि लाभ और सुख दुःख होता है।

६—छट्ठा अनुभव स्वप्न का यह है कि अवस्था बदले विना मिथ्यादृश्य में भी मिथ्याबुद्धि नहीं हो पाती अपितु सत् बुद्धि ही बनी रहती है।

७—सातवाँ अनुभव स्वप्न का यह है कि कारण तथा कार्य की प्रतीति साथ साथ होती है परन्तु कार्य कारण में देश काल के भेद की भ्रान्ति रहती है।

८—आठवाँ अनुभव स्वप्न का यह है कि अनहुवे प्रातीतिक शरीरों में भी रागद्वेषपूर्ण व्यवहार दीखना सम्भव है।

मु० श्री गुरुदेव! मैं ने आपकी आज्ञा के अनुसार स्वप्न के आठ अनुभव तो लिख लिए। अब मुझे क्या आज्ञा है?

गु० अब तू अपने अनुभव को शास्त्रों से मिला। शास्त्र मुमुक्षु से कहते हैं कि तू शरीर नहीं है अपितु निराकार दृष्टा या साक्षी है। जो सदा एक रस रहने वाला और अविनाशी है। तेरे स्वप्न के अनुभव से भी यही सिद्ध हुआ कि तू शरीर नहीं है अपितु तेरा वास्तविक स्वरूप निराकार है और तेरी संज्ञा अधिक से अधिक दृष्टा या साक्षी हो सकती है तेरा अभाव भी कभी नहीं

होता। इसलिए अविनाशी है। तू दृश्य की पंक्ति में नहीं हो सकता यही कारण है कि तू न अपने आप को स्वयं देख सके और न तुझे कोई दूसरा देख शके। अपना अनुभव तो सब को स्वतः ही हो रहा है। अपने आप को जानने के लिए बुद्धि बल लगाने की आवश्यकता नहीं है। अपने को बुद्धि या इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जाता अपितु अपना तो अपने में ही अनुभव होता है।

अब तू खूब अच्छी तरह समझ ले कि तू शरीर नहीं है बल्कि सदा एकरस रहने वाला, कभी भी अनुपस्थित न होने वाला साक्षी आत्मा है। तेरा स्वरूप निराकार है। कुछ करने कराने का सम्बन्ध शरीरों से है। करना कराना तेरे में नहीं है। अपने आपको कर्मों का कर्ता और फल का भोक्ता मानना भ्रान्ति है। अब तू देहाध्यास से ऊपर उठ और अपने वास्तविक स्वरूप में निष्ठा पक्काने के लिए मनन और निदिध्यासन में लग कर निरन्तर अभ्यास कर। क्या अब भी कोई शंका है?

मु० पिताजी! इस सम्बन्ध में तो मुझे अब कोई शंका नहीं रही। मैंने भलि प्रकार समझ लिया कि मैं शरीर नही हूँ बल्कि निराकार साक्षी मेरा वास्तविक स्वरूप है। मैं कर्मों का कर्ता और फल का भोगता भी नहीं हूँ। आपने अपनी विलक्षण युक्ति द्वारा मेरे अज्ञान को बिलकुल निवृत्त कर दिया है। अब मुझे दृष्टा तथा साक्षी का भेद खोलने की कृपा कीजिएगा।

दृष्टा तथा साक्षी का अन्तर

गु० बेटा! दृष्टा और साक्षी में केवल काल का भेद है। जब कोई व्यक्ति किसी घटना को देख रहा होता है तो देखते समय वह

उस घटना का दृष्टा कहाता है ओर घटना समाप्त हो जाने पर वही व्यक्ति बीती हुई घटना का साक्षी अर्थात् गवाह कहाता है। इसी प्रकार तू जाग्रत तथा स्वप्न में वर्तमान दृश्य का दृष्टा और बीते हुवे दृश्य का साक्षी होता है। सुषुप्ति में कोई दृश्य नहीं होता तो तेरी संज्ञा दृष्टा भी नहीं रहती। सुषुप्ति में तू केवल साक्षी होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि तेरी साक्षी संज्ञा तो तीनों अवस्थाओं में रहती है परन्तु सुषुप्ति में दृष्टा संज्ञा का भी अभाव हो जाता है। मैंने तेरे को उत्तम अधिकारी जान कर शुरू से ही साक्षी शब्द का प्रयोग किया है और दृष्टा तथा साक्षी का भेद भी खोल दिया है।

समष्टि तथा व्यष्टि

मु० पिताजी! समष्टि और व्यष्टि पर भी थोड़ा प्रकाश डालने की कृपा कीजिएगा।

गु० बेटा! निराकार दृष्टा रूप में तू ही समष्टि है और शरीर से मिला हुआ दृश्य की पंक्ति में तू ही व्यष्टि है। इस को भी स्वप्न के अनुभव से समझ ले। स्वप्न में समस्त स्वप्न दृश्य तुझ दृष्टा की कल्पना ही तो होता है। इसलिए दृष्टा रूप में तू ही तो स्वप्न सृष्टि का सृष्टा कहा जायेगा। सारी स्वप्न सृष्टि तेरे में से ही तो निकल पड़ती है और जागने पर तेरे में ही समा जाती है। स्वप्न दृश्य का प्रत्येक व्यक्ति व्यष्टि और स्वप्न दृष्टा समष्टि कहा जायेगा। इसी प्रकार जाग्रत को भी जान ले। जाग्रत दृष्टा समष्टि और जाग्रत का प्रत्येक पिण्ड व्यष्टि है। तेरे आत्मा से भिन्न न समष्टि है न व्यष्टि है। साकार रूप में तू ही उपासक है और निराकार रूप में तू ही उपास्य है। साकार

साकार रूप में तू ही भक्त है और निराकार रूप में तू ही भगवान है है। उपासना और भक्ति के सिद्ध हो जाने पर उपासक उपास्य रूप और भक्त भगवान रूप हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि उपासना और भक्ति से जब अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है तो साधक का द्वैतभाव समाप्त हो जाता है। उस समय की स्थिति में उपासक और उपास्य और भक्त और भगवान की द्वैत भावना को स्थान ही नहीं रहता।

अज्ञानी की तीन अवस्था जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति

जब तक वासना रहती है तबतक अन्तःकरण मलीन और जीव अज्ञानी रहता है। उस समय अन्तःकरण स्थित तीनों गुण भी मलीन ही रहते हैं। जब निर्वासनिक होने पर अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है तब तीनों गुण भी शुद्ध हो जाते हैं। मलीन और शुद्ध गुणों में यह अन्तर है कि मलीन सत को मलीन रज और तम दबा लेते हैं परन्तु शुद्ध सत्त्व चाहे कितना भी न्यून क्यों न हो वह शुद्ध रज और तम से दबता नहीं बल्कि रज और तम को दबा लेता हैं। अवस्थाओं के बदलने और दृश्य की प्रतीति में तीनों गुण ही हेतु हैं।

तीनों अवस्थाओं और गुणों का सम्बन्ध

सतों गुण का परिणाम ज्ञान, रजो गुण का परिणाम क्रिया और तमो गुण का परिणाम जड़ता और अज्ञान होता है। सत प्रधान अवस्था का नाम जाग्रत, रज प्रधान का स्वप्न और तम प्रधान का निद्रा या सुषुप्ति है। इसीलिए जाग्रत में वर्तमान का ज्ञान और बीते हुवे स्वप्न तथा सुषुप्ति की स्मृति रहती है जो सत की प्रधानता का सूचक है। स्वप्न में वर्तमान का ही थोड़ा सा ज्ञान रहता है जाग्रत की या सुषुप्ति की याद नहीं रहती परन्तु क्रिया की

प्रधानता होती है। तनक सी देर में जीवात्मा कहीं से कहीं हजारों योजन दूर चली जाती है। यह स्वप्न में रज की प्रधानता का सूचक है। स्वप्न में रज मलीन सत को दबा लेता है इसी से ज्ञान की न्यूनता हो जाती है। निद्रा में मलीन तम मलीन सत और रज को दबा लेता है इसीलिए सुषुप्ति में न ज्ञान रहे और न क्रिया रहे अपितु घोर अज्ञान और जड़ता की अवस्था होती है। इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि जाग्रत में सत प्रधान होने से स्वप्न और सुषुप्ति की स्मृति भी बनी रहती है। स्वप्न में सत की न्यूनता और रज की अधिकता होने से स्मृति रूप ज्ञान नहीं रहता और सुषुप्ति में तम की प्रधानता के कारण किसी प्रकार का ज्ञान भी नहीं रहता। यह तीनों अवस्था अज्ञान काल की ही हैं।

विश्व, तैजस और प्राज्ञ

अज्ञान काल में जीवात्मा अपने को शरीर से भिन्न करके नहीं जानता बल्कि जाग्रत में स्वयं को स्थूल शरीर मान कर स्थूल शरीर के धर्मों को अपने धर्म मानता है। इसीलिए शरीर को रोगी, निर्बल और अस्वस्थ देख कर स्वयं को रोगी, निर्बल और अस्वस्थ मान कर महा दुखी होता है और शरीर को गोरा, स्वस्थ और बलवान देख कर स्वयं को गोरा, स्वस्थ और बलवान मान कर हर्षित होता है। उस समय जीवात्मा की संज्ञा विश्व होती है जो जाग्रत का अभिमानी कहाता है।

स्वप्न में जीवात्मा स्वयं को सूक्ष्म शरीर मान कर सूक्ष्म शरीर के धर्मों को अपने धर्म मानता है। उस स्वप्न के अभिमानी का नाम तैजस होता है।

सुषुप्ति में जीवात्मा कारण शरीर के साथ मिलकर कारण शरीर का धर्म जो अज्ञान है उसे अपना धर्म मानकर जागने पर कहता है कि सुषुप्ति में तो मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं था। सुषुप्ति में उसकी संज्ञा प्राज्ञ होती है।

इस प्रकार विश्व, तैजस, प्राज्ञ संज्ञा भी अज्ञान काल की तीनों अवस्थाओं के अभिमानियों की हैं।

बोधवान की अवस्था तुरीया

ज्ञान काल में चित्त शुद्ध हो जाने के कारण शुद्ध सत्व कितना भी न्यून क्यों न हों वह रज और तम से दबता नहीं इसलिए बोधवान का ज्ञान भी जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति में एक रस बना रहता है। उसका ज्ञान स्वप्न और सुषुप्ति में कम या लोप नहीं होता। इसलिए उस को जैसे जाग्रत में स्वप्न तथा सुषुप्ति की स्मृति रहती है वैसे ही उस को स्वप्न में जाग्रत तथा सुषुप्ति की और सुषुप्ति में जाग्रत तथा स्वप्न का ज्ञान स्मृति बना रहता है। इसी अवस्था का नाम तुरीया है। इसीलिए कहते हैं कि बोधवान कभी सोता नहीं अर्थात् उसके ज्ञान का कभी अभाव नहीं होता। ज्ञान का अभाव या बेहोशी तो मलीन तमोगुण का परिणाम है। मलीनता बोधवान में रहती नहीं इसलिए उसको बेहोशी भी कभी नहीं होती। बोधवान की सुषुप्ति तो समाधि है। जैसे योगी को समाधि में होश रहता है और आनन्द को भोगता है वैसे ही बोधवान को सुषुप्ति में होश रहता है और वह भी वहाँ आनन्द को भोगता है। इस प्रकार जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीनों अवस्था अज्ञानी की हैं। बोधवान की तो एक तुरीया अवस्था है उसी में तीनों अवस्थाओं का समावेश है।

संक्षेप में इन अवस्थाओं को इस प्रकार भी कह सकते हैं कि दृश्य में सत बुद्धि का नाम जाग्रत है, दृश्य में मिथ्या बुद्धि का नाम स्वप्न है और दृश्य के अभाव का नाम सुषुप्ति है।

जाग्रत और स्वप्न की एकता

ध्यान से देखो तो बुद्धि भेद से एक ही प्रतीति के जाग्रत और स्वप्न दो नाम हैं। जब तक प्रतीति में सतबुद्धि रहती है इसे जाग्रत कहते हैं। जब मिथ्या बुद्धि हो जाती है तो उसी प्रतीति को स्वप्न कहने लगते हैं। जाग्रत तथा स्वप्न में भेद तो उसी समय तक रहता है जब तक दृश्य में मिथ्याबुद्धि नहीं होती। दृश्य में मिथ्या बुद्धि हो जाने पर जाग्रत और स्वप्न का भेद जाता रहता है। तुरीया अवस्था को प्राप्त हुवे जीवन मुक्त महा-पुरुषों का अनुभव है कि जाग्रत के प्राणी पदार्थ भी स्वप्न और सुषुप्ति में इसी प्रकार लोप हो जाते हैं जैसे स्वप्न के प्राणी पदार्थ जाग्रत में लोप हो जाते हैं। इसलिए उनके अनुभव से जाग्रत और स्वप्न में कोई भी भेद नहीं रहता। अज्ञान काल में ऐसा अनुभव होता नहीं इसलिए अज्ञानी लोक भ्रान्ति से जाग्रत और स्वप्न दो अवस्था मानते रहते हैं। वास्तव में स्वप्न और जाग्रत में कोई भेद नहीं है।

दृश्य की प्रतीति कैसे होती है?

जैसे शीशे में से सूर्य के आभास की किरने निकलती हैं वैसे ही अन्तःकरण में से आत्मा के आभास की किरणें निकलती हैं। आत्मा के आभास को चिदाभास और चिदाभास की किरणों को वृत्ति कहते हैं। जैसे रंगीन और वृत्ताकार शीशे में पड़े सूर्याभास की किरणें अपने साथ शीशे के रंग तथा आकार को भी ले जाती हैं

और पर्दे पर या दीवार पर शीशे के रंग और आकार के प्रकाश के रूप में परिणित हो जाती हैं वैसे ही चिदाभास की वृत्तियां भी अन्तःकरण के तीनों गुणों को साथ ले जाती हैं और दृश्य के रूप में परिणित हो जाती हैं। चित्त वृत्ति सत, रज और तम अंश क्रमशः ज्ञान, क्रिया और पिण्ड के रूप में भासने लगते हैं इस प्रकार समस्त प्रपंच दृश्य चित्त वृत्ति के तीनों गुणों के परिणाम से इतर और कुछ भी नहीं है। आभास की अपनी कोई सत्ता नहीं होती। इसलिए इस जगत दृश्य की भी कोई सत्ता नहीं है अर्थात् जगत मिथ्या है।

— —

तीसरा पुष्प

मन से बाहर कोई सृष्टि नहीं है

"कुछ भी करो कहीं भी जाओ जो दीखेगा सत्य नहीं"

जब समाधि में चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता हैं तो वहाँ कोई सृष्टि भी नहीं भासती। सुषुप्ति में मन का व्यापार बन्द होता हैं तो वहाँ भी कोई दृश्य नहीं होता। जाग्रत तथा स्वप्न में मन होता है तो सृष्टि भी होती है। इस से यह तो सिद्ध हो जाता है कि मन के साथ सृष्टि का घनिष्ट सम्बन्ध है। मन है तो सृष्टि होती है। मन नहीं तो सृष्टि का भी अभाव होता है।

आध्यात्मिक विज्ञान की यह खोज है कि मन एक चतुर फोटोग्राफर का काम करता है। जो विचार भी बुद्धि में आता है उस का तुरन्त मन पर फोटो खिंच जाता है। उस फोटो को ही संसार कहते हैं। यदि वह विचार कर्म के रूप में भी आ जाता है अर्थात्

उस विचार के अनुसार मनुष्य कर्म भी कर डालता है तो संस्कार प्रबल हो जाता है। इस प्रकार समस्त मानसिक तथा शारीरिक कर्मों के संस्कार मन पटल पर बनते रहते हैं। यह मन छिपे छिपे गुप्त रूप से चित्र खिचता रहता है, इसलिए इसी मन को चित्रगुप्त कहा जाता है। मन से कोई कर्म भी नहीं छिपाया जा सकता। वह सभी कर्मों का रेकार्ड अपने पास रखता हैं।

पिछले जन्मों में किये हुवे कर्मों के संस्कार जो अभी भोग देने के लिए परिपक्व नहीं हैं परन्तु स्टोर में जमा हैं संचित कहलाते हैं। इस जन्म में जो संस्कार बन रहे हैं वह क्रियमान संस्कार कहलाते हैं। पूर्व के जिन संस्कारों को भोगने के लिए वर्तमान शरीर मिला है वह इस जन्म की प्रारब्ध कहाते हैं। इस प्रकार प्रारब्ध वर्तमान जन्म में खिलने वाले सनीमा की रील है। जन्म पहले शो का आरम्भ और मृत्यु अन्तिम शो का अन्त है।

जो कुछ घटनायें, परिस्थितियाँ या प्राणी पदार्थ इस जन्म में सामने आयेंगे वह सब प्रारब्ध संस्कारों का आभास ही होंगे। जैसे सनीमा में चादर पर घटनाओं और प्राणी पदार्थों के रूप में रील के फोटुओं का केवल आभास ही दृष्टि आता है वैसे ही सृष्टि के रूप में प्रारब्ध रूपी रील के संस्कारों का आभास ही दृष्टि आता है। जब रील में संस्कार सन्मुख होता है तब जाग्रत् या स्वप्न की सृष्टि भासती है और जब कोई संस्कार सन्मुख नहीं होता तो सुषुप्ति होती है। उस समय कोई दृश्य भी नहीं भासता।

इस प्रकार सारी सृष्टि मन में ही है मन से बाहर कुछ भी नहीं है। जैसे नेत्रों पर हरा चशमा लगा लेने से चशमे से बाहर सभी कुछ हरा दृष्टि आने लगता हैं वैसे ही जीवात्मा के बुद्धिरूपी

नेत्रों पर प्रारब्ध संस्कारों से रंगा हुवा मनरूपी चशमा लग जाने से संस्कारों का आभासरूप सृष्टि मन से बाहर दृष्टि आने लगती हैं। जैसे हरा रंग चशमे से बाहर कहीं भी नहीं होता वैसे ही सृष्टि भी मन से बाहर नहीं हैं। जैसे हरा रंग के चशमे से बाहर समझना भ्रान्ति हैं वैसे ही सृष्टि को मन से बाहर समझना भ्रान्ति हैं। यही अज्ञान हैं।

जैसे कोई आदमी लैम्प लेकर अन्धेरे की खोज में चाहे हजारों मील चला जाये परन्तु फिर भी उसे अन्धेरा हाथ नहीं आ सकता क्योंकि प्रकाश उसके साथ हैं। वैसे ही मन को साथ रखते हुवे कोई सृष्टि का अन्त लेना चाहे तो असम्भव है क्योंकि सृष्टि तो मन में ही हैं, जहाँ मन होगा वहाँ सृष्टि अवश्य भासेगी। जैसे लैम्प का प्रकाश जितना दृष्टि आता हैं उतना ही होता हैं। प्रकाश की सीमा से बाहर तो चारों ओर अन्धेरा ही हैं वैसे ही जितना दृश्य जिस समय दिखाई देता हैं उस समय उतना ही संसार हैं। दृश्य की सीमा से बाहर तो सृष्टि का अभाव ही हैं। जैसे लैम्प वाला आदमी यही समझता रहेगा कि हजारों मील तक प्रकाश ही प्रकाश है। वह प्रकाश की पहुंच से बाहर अन्धकार होने को कदापि नहीं मान सकता वैसे ही मन भी जहाँ जाता है वहीं सृष्टि देखता है इसलिए वह दृश्य की सीमा से बाहर सृष्टि के अभाव को कदापि नहीं मान सकता। उसके लिए तो सृष्टि का कहीं अन्त ही नहीं है। जैसे प्रकाश लैंप में ही है परन्तु लैम्प से बाहर भासता है वैसे ही सृष्टि मन में ही है परन्तु मन से बाहर भासती है। जैसे लैम्प को हाथ में से छोड देने पर प्रकाश की वास्तविकता का पता चल जाता है वैसे ही स्वयं को मन से पृथक निश्चय कर लेने पर संसार की पोल खुल जाती है और यह अनुभव हो जाता है कि सृष्टि मन में ही भासती

है। मन से बाहर कोई सृष्टि है ही नहीं। तब वह मग्न होकर गाता है :—

अब हंस ले दिल खोल मनवा अब हंस ले दिल खोल।

स्त्री, पुत्र सम्बन्धी सारे निकले निपट मखौल।
जी चाहे तो बोल किसी से जी चाहे मत बोल॥

अब हंस ले दिल खोल मनवा अब हंस ले दिल खोल।

सांचा जान जगत को प्यारे खोया समय अमोल।
गुरु कृपा से अभी जगत की खुल गई सारी पोल॥

अब हंस ले दिल खोल मनवा अब हंस ले दिल खोल।

तब ही तो महापुरुष कहीं को पत्र लिखने पर ध्यान नहीं देते। वह कहते हैं :—

कहीं को पाती तब लिखे जब कोई बसे विदेश।
मन ही में संसार है तो कहाँ को दे सदेश॥

मान लो सुपने में तुमने देखा कि हम और हमारे चार मित्र बिजनौर से दिल्ली को चले। रिक्षा में बैठ कर बाजार में होते हुवे स्टेशन पर पहुँचे। देखा कि गाड़ी सीठी दे रही है, छूटने को तैयार ही है। जल्दी जल्दी कुली से सामान उठवाकर ट्रेन में सवार हुवे। टिकट नहीं ले सके, गाड़ी छूट गई। मार्ग में टिकट चेकर ने पकड़ लिया। उस से बहुत कहा कि टिकट लेने का समय नहीं मिला, किराया लेकर टिकट बना दो। परन्तु उसने एक न सुनी। दिल्ली का स्टेशन आ गया। टिकट चेकर ने हम सब को पुलिस के हवाले कर दिया। हम सब बड़े घबड़ा रहे हैं। इतने में आंख खुल गई तो अपने को अकेला वहीं पाया जहाँ सोये थे। न वहां दिल्ली का स्टेशन था, न कोई मित्र था, न कोई पुलिस का सिपाही था।

सब के सब आंख खुलते ही लोप हो गये। घबराहट भी जाती रही। यह जान कर कि सपना था बड़ी प्रसन्नता हुई।

सोचो सुपने का अपना शरीर, मित्र, रिक्षा, बाजार, स्टेशन, कुली, सामान, ट्रेन, टिकट चेकर, दिल्ली का स्टेशन और पुलिस के सिपाही आदि सब के सब मन में ही तो भास आये थे। मन से बाहर तो कुछ भी नहीं था। परन्तु सुपने में भी यही भ्रान्ति थी, कि यह सब सच्चा ही है और बाहर ही है। तब ही तो घबराहट हुई। यदि उसी समय भेद खुल जाता कि यह तो मिथ्या प्रतीति मन में ही हो रही है तो घबराने को क्या स्थान था। जैसे सपने के दृश्य की मिथ्या प्रतीति मन में होती है, वैसे ही जाग्रत् जगत की भी मिथ्या प्रतीति मन ही में हो रही है। मन से बाहर कुछ भी नहीं है। अन्तःकरण शुद्ध होने पर जब जाग्रत् दृश्य के स्वप्नवत मिथ्या होने का भेद खुलेगा तब संसार के प्राणी पदार्थों में से रागद्वेष स्वतः ही निकल जायेगा और जीवनमुक्ति का आनन्द प्राप्त होगा।

जगत का आधार मन और अधिष्ठान ब्रह्म है।

आत्मपुराण के अट्ठारवें अध्याय में एक कथा है कि देवताओंने अपने गुरु से प्रश्न किया कि हे भगवान! पूर्व अध्याय के अन्त में आप ने यह वार्ता कथन करी थी कि उपासना करिकै शुद्ध भया है अन्तःकरण जिन का सो मुमुक्षु आत्मज्ञान कूं प्राप्त होवे हैं। हे भगवान तो आत्मज्ञान के श्रवण करने की हम देवता इच्छा करे हैं। आप कृपा करके सो आत्मज्ञान हमारे प्रति कथन करो।

श्री गुरुवाच

१—हे देवताओं! मन है प्रधान जिस विषे ऐसा जो इन्द्रियादि का समूह सूक्ष्मलिंग शरीर है, ता लिंग शरीर तथा मन को भी सो

आत्मा ही साक्षी रूप करिके प्रकाश करे है । जैसे या लोक विषे पट नाना प्रकार के चित्रों का आधार होवे है तैसे ही मन सहित सो लिंग शरीर या स्थूल जगतरूप चित्रों का आधार है। तथा मन विषे जिस जिस अर्थ कूं विषय करने हारी अनेक कोटि वासना रहे हैं। तिन वासनाओं करिके यह सम्पूर्ण संसार प्रवर्तमान होवे है।

(आत्मपुराण अ० १८, पृष्ठ ४)

वर्तमान विज्ञान के युग में सनीमा के दृष्टान्त से इस पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । जैसे सनीमा में चादर को बिजली प्रकाशती है वैसे ही मन सहित लिंग शरीर को आत्मा साक्षीरूप से प्रकाशती है जैसे चादर सनीमा के चित्रों का आधार है वैसे ही मन सहित लिंग शरीर जगत दृश्य का आधार है अर्थात् समस्त जगत दृश्य मन पटल पर ही भासता है ।

२—जैसे एक ही देवदत्त पुरुष अनेक पुरुषों करिकै उच्चारण किये हुवे अनेक शब्दों कूं प्राप्त होवे हैं परन्तु तिन शब्दों के भेद से देवदत्त नामा पुरुष का भेद होवे नहीं। तैसे ही सर्वपदार्थन विषे इदंता रूप जो सामान्य सत्ता आत्मा है ता का भेद सिद्ध होवे नहीं। किनवा या लोक विषे जितने भी पदार्थ हैं तिन सर्वपदार्थन विषे इदंता रूप एकत्व स्वभाव से ही सिद्ध हैं। ता स्वभावसिद्ध एकत्व के विद्यमान हुवे ता पदार्थन विषे शब्दों अथवा नाम रूप के भेद करिके नानात्व कदाचित भी सिद्ध नहीं होवेगा । जो कदाचित नाम-रूप करिके नाना पणा प्रतित होवे है, सो नाना पणा गधर्वनगर की नाई मिथ्या होवेगा। ता मिथ्या मानात्व ते एकत्व की हानि होवे नहीं।

(आत्मपुराण अ० १८, पृ० १०, पंक्ति १७)

इसका तात्पर्य यह है कि सब पदार्थों में नामरूप से दृष्टि हटा कर जो इदं पना है इस का लक्ष्य सामान्य सत्ता या ब्रह्म है। अतः

सर्वपदार्थों में एकत्व स्वभाव से ही सिद्ध है। जैसे सर्प का आधार तो रज्जू है परन्तु अधिष्ठान रज्जू नहीं अपितु इदंता करके रज्जू अथवा सर्प दोनों का अधिष्ठान ब्रह्म ही है वैसे ही जगत दृश्य का आधार मन सहित लिंग शरीर और अधिष्ठान ब्रह्म है ।

३—जैसे कुन्द पुष्प, दुग्ध तथा मोती तीनों विषे श्वेतता धर्म है परन्तु इन तीनों की श्वेतता विषे जो अन्तर है उस कूं नेत्रों ते देख कर भी कोई कथन करने में समर्थ होई सके नहीं तब सर्व इन्द्रियन का अविषय जो आत्मा या ब्रह्म हैं उस कूं कैसे कहा जा सकेगा ।

(आत्मपुराण पृ० १३, प० १७)

इस का तात्पर्य यह है कि स्वयं को या आत्मा को अनुभव करते हुवे भी कथन करने में कोई भी समर्थ नहीं है ।

४—हे देवताओं ! यह आत्म देव जभी जाग्रत् अवस्था कूं प्राप्त होवे है तभी यह आत्म देव जाग्रत् अवस्था के दृश्य कूं उत्पन्न करे है । तथा या स्थूल शरीर कूं उन्पन्न करे है । तथा या स्थूल शरीर से भिन्न बाह्य घटादिकपदार्थन कूं उत्पन्न करे है । और यह आत्मदेव जभी स्वप्न अवस्था कूं प्राप्त होवे है तभी यह आत्मदेव ता सूक्ष्म शरीर कूं उत्पन्न करे है तथा सूक्ष्म शरीर से भिन्न बाह्य वर्तमान रथादिकन कूं उत्पन्न करे है । जभी यह आत्म देव स्वप्न अवस्था का परित्याग करिके जाग्रत् अवस्था विषे आवे है तभी तिन स्वप्न के पदार्थन कूं देखता नहीं यातें यह आत्मदेव स्वप्न प्रपंच कूं जाग्रत् विषे संहार करे है और यह आत्मदेव जभी ता जाग्रत् का परित्याग करिके स्वप्न अवस्था विषे जावे है तभी तिन जाग्रत् पदार्थन कूं देखता नहीं । याते यह आत्मदेव ता जाग्रत् प्रपंच कूं ता स्वप्न

विषे संहार करे है । और जभी यह आत्मदेव ता जाग्रत् स्वप्न दोनों का परित्याग करकै सुषुप्ति विषे जावे है तभी यह आत्मदेव जाग्रत् स्वप्न दोनों प्रकार के प्रपंच कूं देखता नहीं । याते यह आत्मदेव सुषुप्ति विषे ता दोनों प्रकार के प्रपंच का संहार करे है और यह आत्मदेव जभी समाधि अवस्था कूं प्राप्त होवे है तभी ता सुषुप्ति अवस्था के तमरूप अज्ञान कूं भी देखता नहीं । याते यह आत्मदेव समाधि विषे ता अज्ञान का भी संहार करे है । कैसा है सो तमरूप अज्ञान, जिस तमरूप अज्ञान करिके मोहित हुवा यह जीवात्मा आपणे स्वरूप आनन्द कू भी जानता नहीं । तथा सर्व द्वैत प्रपंच के संहार का जो साक्षीरूप ज्ञान है ता साक्षीरूप ज्ञान कूं भी जानता नहीं ।

हे देवताओं ! तुरीयरूप शुद्ध आत्मा विषे ता अज्ञान का लय-रूप जो निवृत्ति है ता अज्ञान की निवृत्ति करने विषे यह अधिकारी पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरु की कृपा करिके ही समर्थ होवे है । ता गुरु की कृपा के बिना ईश्वर भी ता अज्ञान की निवृत्ति करने विषे समर्थ होवे नहीं तो अन्य जीवों की क्या वार्ता है ।

हे देवताओं ! जैसे हिरण्यगर्भादिक ईश्वरों कूं स्मरण किये हुवे वेद गुरु तैं ब्रह्मज्ञान होवे है । तैसे ही इदानी काल विष पुरुषों में भी जो कोई पुरुष शुद्ध चित्त वाला होवे है तो या पुरुष कूं भी ता हिरण्यगर्भ की नाईं ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति होवे है । जगत की उत्पत्त लय की कारणता जैसे हिरण्यगर्भ विषे है तैसे या जीवात्मा विषे भी पूर्वउक्त दृष्टिसृष्टि वाद की रीति ते सा जगत की उत्पत्तीलय की कारणता है यातैं यह जीवात्मा पुरुष परमेश्वररूप ही है ।

(आत्मपुराण पृ० १४, प० १)

पुराण के इस कथन का तात्पर्य भी यही है कि जब स्वप्न

आता है तो जाग्रत के प्राणी पदार्थ नहीं रहते और जब पुनः जाग्रत् अवस्था आती है तो बिलकुल नये प्रपंच की प्रतीति होती है। सुषुप्ति में दृश्य का अत्यन्त अभाव होता है, जिसे साक्षी अज्ञानरूप से प्रकाशता है। समाधि में अज्ञान का भी अभाव होता है। केवल साक्षीरूप ज्ञान रहता है। इस लिए समाधी में अपने स्वरूप आनन्द का प्रत्यक्ष होता है।

५—हे देवताओं! नासिका आदि छिद्रों विषे अन्तरविशेषता को सिद्ध करने हारी जे शक्ति है, जिस के आभास की प्रेरणा से और जिसकी सत्ता से समस्त इन्द्रियां अपना अपना कार्य करने में समर्थ होती है वही स्वयं ज्योति, निराकार निर्गुण आत्मा है। वह सर्व उपाधियों से रहित है।

६—हे देवताओं! या जीवात्मा जिस जिस अवस्था कूं देखे है तिसी तिसी अवस्था कूं उत्पन्न करे है और जिस जिस अवस्था कूं नहीं देखे है तिस तिस अवस्था कूं आपणे विषे लय करे है। या दृष्टि सृष्टि बाद की रीति ते यह जीवात्मा ही तिन जाग्रत् आदि अवस्थाओं की उत्पत्ति, लय का कारण है। और हे देवताओं! यद्यपि यह स्थूल शरीर माता—पिता से उत्पन्न हुआ माना जावे है और सूक्ष्म शरीर पंच भूतों द्वारा मायाविशिष्ठ ईश्वर तैं उत्पन्न हुवा कहा जावे है। ऐसी बार्ता लोक विषे तथा शास्त्रों विषे प्रसिद्ध है। तथापि **सा प्रक्रिया मन्द बुद्धि पुरुषों के बोधन वास्ते कथन करी है उत्तम अधिकारी पुरुषों के प्रति तो दृष्टि सृष्टि बाद की प्रक्रिया ही मोक्ष की प्राप्ति का द्वार है। ता दृष्टि सृष्टि बाद की प्रक्रिया कूं वेदान्त विषे गूह्य करिके रखा है। यातें स्थूल आदि क पदार्थ अपने दर्शन काल में उत्पन्न होवे हैं और अदर्शन काल विषे लय**

भाव कूं प्राप्त होवे हैं । यह श्रुति अनुभव करिकै सिद्ध दृष्टि सृष्टि प्रक्रिया ही बुद्धिमान पुरुषों ने अंगिकार करने योग्य है ।

शंका—हे भगवान जो कदाचित दर्शन अदर्शन तें या शरीर आदिकों का उत्पत्ति लय होता होवे तो या जीव कूं सो उत्पत्ति लय किस वास्ते नहीं प्रतीत होता ।

समाधान—हे देवताओं ! यह शरीर आदिक पदार्थ दर्शन काल विषे पूर्व शरीर आदिकों के समान ही आकार वाले उत्पन्न होवे हैं याते यह पुरुष तिन के उत्पत्ति नाश कूं जानि सकते नहीं ! अब याही अर्थ कूं स्पष्ट करके निरूपण करे हैं ।

(आत्मपुराण पृ० १७, प० ७)

जन्म—मरण का स्वरूप

हे देवताओं ! वास्तव में जन्म मरण ते रहित जो यह आत्म देव है तो आत्म देव का स्थूल शरीर के साथ जो तादात्म्याध्यास रूप अभिमान है सो अभिमान ही या आत्मदेव का जन्म है । और ता अभिमान की निवृत्ति ही आत्म देव का मरण है । और या शरीरादिक पदार्थों का तो दर्शन ही जन्म है और अदर्शन ही मरण है । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया कि यह जीवात्मा या संसार विषे जिस जिस पदार्थ कूं देखे है तिस तिस पदार्थ कूं ता दर्शन काल विषे ही उत्पन्न करे है और जिस जिस पदार्थ कूं नहीं देखे है तिस तिस पदार्थ का ता अदर्शन काल विषें संहार करे है । इस प्रकार यह जीवात्मा जाग्रत् आदिक तीनों अवस्थाओं विषें शरीर आदिक पदार्थन का उत्पत्ति संहार करते हुवे भी **अपने को ईश्वर रूप करके जानते** नहीं । या कारण ते ही इस की जीव संज्ञा होवे है । और जभी अधिकारी जीवों का कारण अज्ञान आत्म ज्ञान द्वारा नाश कूं प्राप्त

होवे है तभी यह अधिकारी जीव तीनों अवस्थाओं ते रहित **तुरीय** रूप परमपद कूं प्राप्त होवे है। याते या अधिकारी पुरुष ने ता **आत्म ज्ञान** कूं अवश्य करिकै सम्पन्न करना।

(आत्म पुराण पृ० १७)

हे देवताओं! जगत दृश्य का विवर्त उपादान कारण तो ब्रह्म है और परिणामी उपादान कारण माया हैं। **माया नाना प्रकार के संसार रूप चित्रों करिके युक्त है।** सो माया विचित्र प्रपंच कूं अपणे संस्कार रूप चित्रों करिके उत्पन्न करे हैं। ईश्वर भी बिना आत्म ज्ञान के माया कूं नाश करिसके नहीं।

(पृ० २८, प० १७)

हे भगवन! यह सर्व जगत् किस प्रकार ता आत्मदेव करिकै सिद्ध होवे है?

समाधान—हे देवताओं! जन्म मरण आदिक सर्व विकारों से रहित तथा अविद्या रूप माया से रहित जो बुद्धि का साक्षी रूप आत्मदेव है सो आत्मदेव ही साक्षात अथवा बुद्धि वृत्ति द्वारा सर्व जगत का प्रकाश करे है। बाह्य पदार्थन को तो सो आत्मदेव चिदाभासयुक्त बुद्धि वृत्ति द्वारा प्रकाश करे है। और अन्तर अज्ञान आदिक को सो आत्मदेव साक्षात स्वयं ही प्रकाश करे है। सो आत्मदेव सर्व संग से रहित है।

(पृ० ३६, प० १)

माया विषे प्रतिबिम्ब भाव कूं प्राप्त हुवा आत्मा ईश्वर नाम करिके कहा जावे है। सो ईश्वर जभी आपणे संकल्प करिके प्राण, बुद्धि आदिक उपाधियों वाला होवें है तभी जीव नाम करिके कहा जावे है।

इसका तात्पर्य यह हुवा कि संस्कारों के पिन्ड का नाम माया है। उसी को अन्तःकरण भी कहते हैं। स्वयंज्योति आत्मा का आभास माया या अन्तःकरण में पड़ता है उसके आभास की वृत्तियां संस्कारों की मांग के अनुसार दृश्य के रूप में भासने लगती है। इस प्रकार जगतदृश्य। चिदाभास के परिणाम के सिवाय और कुछ भी नहीं है।

बिजली का दृष्टान्त

ब्रह्म या आत्मा के स्वरूप को समझने के लिए बिजली का उदाहरण बड़ा ठीक बैठता हैं।

१—जैसे बिजली सर्वत्र व्याप्त होते हुवे भी कहीं दिखाई नहीं देती वैसे ही ब्रह्म भी सर्वत्र व्याप्त होते हुवे भी दिखाई नहीं देता।

२—बिजली की सत्ता से पंखा हवा करने लगता हैं, बल्ब प्रकाश करने लगता हैं, चक्की आटा पीसने लगती हैं, हीटर रोटी पका देता हैं, रेफ्यूजरेटर बर्फ की सी ठन्डक उत्पन्न करता हैं। वैसे ही ब्रह्म या आत्मा की सत्ता से कान सुनते हैं, त्वकू स्पर्श करती हैं, नेत्र देखते है, रसना स्वाद लेती है, घ्राण गन्ध को ग्रहण करती है और कर्मेन्द्रियां, और प्राण, मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार भी अपने अपने कार्य करने में समर्थ होते हैं।

३—जैसे बिजली का कनैक्षन न रहने पर पंखा आदि सब मशीने अपना काम नहीं कर सकती वैसे ही आत्मा का शरीर, इन्द्रियों, मन, बुद्धि आदि से कनैक्षन न रहने पर शरीर, इन्द्रिया, मन, बुद्धि आदि जड़ हो जाते हैं। कोई भी अपना कार्य करने में समर्थ नहीं रहता।

३—जैसे बिजली को मशीनों से कनैक्ट करने का माध्यम ताब्बे का तार है वैसे ही आत्मा की सत्ता द्वारा शरीर और इन्द्रियों को

क्रियाशील करने के लिए अन्तःकरण के माध्यम की आवश्यकता है। अर्थात् चिदा भास सहित अन्तःकरण बिजली के तारका काम करता है।

४—बिजली का तार हटा लेने पर जैसे मशीन ठप हो जाती हैं वैसे ही शरीर से अन्तःकरण निकल जाने पर शरीर मुर्दा हो जाता है। फिर कोई इन्द्रिय भी अपना कार्य नहीं कर सकती।

५—जैसे हवा करना, प्रकाश करना, आटा पीसना, रोटी पकाना, ठन्डक देना आदि धर्म मशीनों के हैं, बिजली के नहीं वैसे ही सुनना, स्पर्श करना, देखना, रस लेना, सूंघना आदि धर्म भी इन्द्रियों के हैं, आत्मा के नहीं हैं। जैसे बिजली से मशीने केवल सत्ता लेती हैं वैसे ही शरीर और इन्द्रियां भी आत्मा से केवल सत्ता लेकर अपना अपना कार्य करती हैं। कर्म करने में प्रेरणा मन की होती है।

६—आत्मा या ब्रह्म का स्वरूप बोध मात्र है। इसीलिए बुद्धि में पड़ा हुवा चिदाभास ज्ञान रूप से प्रतीत होता है बुद्धि से वह ज्ञान मन में, मन से इन्द्रियों में जाता है।

विवेक

कहीं कहीं प्रक्रिया में जगत दृश्य की प्रतीति का क्रम इस प्रकार बताया है कि :—

अहं वासना वासित बोध का नाम बुद्धि है।
संकल्प विकल्प वासना वासित बुद्धि का नाम मन है।
श्रवण वासना वासित मन का नाम श्रोत्र है।
स्पर्श वासना वासित मन का नाम त्वक है।
रूप वासना वासित मन का नाम चक्षु है।
रस वासना वासित मन का नाम रसना है।
गन्ध वासना वासित मन का नाम घ्राण है।

इस प्रकार बोध प्रथम अहं की उपाधि से बुद्धि हुवा बुद्धि में संकल्प विकल्प की वासना से मन बन गया, और वासना भेद से मन ही ने पाचों ज्ञानेन्द्रियों का रूप धारण कर लिया ज्ञानेन्द्रियों में जब विषय वासना हुई तो जगत दृश्य की प्रतीति होने लगी। दृश्य की सिद्धि इन्द्रियों द्वारा ही होती है। यदि इन्द्रियां न हों तो दृश्य का सर्वथा अभाव ही सिद्ध होगा। बहरे आदमी के लिए शब्द का, फालिज के रोगी के लिए स्पर्श का, अन्धे के लिए रूप का, रसना के अभाव में रस का, और नासिका के अभाव में गन्ध का कहीं पता भी न लगेगा। इस प्रकार समस्त जगत दृश्य ज्ञानेन्द्रियों का कार्य होने से इन्द्रिय रूप है। इन्द्रियां मन का कार्य होने से मन रूप हैं मन बुद्धि का कार्य होने से बुद्धि रूप है और बुद्धि बोध रूप है। कार्य को कारण में लय करने की रीति से समस्त जगत बोध मात्र या ब्रह्म रूप ही सिद्ध होता है। ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं है।

उपरोक्त प्रक्रिया से पता चलता है कि जगत की प्रतीति का आदिकारण अहं है। इसलिए दृश्य की निवृत्ति भी अहं की निवृत्ति से ही होगी। अहं देहाध्यास का नाम है। जब तक मनुष्य स्वयं को शरीर मानता है और शरीर के धर्मों को अपने धर्म मान कर स्वयं को कर्मों का कर्ता मानता है तब तक अहं भाव की निवृत्ति नहीं कही जायेगी।

अहं भाव की निवृत्ति

अहं की निवृत्ति के लिए अहं की उत्पत्ति को समझना पड़ेगा। अहं की उत्पत्ति को भी स्वप्न के अनुभव से ही समझना चाहिये। स्वप्न में संस्कारों की प्रेरणा पर अनेकों शरीरों की प्रतीति होने लगती है। जीवात्मा उन शरीरों में से एक शरीर में अहं भावना करके उस शरीर को ही अपना आप मान लेता हैं और अन्य शरीरों

में दूसरे दूसरे व्यक्तियों की भावना करके स्वप्न का थ्येटर खेलता है। जागने पर स्वप्न के कल्पित शरीर की कल्पित क्रियाओं को अपनी क्रिया मानकर कहता है कि स्वप्न में मैंने अमुक अमुक कार्य किये। सोचो जीवात्मा जिस शरीर में अहं भावना करता है जब उस शरीर की ही कोई सत्ता नहीं है तो अहं की क्या सत्ता हो सकती है। शरीर की भांति अहं भी तो कल्पित ही होगा। जैसे शरीर की सत्ता अज्ञान से है वैसे ही अहं भाव भी अज्ञान से ही है। अज्ञान की निवृत्ति के साथ ही अहं भाव की भी निवृत्ति हो जायेगी। विवेक से जब अपना स्वरूप निराकार सिद्ध हो जायेगा तो अहंभाव खडा भी न रहेगा। इस प्रकार अहं की निवृत्ति का उपाय अपने स्वरूप का ठीक ठीक विवेक ही है। बिना अपने निराकार स्वरूप का बोध हुवे शरीर में से अहं भाव का निकलना बड़ा ही कठिन है शरीर में से अहंभाव निकल जाने पर कर्मों के कर्ता पने की और फल के भोगता पने की भावना भी न रहेगी। और जन्म मरण का चक्कर समाप्त हो जायगा।

जन्म तथा मरण क्या हैं?

आत्मा कल्प वृक्ष हैं। उसमें जैसी भावना या संकल्प करो वैसी ही प्रतीति होने लग जायेगी। बाजीगर का खेल भी संकल्प सिद्धि का एक छोटा सा नमूना है। बाजीगर अपने संकल्प से ही बिलकुल अनहुई वस्तुऐं लोगों को दिखा देता है। उसके संकल्प से दिखाई देने वाली वस्तुयें, संकल्प निवृत्त हो जाने पर पुनः कहीं भी दिखाई नहीं देती। बाजीगर के खेल से संकल्प या भावना की अपार शक्ति का पता तो चलता ही है। जन्म मरण भी भावना का ही खेल हैं जन्म मरण की भावना की नहीं जाती वह तो प्रारब्ध संस्कारों के साथ रहती है और अपने निश्चित समय पर जन्म मरण की प्रतीति करा देती

है। हर जन्म में जीवात्मा जन्म तथा मृत्यु को देखता है और यह भी सुनता चला आता है कि मरते समय बड़ा कष्ट होता है और यम के डरावने दूत मारते घसीटते ले जाते हैं और पुनः जब जन्म होता है तो गर्भ में ९ मास कष्ट भोगना पड़ता है। ऐसी भावना उस के संस्कारों में दृढ़ होती है। इस लिए मृत्यु मूर्छा के समय उस को ऐसा भास आता है कि यम के डरावने दूत मुझे मारते और घसीटते हुवे ले जा रहे हैं। जन्म के समय देखता है कि मैं ९ मास से गर्भ में पड़ा कष्ट भोग रहा हूँ। यदि मरते समय यह भावना प्रबल होती है कि मैं ने पुण्य किये हैं मेरे लिए विष्णू के पारशद विमान लायेंगे तो मृत्यु मूर्छा के समय ऐसा ही देखता है कि मेरे लिए पारशद विमान ले आये और मैं उसमें बैठकर जा रहा हूं। इसका तात्पर्य यह है कि जन्म–मरण की भी स्वप्नवत् केवल प्रतीति ही है। जो भावना के अनुसार होती रहती है।

सनीमा तथा स्वप्न

जाग्रत दृश्य की भी सनीमा तथा स्वप्नवत् केवल प्रतीति है।

सनीमा में जो चित्र दिखाई देते हैं वह तो पर्दे पर बने हुवे भी नहीं होते। केवल बिजली के प्रकाश की किरणें रील के फोटोओं के आभास को लेकर पर्दे पर पडती हैं तो फोटो जैसा ही आकार पर्दे पर दृष्टि आने लगता है अर्थात् चादर पर चित्र केवल प्रकाश की किरणों से बन जाते हैं। बिजली की करेन्ट न रहे तो सारा दृश्य चादर पर से एक दम लोप हो जाता है। करेन्ट आते ही पूरा दृश्य चादर पर पुनः दृष्टि आने लगता है। रील में का जो जो

फोटो प्रकाश के सामने आता-जाता है उसी का आभास चादर पर दीखने लगता है ।

अब सोचो, पर्दे पर सनीमा के चित्र बिलकुल अनहुवे ही तो दिखाई देते हैं । परन्तु बिलकुल असली आदमियों की तरह चलते-फिरते, बोलते-चलते और व्यवहार करते हुवे दृष्टि आते हैं । उन के हाथ देते लेते भासते हैं परन्तु वहाँ पर कोई देने-लेने वाला होता है क्या ? उन चित्रों की जबान हिलती हुई मुंह खुलता हुवा और बन्द होता हुवा साफ-साफ दृष्टि आता है । आवाज़ भी साफ-साफ सुनाई देती और समझ में आती है, राग-रागनी या भाषण आदि जो वहां सुनाई देते हैं वह सब भी ऐसे ही अर्थपूर्ण और प्रभावशाली होते हैं जैसे जाग्रत जगत में होते हैं । परन्तु सनीमा में कोई बोलने वाला होता है क्या ? वह चित्र वाणी आदि इन्द्रियां रखते हैं क्यां ? बोलते, गाते या अन्य कोई क्रिया करते हैं क्या ? अपने बोलने गाने या क्रिया करने को वह चित्र जानते हैं क्या ? अपने गाने या भाषण का वह अर्थ समझते हैं क्या ? इन सब प्रश्नों का सही उत्तर तो नहीं में ही होगा । परन्तु अनजान मनुष्य तो यही कहेगा कि आदमी ही चल फिर बोल-चाल और गा रहे हैं और जान बूझ कर रागद्वेष पूर्ण व्यवहार कर रहे है । वह तो सनीमा को थ्येटर और चित्रों को ऐक्टर समझेगा । यदि उससे कहा जावें कि यहाँ आदमी कोई भी नहीं है, अनहुवा ही सब दृश्य भास रहा है तो वह इस सत्य बात को कदापि विश्वास नहीं करेगा । परन्तु उसके सच्चा मानने से सनीमा का दृश्य सच्चा तो नहीं हो जाता । वह चित्र कुछ करने या समझने तो नहीं लगते । उन चित्रों के गाने आदि का अर्थ तो दृष्टा लोग ही समझते हैं । चित्र तो न कुछ करें न कुछ समझे ।

बिलकुल ऐसा ही हाल जाग्रत जगत का है। समस्त जगत दृश्य अनहुवा ही भासता है। जगत में भी अनहुवे दृश्य को और उसके द्वारा होते हुवे प्रतीत होने वाले व्यवहार आदि को दृष्टा या साक्षी ही जानता और समझता है। दृश्य तो सब का सब बेजान और मुर्दा है। जगत के चेतन कहलाने वाले प्राणियों को जानदार समझना अज्ञान है। वशिष्ठजी ने भगवान राम से यह कहा है कि एक चेतन भी जड है, एक ज्ञान भी अज्ञान है और एक विद्या भी अविद्या है। उसका तात्पर्य भी यही है कि जगत के वह प्राणी जिनको लोग चेतन मानते हैं चेतन नहीं हैं अपितु जड़ है और उन में आत्मा के आभास की ज्ञानरूप से जो प्रतीति है वह भी ज्ञान नहीं हैं अपितु अज्ञान ही है और जिस विद्या से अंहकार उत्पन्न हो वह विद्या भी अविद्या है। जैसे अनजान लोगों को सनीमा के चित्रों में सच्चे जानदार ऐक्टर होने की भ्रान्ति हो जाती है वैसे ही अज्ञानियों को जगत दृश्य में सत्य तथा जानदार होने की केवल भ्रान्ति है।

अब स्वप्न को ले लो। सनीमा में रील के फोटुओं का और बिजली का कुछ तो आधार होता है, स्वप्न में तो फोटुओं की रील या बिजली भी नहीं होती। स्वप्न में तो पूरे का पूरा सनीमा बिना रील और बिजली के ही खेल लेते हो। इस प्रकार स्वप्न भी बिना रील और बिना बिजली का एक आटोमेटिक सनीमा ही है। जिनको वेदान्त की प्रक्रिया का कुछ बोध है, वह सुपने और सनीमा को इस प्रकार समझे कि सनीमा की रील के स्थान पर स्वप्न में प्रारब्ध सस्कार हैं और बिजली के स्थान पर आत्मा है। संस्कारों में भी रंग, रूप और भावना होती है मन में जो विचार उठते है वह संस्कारों की वृत्तियों का ही परिणाम होते हैं। जैसे सनीमा में बिजली के प्रकाश की किरणें फोटुओं के आभास को लेकर पर्दे पर चित्रों

के रूप में दृष्टि आती है वैसे ही स्वयं ज्योति आत्मा के आभास की रश्मियां अन्तःकरणरूपी शीशे से संस्कारों के रंग–रूप तथा भावना को लेकर निकलती है और अपनी निर्बलता तथा प्रबलता के अनुसार स्वप्न या जाग्रत दृश्य के रूप में परिणित हो जाती है।

जैसे सनीमा में पर्दे पर का दृश्य बिजली के प्रकाश की किरणों के सिवाय और कुछ नहीं होता वैसे ही यह स्वप्न तथा जाग्रत दृश्य भी आत्मा के आभास के सिवाय और कुछ भी नहीं है। इस प्रकार स्वप्न और जाग्रत दृश्य आत्मा का आभास होने से आत्मरूप ही है। आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है। परन्तु यह बात आसानी से बुद्धि में बैठती नहीं। बुद्धि किसी प्रकार समझ लेती है तो मन नहीं मानता। मन को मनवाने के लिए ही इस पर भिन्न–भिन्न युक्तियों द्वारा बार बार विचार करना पड़ता है।

अब इस को इस प्रकार सोचो कि स्वप्न के अनुभव से हमें यह तो साफ–साफ ज्ञान हो जाता है कि हम दो है। जैसे स्वप्न में दीखने वाला अपना शरीर और स्वप्न दृष्टा पृथक २ होते हैं। वैसे ही जाग्रत् में भी जाग्रत् दृष्टा जाग्रत् शरीर से भिन्न निराकार पृथक ही है। देहाध्यास रहने तक हर समय ही यह स्मरण रखना चाहिये कि जैसे स्वप्न में हमारे दो स्वरूप थे वैसे ही जाग्रत में भी साकार तथा निराकार हमारे दो स्वरूप हैं। शरीररूप से हम जाग्रत दृश्य की पंक्ति में है और निराकाररूप में हम अपने शरीर सहित समस्त जाग्रत दृश्य को देखने वाले है। जैसे आंख खुलते ही स्वप्न का शरीर और अन्य दृश्य लोप हो जाता है वैसे ही आंख लगते ही जाग्रत का शरीर तथा जाग्रत् का अन्य दृश्य भी लोप हो जाता है। लोप हो जाने वाली वस्तु मिथ्या होती है। इस लिए जाग्रत भी

स्वप्नवत् मिथ्या ही है। इस बात का निर्णय कि जाग्रत् दृश्य स्वप्न में लोप हो जाता है दृष्टा की साक्षी पर ही हो सकता है क्योंकि वही दोनों अवस्थाओं में मौजूद रहता है। वह दृष्टा जाग्रत् में स्वप्न का साक्षी है और स्वप्न में जाग्रत् का साक्षी है। स्वप्न के अपने शरीर और अन्य समस्त दृश्य को भी वही साक्षी देखता है और जाग्रत् के अपने शरीर तथा अन्य दृश्य को भी वही साक्षी देखता है। इस लिए वह साक्षी ही यह निर्णय कर सकता है कि स्वप्न का दृश्य जाग्रत में नहीं है और जाग्रत का दृश्य स्वप्न में मौजुद नहीं था। जाग्रत के शरीर ने स्वप्न को नहीं देखा और स्वप्न के शरीर ने जाग्रत् को नहीं देखा इस लिए शरीर तो कोई सा भी दृश्य के मिथ्या या सत्य होने की शहादत नहीं दे सकता। जिसने दोनों अवस्थाओं को देखा है उस साक्षी की शहादत तो यही है कि जैसे स्वप्न के प्राणी पदार्थ जाग्रत् में लोप होते हैं और कुछ काम नहीं आते वैसे ही जाग्रत के प्राणी पदार्थ भी स्वप्न में लोप होते हैं और कुछ भी काम नहीं आते। जाग्रत को सत्य और स्वप्न को मिथ्या मानने के लिए कोई तर्क भी नहीं चल सकती। हठ की दूसरी बात है। स्वप्न में भूखसे तड़पते रहें परन्तु जाग्रत के लड्डु स्वप्न में याद भी नहीं आते, न कहीं दिखाई ही देते हैं। जब स्वप्न की सब वस्तुएं स्वप्न में दिखाई देती है। यदि जाग्रत के लड्डु स्वप्न में रहते होते तो अवश्य दिखाई देते। इस से तो यही सिद्ध होता है कि जाग्रत की वस्तुएं की स्वप्न में लोप ही हो जाती है। यदि रहा करती तो ज्ञानी या अज्ञानी आज तक कोई तो देखता। जाग्रत की वस्तुओं के स्वप्न में रहने के पक्ष में आज तक कोई भी शहादत नहीं है। केवल अज्ञानियों का अनुमान ही है कि जाग्रत की वस्तुएं स्वप्न में रहती है। बोधवानों का अनुभव तो

यही है कि जाग्रत कि वस्तुवें भी स्वप्न में लोप हो जाती है। तब ही तो दर्शनकाल में उत्पत्ति और अदर्शनकाल में लय का सिद्धान्त उन्होंने दृश्य मात्र को लागू किया है।

निष्कर्ष यह निकला कि जैसे स्वप्न में हमारा शरीर स्वप्न दृश्य की पंक्ति में होता है और स्वप्न के अन्य दृश्य के साथ ही लोप हो जाता है वैसे ही जाग्रत् में भी हमारा शरीर जाग्रत के अन्य दृश्य की पंक्ति में है और आंख लगते ही जाग्रत के अन्य दृश्य के साथ लोप हो जाता है इस शरीर के धर्म सुख, दुःख, रोग, कष्ट, निर्बलता, निर्धनता, आदि भी सब इस के साथ ही चले जायेंगे। सुख दुख आदि धर्म ही इस के साथ नहीं जायेंगे अपितु जाग्रत के स्त्री, पुत्र, धन, मकान, शत्रु, मित्र आदि जो जो वस्तुवें इस से सम्बन्ध रखती है वह सब इस के साथ ही लोप हो जायेंगा। स्वप्न में स्वप्न के शरीर पर कैसी भी आपत्ति आवे, स्वप्न के शरीर से तुम कितना भी कष्ट का अनुभव करते रहो परन्तु जाग्रत् के सम्बन्धियों में से या जाग्रत् की सम्पत्ति में से वहां कुछ दिखाई भी नहीं देता। स्वप्न में तो स्वप्न के ही सम्बन्धी तथा स्वप्न की ही वस्तुयें और स्वप्न का ही धन स्वप्न के कष्टों को दूर करने में उपयोगी प्रतीत होता है। जाग जाने पर न स्वप्न के कष्ट ही कहीं रहते है और न उनको दूर करने वाले साधन या सम्बन्धी ही कहीं दिखाई देते हैं। यही हाल जाग्रत् के साधनों का भी है। दृश्य की प्रतीति का कारण चाहे वह स्वप्न का हो या जाग्रत् का हो प्रारब्ध संस्कार ही हैं। ज्यों ही प्रारब्धरूपी रील आगे बढ़ी, संस्कार बदला, दृश्य भी एक दम बदल जायेंगा। यही क्रम मृत्यु पर्यन्त जारी रहता है। संस्कार दृश्यरूप में आया, सुख–दुखरूपी भोग दिया, और खत्म हुवा। होते होते एक दिन समस्त प्रारब्ध संस्कार समाप्त हो जाते हैं तो इस जीवन सनीमा का

भी ड्राप सीन हो जाता है । भोले भाले प्राणी जीवन भर मिथ्या दृश्य को दिखाई देते समय सत्य मान कर महान सुखी दुःखी होते रहते हैं। दिखाई देते समय वह किसी दृश्य को भी मिथ्या नहीं मानते, चाहे वह दृश्य स्वप्न का ही हो, प्रतीति काल में तो उसमें भी उनकी सत्य बुद्धि ही रहती है । स्वप्न के प्राणी पदार्थों को तो जाग कर वह मिथ्या मान भी लेते हैं परन्तु जाग्रत् के प्राणी पदार्थों को तो अज्ञानी लोग यही मानते हैं कि पूर्व के स्थानों पर वह अब भी मौजूद हैं । यह भेद उन्हें नहीं खुलता कि जो दिखाई नहीं दे रहा वह कहीं है ही नहीं ।

सोचो सनीमा में या स्वप्न में दो व्यक्ति एक दूसरे से मित्रता या शत्रुता करते हुवे, प्रेम करते हुवे या लड़ते हुवे दिखाई देते हैं तो उनकी मित्रता या शत्रुता, प्रेम या लड़ाई कुछ अर्थ रखती है क्या ? उनके मनों में कोई रागद्वेष होगा क्या ? किसी दूसरे की इच्छा से वह अन्यथा करते हुवे भास सकते हैं क्या ? समुद्र, पहाड, वृक्ष आदि जो स्वप्न या सनीमा में दिखाई देते हैं वह होते हैं क्या ? परन्तु कुछ न होते हुवे भी दृष्टि आते समय बिलकुल सत्य से ही प्रतीत होते है । उस समय तो मिथ्या प्रतीति होने का अनुमान भी नहीं होता । विचार से देखो तो वहां कुछ भी नहीं साफ चादर है । हाथ फेरने से न नदी में जल मिले और न पहाडों की पृथ्वी ऊंची नीची मिले। ऐसे ही जाग्रत की नदी में जल नहीं है, जाग्रत के पहाड़ भी केवल दिखाई देते है । हैं नहीं ।

इस में यह शंका हो सकती है कि जाग्रत् की नदी में तो जब हम उस में घुसते हैं तो जल मिलता है यह कैसे मान ले कि सनीमा और स्वप्न की नदी की नाई जाग्रत की नदी में भी जल

नहीं हैं । इस का समाधान यह है कि एक सत्ता वाली वस्तुवें उस सत्ता वालों को मिथ्या प्रतीत नहीं होती । सत्ता बदल जाने पर मिथ्यात्व का भेद खुला करता है । सनीमा के व्यक्तियों के लिए तो सनीमा की नदी में भी जल होता है । वह तो उसमें स्नान करते हुवे भासते है । स्वप्न की नदी में स्वप्न के प्राणी भी स्नान करते है । उनके लिए स्वप्न की नदी में भी जल है । तुम्हारे स्थूल शरीर के लिए जाग्रत की नदी में जल है तो इस में ताज्जुब ही क्या है । तुम्हारे शरीर की और नदी की एक ही सत्ता है इस लिए शरीर को तो नदी में जल लगेगा ही । तुम्हारे शरीर की शहादत इस में विश्वासनीय नहीं है । मिथ्यात्व के लिए तो दृष्टा की शहादत ही विश्वासनीय हो सकती है । सनीमा की नदी में जल नहीं था यह शहादत भी दृष्टाओं की है । स्वप्न की नदी में जल नहीं था यह शहादत भी स्वप्न दृष्टा की है । जाग्रत् की नदी में जल नहीं है यह शहादत भी जाग्रत् दृष्टा की ही होगी ।

विचारपूर्वक यह निश्चय हो जाता है कि साक्षी तीनों अवस्थाओं में एक ही रहता है और उसी साक्षी में स्वप्न तथा जाग्रत के दृश्य अपने अपने समय पर प्रतीत होते और लोप होते रहते हैं । सत्य तो साक्षी ही है, दृश्य तो दोनों अवस्थाओं के केवल दीखने मात्र होते हैं । शरीर तो, चाहे स्वप्न का हो या जाग्रत का हो, यह जानता भी नहीं कि वह क्या कर रहा है या उसके द्वारा क्या होता हुवा प्रतीत हो रहा है । जानकारी सब साक्षी को है । इसी लिए प्राणियों से रागद्वेष करने को कहां स्थान हैं । वास्तविकता का भेद खुल जाने पर रागद्वेष का पता भी न लगेगा । रागद्वेष का जन्म तथा पोषण तो अज्ञान से ही है । जब शरीर न कुछ करते हैं और न कुछ जानते हैं तो उन से रागद्वेष कैसा ? यदि साक्षी को

शरीर से पृथक अनुभव करने लगेंगे तो शरीर तथा उसके धर्मों का हम से कोई सम्बन्ध भी नहीं रहेगा । उस समय सुख दुख का अहसास भी न रहेगा । अहसास शरीरों में तो है ही नहीं जब साक्षी शरीर से मिल जाता है और स्वयं की शरीर से पृथक सत्ता को भूल जाता है तब शरीरों में साक्षी के संग से अहसास की प्रतीति होने लगती है । जब निराकार साक्षी और साकार शरीर अलग अलग हो जायेंगे तब सुख दुख का मान भी समाप्त हो जायेगा ।

अब प्रश्न यह होगा कि साक्षी को शरीर से पृथक कैसे करें ? शरीरों की प्रतीति तो खयाली है । जिस का कोई वजूद ही नहीं वह पृथक कैसे हो सकेगा । बात तो ठीक है । खयाली वस्तु जुदा तो नहीं हो सकती परन्तु उसको खयाली निश्चय करके भूलाया जा सकता है । उसकी सत्ता को मन में से मिटाया तो जा सकता है । जैसे स्वप्न के प्राणी पदार्थों की सत्ता जागने पर बिलकुल मिट जाती है, रज्जू का ज्ञान हो जाने पर सर्प की सत्ता मन में से एक दम निकल जाती है । वैसे ही साक्षी का बोध हो जाने पर अपने निराकार स्वरूप को भली प्रकार जान लेने पर अपने शरीर तथा अन्य प्राणी पदार्थों की सत्ता मन में से बिलकुल निकल जायेगी ! उसके पश्चात् शरीर तथा दूसरा दृश्य दिखाई भी देता रहेगा परन्तु उसमें सत्य बुद्धि नहीं होगी । इसी का नाम साक्षी का शरीर से पृथक करना है पहले विचार द्वारा इस निश्चय को पकाना चाहिये कि हम हर समय ही दो हैं । शरीर दोनों अवस्थाओं में खयाली और सत्ता हीन होता है परन्तु साक्षी तीनों अवस्थाओं को जानने वाला सदा एक रहता है । इस लिए वही सत्य है । हमारा वास्तविक रूप वही सदा एक रस रहेने वाला निराकार साक्षी है । शरीर और अन्य दृश्य वर्ग तो हमारी साक्षी की कल्पना मात्र है ।

जीवन सनीमा का एक गम्भीर दिग्दर्शन

संकेत मात्र विचार

१—जब तक हमें अपने स्वरूप का बोध नहीं होता तब तक हम स्वयं को शरीर ही मानते रहते हैं और उस समय तक जगत के प्राणी पदार्थों में से सतबुद्धि भी नहीं जाती ! ऐसी अज्ञान की दशा में हमारे शरीर द्वारा जो कुछ भी होता हुवा प्रतीत होता है उसका हम स्वयं को कर्ता मानते रहते हैं । जब तक हम स्वयं को कर्ता मान कर कर्म करते हैं तब तक हमारे प्रत्येक शारीरिक तथा मानसिक कर्म के संस्कार बनते रहते हैं । जब हमें अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है और यह निश्चय हो जाता है कि हम शरीर नहीं है अपितु हमारा वास्तविक स्वरूप निराकार है तो कर्तापन की बुद्धि भी निकल जाती है और हर समय यह निश्चय बना रहता है कि हम अपने शरीर सहित समस्त दृश्य वर्ग के केवल दृष्टा है और हमारे शरीर और दिखाई देने वाले सभी प्राणी प्रदार्थों में प्रतीत होने वाली समस्त क्रियायें, शब्द और ज्ञान हमारा आभास मात्र हैं । कर्म का सम्बन्ध तो शरीर और इन्द्रियों से ही हैं और वह भी केवल प्रातीतिक है । जैसे शरीर और इन्द्रियाँ केवल दीखने मात्र हैं वैसे ही उनके द्वारा होती हुई दीखने वाली क्रियायें तथा शब्द भी केवल दीखने मात्र ही हैं । परन्तु प्रातीतिक होते हुवे भी जब हम स्वयं को कर्म का कर्ता मान लेते हैं तो उन कर्मों के संस्कार अचेतन मन पर बनते हैं। स्वरूप का बोध हो जाने पर कर्तापन का अहंकार नहीं रहता तो शरीर तथा इन्द्रियों से कर्म होते हुवे भी संस्कार नहीं बनते ।

२—संस्कारों के स्टोर का नाम अन्तःकरण है । संस्कारों में रूप क्रिया और ज्ञान तीनों गुणों के रूप में रहते है । अन्तःकरण में से आत्मा के आभास की वृत्ति तीनों गुणों को साथ ले जाती है । वृत्ति का सत अंश ज्ञानेन्द्रियों, मन चित्त, बुद्धि और अहंकार के रूप में, रज अंश कर्मेन्द्रियों, प्राणों और शब्द के रूप में और तम अंश शरीरों के रूप में भासने लगता है । इस प्रकार अपने शरीर सहित समस्त जगत दृश्य आत्मा के आभास की वृत्तियों के परिणाम से अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है । संस्कारों को केवल इतना प्रयोजन है कि वह आदिभौतिक या सूक्ष्म या मान्सिक दृश्य के रूप में परिणित होकर रोचक अथवा भयानक दृश्य के दर्शन कराकर जीव आत्मा को सुख दुख का अहसास करादें और शान्त हो जायें । दृश्य और परिस्थितियों की अनुकूलता या प्रतिकूलता की प्रतीति तो सुख-दुख का अहसास कराने का निमित्तमात्र है । जब दृश्य ही सत्य नहीं है तो अनुकूलता या प्रतिकूलता को स्थान कहां रह जायेगा । अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर जब दृश्य में से सत्य बुद्धि निकल जाती है तो अनुकूलता या प्रतिकूलता को स्थान नहीं रहता । अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर जब दृश्य में से सत्य बुद्धि निकल जाती है तो अनुकूलता और प्रतिकूलता का भाव भी नहीं रहता अतः सुख-दुख के अहसास का भी अभाव हो जाता है ।

३—जैसे सनीमा और स्वप्न में अनहुवे और खयाली व्यक्तियों में ही हर प्रकार के रागद्वेष पूर्ण व्यवहार की प्रतीति होती है वैसे ही संस्कारों का परिणाम जो जगत है उसमें भी अनहुवे प्राणी पदार्थों में ही रागद्वेष पूर्ण व्यवहार की प्रतीति होती है और अज्ञान काल में जीवात्मा उस प्रातीतिक व्यवहार को ही सत्यमान कर पर्याप्त सुखी-दुखी होता रहता है ।

४—जैसे निर्बल संस्कार स्वप्न में बिलकुल अनहुवे प्राणी पदार्थों की प्रतीति करा देते हैं, वैसे ही प्रबल संस्कार जाग्रत् दृश्य की प्रतीति करा देते हैं। जाग्रत और स्वप्न दोनों में एक सी ही मिथ्या प्रतीति है। वजूद कुछ नहीं है। दृश्य, चाहे स्वप्न का हो या जाग्रत का हो, वृत्ति के साथ प्रतीत होता है और वृत्ति के साथ ही लोप हो जाता है। दूसरी वृत्ति अपना नया ही दृश्य अपने साथ लाती है और अपने दृश्य को अपने साथ ही ले जाती है। इस प्रकार दृश्य वृत्ति के साथ प्रति पण बदलता रहता है। प्रतीति से पूर्व और प्रतीति लोप हो जाने के पश्चात् दृश्य की कहीं प्रतीति भी नहीं रहती। जैसे स्वप्न का दृश्य केवल वर्तमान में ही भासता है स्वप्न से पूर्ण या पश्चात् उसको कहीं देखना सम्भव नहीं, वैसे ही जाग्रत के दृश्य कों भी प्रतीति लोप होने के पश्चात् कहीं देखना सम्भव नहीं है। दर्शन काल में उत्पत्ति और अदर्शन काल में लय का सिद्धान्त जाग्रत दृश्य को भी लागू होता है।

५—सकाम पुण्य संस्कारों की प्रतीति रोचक और सुखद प्राणी पदार्थों और परिस्थितियों के रूप में होती है। पाप संस्कारों की प्रतीति भयानक और दुखदाई प्राणी पदार्थों और परिस्थितियों के रूप में होती है और सकृतों या निष्काम या कर्मों के संस्कारों की प्रतीति परमार्थ में सहायक सुखद अथवा दुखद अथवा दोनों प्रकार के प्राणी पदार्थों और परिस्थितियों के रूप में होती है।

६—जो प्राणी पदार्थ या परिस्थिति वैराग्य को उत्पन्न करने या उत्पन्न हुवे वैराग्य को दृढ़ करने में सहायक हो वह सुखदाई हो अथवा दुखदाई हो सुकृतों का ही परिणाम समझना चाहिये। अविवेकी तो ऐसी दुखद घटना के अवसर पर बड़े दुखी होते हैं और भगवान का

कोप समझते हैं परन्तु विवेकी ऐसी घटनाओं को वैराग्य का निमित्त समझकर दुखी नहीं होता अपितु भगवान की कृपा समझकर उस अवसर से लाभ उठाता है और वैराग्य को दृढ़ करता है। सुखद प्राणी पदार्थों से वह इस लिए सम्बन्ध नहीं रखता क्योंकि वह राग और आसक्ति को बढ़ाने वाले होते हैं जैसे कोयले की कोठरी में जाने से कांजल लगे बिना नहीं रहती वैसे ही सुखद प्राणी पदार्थों के संग से राग और आसक्ति हुवे बिना नहीं रह सकती। इस लिए सुखद प्राणी पदार्थों का संग त्यागना पड़ता है।

७—ऐसे सम्बन्धी जो प्यार और ममता नहीं करते अपितु मन को ठेस ही लगाते रहते हैं परमार्थ में सहायक होते हैं। परमार्थ की दृष्टि लौकिक दृष्टि से बिलकुल उलटी हैं।

८—सोचो क्या तमाशा है कि बिलकुल अनहुवे चित्र प्राणी पदार्थों के रूप में कितना सुख—दुख दे रहे हैं कि कुछ कहा नहीं जाता। जब सब का सब दृश्य केवल दीखने मात्र ही है तो अपने शरीर को अथवा सम्बन्धियों के और मित्रों के शरीरों को कष्ट में देखकर दुखी होने को स्थान कहां है। जब शरीरों का ही कोई वजूद नहीं हैं तो उनके सुख—दुख का भी कोई वजूद नहीं है। सनीमा और स्वप्न में व्यक्ति दुख में विलाप करते हुवे दृष्टि आते हैं तो ऐसा लगता है कि वह महान कष्ट का अनुभव कर रहे हैं परन्तु तुम ही बताओं कि उनको कोई कष्ट हो रहा होता हैं क्या? वह वास्तव में रोते हैं क्या? उनके आंसू भी गिरते हुवे दृष्टि आते हैं परन्तु उनका कोई आंसू निकलता है क्या? जब उन व्यक्तियों का ही कोई वजूद नहीं है, केवल दीखते हैं तो उन का सुखी—दुखी होना भी दीखने मात्र ही हैं। सम्बन्धियों और मित्रों के रूप में हमारे ही संस्कार परिणित हो रहे

हैं तो उनका सुखी–दुखी दीखना भी दीखने मात्र ही हैं इस को यों समझना चाहिये कि सुखी–दुखी मित्र तथा सम्बन्धी के रूप में हमारे संस्कार केवल इस लिए परिणित हुवे हैं कि हम उनको इस दशा में देखकर सुखी–दुखी हो लें । संस्कार के निमटने का माध्यम दृश्य ही है । वह दृश्य में परिणित हो कर, सुख–दुख का अहसास करा कर समाप्त हो जाते हैं । पाप का संस्कार विवेक को ढ़ीला कर देता है और बड़े दुख का अहसास कराता है। सुकृतों के संस्कार विवेक उत्पन्न करके प्रतिकूल प्रतीति में भी दुखी नहीं होने देते । पुण्य का संस्कार हर्ष से फुलायेगा तो परन्तु विवेक और वैराग्य नहीं होने देगा । अविवेकी दुख का भोग सुख की आशा में खिन्नतापूर्व करता है और विवेकी ऐसी घटना से वैराग्य का पाठ लेता है । दोनों की परिस्थितियां एक सी होते हुवे भी दोनों की स्थिति में बड़ा अन्तर होता है।

९–अन्तःकरण की वृत्ति संस्कारों की प्रबलता तथा निर्बलता के अनुसार जाग्रत् तथा स्वप्न दृश्य के रूप में परिणित ही होकर सुख–दुख का अहसास कराकर निमट आती हैं । वास्तव में सुखी–दुखी करने वाला कोई व्यक्ति होता हो ऐसी बात नहीं है । कभी कभी वृत्ति मानसिक दृश्य के रूप में परिणित होकर सुखी–दुखी करती हैं। कभी पत्र के रूप में सामने आती हैं और सुखी–दुखी करती हैं । कोई दुर्घटना का पत्र आये तो महान दुःख होता है । हालांकि होता कहीं कुछ भी नहीं । इस प्रकार जो भी दुखद या सुखद परिस्थिति की प्रतीति हो उसे वृत्ति का प्रतीतिक परिणाम समझकर विवेकी जन सुखी–दुखी नहीं होते जब कि अविवेकी उसमें पर्याप्त सुखी–दुखी होते हैं ।

१०—वास्तविकता यह है कि सब की सब प्रतीति चाहे जाग्रत् की हो या स्वप्न की हो, या मान्सिक हो मन में ही होकर मिटती रहती है। बाहर कुछ भी नहीं होता परन्तु भ्रान्ति से बाहर भासती है। यदि तीव्र पाप का संस्कार है तो कठोर डाकु या शत्रु जैसे भयंकर रूप में प्रतीति होगी यदि पाप पुण्य मिश्रित संस्कार है तो सन्तान, मित्र या कोई अन्य प्यारा सम्बन्धी बन कर दुःख देगा। उनके दुख देने के अनेकों प्रकार हो सकते हैं। उन को कष्ट में देखकर भी दुख हो सकता है। सन्तान के अनाज्ञाकारी होने से भी दुख हो सकता है। उनके किसी दुराग्रह से, उनके वियोग से, उनकी यथोचित सेवा न कर सकने से या उनके विरोधी हो जाने से भी दुःख हो सकता है। ऐसी दुखद घटनायें रात—दिन देखने में आती रहती हैं। विवेकी प्रत्येक घटना को संस्कारों का परिणाम समझता हैं अतः धैर्यपूर्वक समय विता देता है परन्तु अविवेकी ऐसे अवसरों पर महान दुःख का अनुभव करते हैं और उस दुख का कारण दूसरों को ठहराते हैं।

११—इस को कभी भी मत भूलों कि दृश्य चित्त की वृत्तियों के परिणाम के सिवाय और कुछ भी नहीं है। वृत्ति आती है अपना नाटक और नाटकी साथ लाती हैं जब जाती हैं अपना नाटक तथा नाटकी साथ ले जाती हैं। नई वृत्तियां अपना नया दृश्य, नया नाटक और नये नाटकी लाती है। पहला नाटक जो बड़े धूम धाम से खिल रहा था एक दम लोप हो जाता है और उसके स्थान पर बिलकुल नया नाटक उपस्थित हो जाता है। अज्ञानी समझते हैं कि पहले नाटकी कहीं दूसरी जगह चले गये हैं और यह नये नाटकी दूसरी जगह से आये हैं परन्तु वास्तव में न कोई कहीं जाता है और न कोई कहीं से आता है। जैसे स्वप्न के या सनीमा के नाटकी आभास

मात्र होते है । वह न कहीं से आते हैं और न कहीं जाते है अपितु दर्शनकाल में ही दृष्टि आते हैं उसके पूर्व या पश्चात कहीं भी नहीं रहते । उसी प्रकार जगत दृश्य भी केवल वर्तमान में ही, जब तक वृत्ति रहती है भासता है और वृत्ति के साथ ही अन्तर्ध्यान हो जाता है । इस लिए जो व्यक्ति सामने नहीं है उसके सम्बन्ध में यह समझना कि वह कहीं दूसरे स्थान पर होगा बिलकुल भूल है । बोध हो जाने पर ऐसी भ्रान्ति नहीं रहती । बोधवानों का कहना है कि:—

वह तो कहीं है ही नहीं जो नहीं अब दीखता ।
फिर भी मिलें बिछड़े हुवे इस चाहे में कुछ भी नहीं ।।

अब भी होगा वह वहां पूर्व में देखा जो था ।
अज्ञान हैं यह मानना अब तो कहीं कुछ भी नहीं ।।

भूल जा बन्धु जो देखा एक नुकता याद रख ।
मैं ही मैं हुं मैं ही मैं मेरे सिवा कुछ भी नहीं ।।

अपना स्वरूप जो निराकर दृष्टा हैं उसी के आभास की वृत्तियां प्राणी पदार्थों के रूप में दृष्टि आती हैं तो जो कुछ भी दिखाई देगा वह अपने से भिन्न तो होगा ही नहीं और वृत्ति समाप्त हो जाने पर वह कहीं रहेगा भी नहीं । इसी दृष्टि को इतना पकाना है कि हर समय अयत्न ही यह स्मृति बनी रहे कि समस्त दृश्य हमारा ही आभास हैं । हम से भिन्न कुछ भी नहीं हैं पुनः भ्रान्ति लगने की सम्भावना न रहे ।

१२—स्वप्न और जाग्रत भिन्न २ संस्कारों की वृत्तियों का परिणाम होते हैं इस लिए अनके दृश्य भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं । इस प्रकार प्रत्येक जाग्रत् के प्राणी पदार्थ भी नये ही होते हैं । जैसे राजा हरिश्चन्द्र के सनीमा में राजा हरीश्चन्द्र सैकड़ों बार चादर पर

दृष्टि आता है परन्तु हर बार दूसरे ही फोटो का आभास होता है परन्तु प्रतीत ऐसा होता है कि एक ही हरिश्चन्द्र बार बार पार्ट करने के लिए आ जाता है । ऐसे ही प्रत्येक जाग्रत के प्राणी पदार्थ दूसरे ही संस्कारों का परिणाम होने से नये ही होते हैं परन्तु प्रतीत ऐसा होता है कि जाग्रत के प्राणी पदार्थ बदलते नहीं हैं अपितु रोज़ रोज पुराने ही रहते हैं । अर्थात् ऐसी भ्रान्ति होती है कि प्रतिदिन जाग कर हम बीते हुवे कल परसों की ही प्राणी पदार्थों को देखते हैं जब कि वास्तव में ऐसा नहीं होता बल्कि प्रत्येक जाग्रत् के प्राणी पदार्थ नये ही होते हैं ।

तुरीया अवस्था को प्राप्त हुवे महापुरुषों का अनुभव है कि जाग्रत् के प्राणी पदार्थ भी स्वप्न तथा सुषुप्ति में ऐसे ही लोप हो जाते हैं जैसे स्वप्न के प्राणी पदार्थ जाग्रत में लोप हो जाते हैं और प्रत्येक जाग्रत के प्राणी पदार्थों की प्रतीति नये संस्कारों का परिणाम होने से नई ही होती है । सोचो जब ऐसी बात हैं कि कल के प्राणी पदार्थ और कल का अपना शरीर आज नहीं हैं और आज के प्राणी पदार्थ और अपना शरीर कल को नहीं रहेंगे तो किसी भी शरीर की चिन्ता को स्थान कहां रह जायगा । चिन्ता तो तब ही तक होती जब तक हम प्राणी पदार्थों और शरीरों को सत्य मान कर उन को सुरक्षित रखना चाहते हैं । जब यह निश्चय हो जायगा कि आज की वस्तु कल को नहीं रहेगी तो कौन किस की चिन्ता करेगा । संस्कारों के अनुसार जैसा जब दीखना होगा दीखेगा । और जब लोप होना होगा तब लोप हो जायेगा । दीखने मात्र प्राणी पदार्थों और शरीरों में राग, द्वेष और मोह अज्ञान से ही होता है ।

१३—जीवन इस प्रकार प्रारब्ध संस्कारों का एक आटोमेटिक

सनीमा सिद्ध होता है । जो फोटो प्रारब्ध रूपी रील में है वह सामने आये बिना नहीं रहेगा और जो रील में नहीं है वह सामने आ नहीं सकता । ऐसी दशा में इच्छा करने का स्थान नहीं रहता । इच्छा या वासना इसी विवेक से निवृत्त होंगी । दूसरा कोई उपाये निर्वासनिक होने का नहीं है ।

१४—जैसे सनीमा या स्वप्न के व्यक्ति अपने द्वारा होने वाली किसी क्रिया को नहीं समझते वैसे ही जगत के प्राणी भी अपने द्वारा होने वाली किसी क्रिया को नहीं समझते । जैसे सनीमा और स्वप्न के व्यक्ति प्रातीतिक होने से कोई ज्ञान या जान नहीं रखते वैसे ही जाग्रत् जगत के प्राणी भी प्रातीतिक होने से ज्ञान या जान नहीं रखते । जसे सनीमा के व्यक्ति हमारे कहने से अपनी क्रिया या हावभाव में कोई परिवर्तन नहीं कर सकते वैसे ही जाग्रत् जगत के व्यक्ति भी हमारी आज्ञा का पालन नहीं कर सकते । वह बेचारे कुछ करते हों या कुछ करने में स्वतंत्र हों तब तो आज्ञा का पालन करें । जब वह स्वयं ही प्रातीतिक हैं और उनके द्वारा होने वाली क्रिया आदि भी प्रातीतिक हैं और प्रतीति भी संस्कारों के आधीन है, तो राग द्वेष और गिले शिकवे के लिए गुनजायश कहां है ।

इस प्रकार के मनन और चिन्तन से ही मनुष्य निर्द्वन्द हो सकता है । और प्राणी पदार्थों में से रागद्वेष निकल सकता है ।

दीखने मात्र प्राणी पदार्थों का मूल्य मत बढ़ाओ

तुमने दीखने मात्र प्राणी पदार्थों को सत्य मान कर उनका इतना मूल्य बढ़ा लिया है कि उन्हीं की प्राप्ति के लिए संघर्ष करते—करते जीवन सनीमा समाप्त करके पछताते हुवे ही चले जाते हो और तृप्ति नहीं हो पाती । तृप्ति हो भी कैसे ? कहीं मृगमरीचिका के जल

से भी किसी की प्यास बुझ सकती है ? जैसे मृगमरीचिका के जल से किसी की प्यास बुझना सम्भव नहीं है वैसे ही इन दीखने मात्र प्राणी पदार्थों से भी तृप्ति होना सम्भव नहीं है । क्या तमाशा है, कि जो प्राणी पदार्थ हैं ही नहीं वह कितने वज्रसार सत्य प्रतीत हो रहे हैं कि समझ लेने पर भी उनके मिथ्या होने को मन स्वीकार नहीं करता । जहां विचार हटा जगत मौजूद है । अपनी ही मान्यतायें भूत बनकर चिपटी हुई है । वैसे तो संस्कारों की रील में जैसा जैसा संस्कार सामने आता रहेगा वैसे वैसे ही दृश्य की प्रतीति होती रहेगी और संस्कार के साथ ही लोप भी होती रहेगी । संस्कार के अनुसार ही हम चलते से, बैठे से, देते लेते से, हंसते से, रोते से, लिखते पढ़ते से, सभी प्रकार की क्रियाएं करते हुवे से दीखते हैं जब कि वास्तव में हम करते कराते कुछ भी नहीं । परन्तु अविद्या तथा अविवेक के कारण हम स्वयं को या दूसरों को वैसा वैसा करनेवाला मानते रहते है जैसी कि प्रतीती हो रही होती है । सोचो जब शरीर ही कुछ नहीं है, केवल वृत्ति के तम अंश का परिणाम है या मन की कल्पना है तो कुछ करेगा कौन ? संयोग वियोग किस का होगा ? सब कुछ दीखने मात्र ही होगा । इस विवेक द्वारा ही संयोग वियोग में सम रहा जा सकता है । हर्ष शोक को स्थान ही नहीं रहता । जब तक संयोग के संस्कार रहेंगे संयोग भासेगा । जब दूसरा संस्कार आजायेगा उसके अनुसार प्रतीति होने लगेगी और पूर्व प्रतीति का वियोग हुवा सा भासगा । इस में आश्चर्य ही किया है । हर्ष और शोक की भी कोई बात नहीं है । स्वप्न के प्राणी पदार्थों का जागजाने पर वियोग हो जाता है तो किसी को भी हर्ष शोक नहीं होता । स्वप्न जैसा ही जाग्रत के प्राणी पदार्थों का संयोग वियोग भी है । जाग्रत के प्राणी पदार्थों का स्वप्न के प्राणी पदार्थों से अधिक मूल्य मत आंकों । दोनों

अवस्थाओं के प्राणी पदार्थ एक जैसे ही प्रातीतिक है । कहीं से पत्र आने की या कही को पत्र लिखने की चिन्ता तो तभी तक होती है जब तक यह मानते हैं कि दूसरा भी कोई कहीं मौजूद है । उस समय इस तथ्य को भूल जाते हैं कि दूसरा तो कोई कहीं है ही नहीं । जितना दीखता है बस उतना ही ससार है । उस से बाहर कुछ भी नहीं है । स्वप्न में एक बार देखे हुवे व्यक्तियों को जाग कर कोई पत्र लिखता है क्या ? उन से पुनःमिलने की कोई आशा करता है क्या ? स्वप्न में अपने ही संकल्प से संस्कारों की प्रेरणा पर अपना शरीर और दूसरों के शरीर भास आते हैं और पत्र भी आते जाते से भासते हैं और संयोग–वियोग, जन्म–मृत्यु और खाना–पीना आदि सब व्यवहार जाग्रत् जैसे ही भासने लगते हैं जब कि वास्तव में वहां होता कुछ भी नहीं । बिलकुल वैसे ही जाग्रत् के शरीर प्राणी पदार्थ और व्यवहार भी केवल दीखने मात्र ही है इन का मूल्य अधिक मत आंको विचार और मनन द्वारा इस दृष्टि को इतना पकाना चाहिये कि व्यवहार में भी इस की विस्मृति न हो । एकान्त बास की आवश्यकता इसी लिए है । व्यवहार में रहते हुवे यह दृष्टि पक नहीं पाती । जब तक बुद्धि दीखने मात्र दृश्यको सत्य समझती रहेगी तब तक हर्ष शोक भी बने ही रहेंगे । जैसे जब तक रज्जू को सर्प समझते रहते हैं तब तक भय से मुक्ति नहीं होती । परन्तु ज्यों ही रज्जू का ज्ञान हो जाता है, सर्प का भय भी तुरन्त समाप्त हो जाता है और पुनः सर्प की भान नहीं होती केवल रज्जू ही दृष्टि आती है । वैसे ही जब तक दृश्य में सत्य बुद्धि रहती है तब तक हर्ष शोक से मुक्ति नहीं होती । आत्मा का ज्ञान हो जाने पर दृश्य में से सत्य बुद्धि भी निकल जाती है और हर्ष शोक भी सदा के लिए निवृन्त हो जाते हैं । जैसे भयंकर स्वप्न से जाग कर जब

स्वप्न को मिथ्या जान लेते हैं तो स्वप्न में उत्पन्न हुई घबराहट और अशान्ति एक दम शान्त हो जाते हैं वैसे ही जाग्रत के दृश्य को स्वप्नवत मिथ्या निश्चय कर लेने पर शाश्वत शान्ति और आनन्द का अनुभव होने लगता है। वह शाश्वत शान्ति और आनन्द ही अपना या ब्रह्म का स्वरूप है जो मिथ्या जगत को सत्य मानने के कारण ही त्रोहित हो रहा है।

प्रश्नोत्तर

शु० पिताजी! साक्षी तथा जीव एक हैं या अनेक हैं। इस विषय में मत भेद क्यों है और ठीक बात क्या है? इसको भी समझाने की कृपा कीजियेगा।

गु० वत्स! साक्षी या जीव एक है या अनेक हैं, यह प्रश्न अपने निराकार स्वरूप को समझ लेने के पश्चात् रहता ही नहीं। वैसे प्रक्रिया में कोई तो साक्षी तथा जीव को एक मानते है और कोई अनेक मानते है। परन्तु यह सब मान्यतायें ही है। मान्यताओं में मत भेद होता है। भेद तो वास्तविकता में नहीं होता। जो वस्तु हैं ही नहीं उसे जिज्ञासू को विवेक कराने के लिए कोई किसी प्रकार भी मान ले उससे तो कोई अन्तर नहीं पड़ता। निष्कर्ष तो सबने यही निकाला है कि ब्रह्म के अतिरिक्त सब ही कुछ मिथ्या है। तो साक्षी तथा जीव भी कहां रह जायेंगे। वास्तव में साक्षी या जीव के लिए एक या अनेक कुछ भी कहना नहीं बनता। एक या अनेक कहना तो तब बने जब इन का कोई वजूद हो। जैसे दृश्य कल्पित है वैसे ही साक्षी तथा जीव संज्ञा भी कल्पित ही हैं। सृष्टि की उत्पत्ति भी भिन्न २ मतों में भिन्न २ प्रकार से कही है। क्योंकि सृष्टि कभी उत्पन्न तो हुई

नहीं केवल मिथ्या प्रतीति है। इस लिए इसकी उत्पत्ति कैसे हुई, इस को भी कोई कैसे कहेगा। उत्पत्ति हुई होती तो उसके कहने के प्रकार में भी मत भेद न होता। शास्त्रों में ऐसी मान्यताओं में मत भेद होना भी कोई अर्थ नहीं रखता क्योंकि उन सब का तात्पर्य सृष्टि की उत्पत्ति सिद्ध करने में नहीं है अपितु अपनी अपनी युक्ति द्वारा भिन्न भिन्न प्रकार से सब ने यही सिद्ध किया है कि सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई, रज्जू में सर्प की नाई अनहुई ही भासती है भिन्नता युक्तियों में भले ही हो परन्तु निष्कर्श सब का एक ही है। इस लिए तू भेद केवल युक्तियों और मान्यताओं में जान कर उस ओर से ध्यान को हटा ले। जीव तथा साक्षी संज्ञा, बन्ध तथा मोक्ष आदि भी लक्ष्य तक पहुंचने के लिए मार्ग की मान्यतायें ही हैं। साक्षात्कार हो जाने पर तो ऐसा सिद्ध होगा कि सृष्टि की न उत्पत्ति है, न स्थिति हैं और न लय है, न जीव है न साक्षी है, न बन्ध है न मोक्ष है, न समष्टि है न व्यष्टि है। सब की सब महापुरुषों की मान्यतायें ही हैं। उन मान्यताओं में उलझा रहने की आवश्यकता नहीं है। जिज्ञासू के शंकासमाधान के लिए युक्तियों तथा मान्यताओं की आवश्यकता रहती है। अपरोक्ष हो जाने पर उन का कोई मूल्य नहीं रहता। इस लिए तुझे इन मत भेदों में पडने की आवश्यकता नहीं है जैसे स्थान पर पहुंच जाने पर रेल मोटर आदि वाहनों का कोई मूल्य नहीं रहता वैसे ही तेरे लिए अब इनका कोई मूल्य नहीं है।

मु० पिताजी! आपने कहा है कि ज्ञानी कभी सोता ही नहीं। तो क्या वह २४ घन्टे काम ही करता है? यदि वह नहीं सोता तो उसकी थकान कैसे उतरती होगी।

गु० बेटा ! ज्ञानी के जागने से शरीर का कोई सम्बन्ध नहीं है । ज्ञान शरीर को नहीं होता । ज्ञान जीवात्मा को होता है जो निराकार है । जब तक अज्ञान रहता है तब शरीर के साथ घुला मिला रहता है और उसकी सज्ञा जीव होती है । उस समय वह अपने निराकार स्वरूप को नहीं जानता । जब उसे अपने निराकार स्वरूप का बोध हो जाता है तो उसकी संज्ञा जीव भी नहीं रहती अपितु साक्षी होती है । बोधवान संज्ञा जीवात्मा की है, शरीर की नहीं है । बोधवान के हर समय जागते रहने का तात्पर्य यह है कि शुद्ध सत्त्व के कारण जीवात्मा को ज्ञान हर समय बना रहता है । उसकी बुद्धि ज्ञान कभी मूर्छित नहीं होती । काम करने का सम्बन्ध तो शरीर से है । निराकार का काम करने से कोई सम्बन्ध नहीं हैं जब तक शरीर दीखता है तब तक ही क्रिया भी दृष्टि आती है । जब जीवात्मा शरीर में अहं भावना करके स्वयं को काम करने वाला मानता है तब वह अज्ञानी कहलाता है और तब तक ही थकन भी होती है । बोध हो जाने पर कर्तापन की भावना रहती नहीं । इस लिए बोधवान को थकन भी महसूस नहीं होती । ज्ञान का सम्बन्ध शरीर से नहीं है । सुषुप्ति में कोई सा शरीर भी नहीं होता परन्तु ज्ञान वहां भी होता है । जीवात्मा संस्कारों की भावना के अनुसार लोकलोकान्तर को देखता है और स्वर्ग नर्क के भोग भोगता है । सुख दुख रूपी भाग भोगने के लिए स्थूल या सूक्ष्म शरीर की प्रतीति अनिवार्य है । बिना शरीर का संग किये जीवात्मा को सुख दुख का अहसास नहीं हो सकता जब जीवात्मा को यह निश्चय हो जाता है कि मैं शरीर नहीं हूँ अपितु मेरा वास्तविक स्वरूप निराकार है तो शरीर की प्रतीति रहते हुवे भी वह शरीर से असंग हो जाता हैं ।

असंग हो जाने पर उसको सुख दुख का भान नहीं होता है। देहाध्यास रहने तक जो सोने और जागने की भ्रान्ति रहती है वह भ्रान्ति भी उसको नहीं रहती। वह तो हर समय ही ज्ञान में रहता है। सोना और जागना उसकी दृष्टि में नहीं है।

मु० पिताजी! आपने कहा है कि बोधवान में सोना और जागना नहीं रहते। यह बात मेरी समझ में नहीं आई इस पर और प्रकाश डालने की कृपा कीजिएगा।

गु० बेटा! जागने और सोने की भ्रान्ति तो देहाध्यास रहने तक ही रहती है। वास्तविकता तो यह है कि न किसी की आँख लगती है और न किसी की आँख खुलती है। अज्ञान काल में दृश्याकार वृत्ति के अभाव को आँख लगना और पुनः दृश्याकार वृत्ति के उदय होने को आँख खुल जाना मानते हैं। सोचो सुषुप्ति में जब शरीर ही नहीं रहता तो आँख किस की लगेगी और किस की खुलेगी। आँख की प्रतीति तो शरीर के साथ ही होती हैं और अवस्था बदलते ही शरीर के साथ ही लोप हो जाती है। जब अवस्था के साथ ही शरीर और आँखों की अतीति और लोप होता रहता हैं तब तो यह कहना चाहिये कि आँख लगती या खुलती नहीं बल्कि पुरानी आँख पुराने शरीर के साथ लोप हो जाती हैं और नये शरीर के साथ नई आँख आती हैं। इस को भी स्वप्न के ही अनुभव से समझ ले। स्वप्न के शरीर में जिन आँखों से देखते हो सुषुप्ति में जाकर वह शरीर और वह आँखे रहती हैं क्या? जैसे स्वप्न का शरीर तथा आँखे सुषुप्ति में नहीं रहते, वैसे ही जाग्रत् का शरीर तथा आँखे स्वप्न और सुषुप्ति में नहीं रहते। आँख लगने और आँख खुलने की तो

लोगों को भ्रान्ति ही हैं । जागना और सोना केवल ज्ञान के भाव और अभाव का नाम हैं । शरीर तथा आँखों से जागने और सोने का कोई सम्बन्ध नहीं है । बोधवान को इसका स्वयं अनुभव हो जाता है इस लिए उसको सोने और जागने की भ्रान्ति नहीं रहती । व्यवहार में वह कुछ भी करता हुवा दिखाई दे परन्तु अन्दर में वह जगत की ओर से बिलकुल उपराम और उदासीन रहता हुवा हर समय परमानन्दरूप शाश्वत शान्ति में स्थित रहता है । उसका शरीर तथा इन्द्रियां मशीनवत् संस्कारों के बल पर क्रियाशील रहती हैं । न तो वह शरीर को कुछ करने से रोकता है और न कुछ करने की प्रेरणा देता है ।

मु० श्री गुरुदेव ! आप की कृपा से मैं यह तो समझ गया कि मैं शरीर नहीं हूं अपितु निराकार जीवात्मा हूँ । शरीर तो सुख–दुख भुगवाने का एक माध्यम है जो संस्कारों की माँग के अनुसार समय समय पर भासता और लोप होता रहता है । जीवात्मा के संचित कर्म ज्ञानाग्नि से कैसे दग्ध हो जाते हैं यह बात मेरी समझ में नहीं आई । इस पर भी प्रकाश डालने की कृपा कीजिएगा ।

गु० वत्स ! जीवात्मा भी तू नहीं है । तू तो सदा मुक्त शुद्ध ब्रह्म ही है । जीवात्मा तो तेरा आभास है । अभी तू ने स्वयं को शरीरसे भिन्न करके निराकार रूप में अपने शरीर सहित समस्त दृश्य का दृष्टा मात्र निश्चय किया है । आगे दूसरी तीसरी भूमिका में महावाक्यों के श्रवण द्वारा तेरे को बोध मात्र स्वरूप का साक्षात्कार करायेंगे । अभी कुछ दिन तू इसी निश्चय को अभ्यास द्वारा इतना पका कि स्वप्न में भी देहाध्यास फुरने की सम्भावना न रहे ।

पद्य

बन्ध तथा मुक्ति

१ आशा जिसे धन धाम की, जो चाहता सुत दार है
आशा करे ऐश्वर्य की, रूचता जिसे संसार है
स्वर्गादि की इच्छा करे, जन्मे पुनः मरजाये है
जो नर निराशा होगया, ना मृत्यु उसको खाये है ।

२ जो मूढ़ है वश काम के, नारि उसे ठग लेय है
स्वाधीन अपने कर उसे, बहु भांति पीड़ा देय है
निष्काम आत्मा राम नर, ना नारि के वश आये है
सन्तुष्ट रहता आप में, वह अक्षय सुख को पाये है ।

३ जो मूढ़ है वश क्रोध के, सो चित्त नित्य जलाये है
हिन्सा करे है अन्य की, सुख आप भी ना पाये है
करता नहीं है क्रोध जो, सो शान्त पद को पाये है
निज स्वरूप में क्रीड़ा करे, वह मुक्त ही हो जाये है ।

४ लोभी सदा वश लोभ के, बनता सभी का दास है
जो सत असत को जानता, ना लोभ में ललचाये है
निर्लोभ जो नर हो गया, सो कोष अक्षय पाये है
वह मुक्त ही होजाये है, ना मृत्यु उसको खाये है ।

"मेरे सिवा कुछ भी नहीं"

कह रहा है ज़र्रा ज़र्रा यह जहां कुछ भी नहीं ।
भावना का है सनीमा है यहां कुछ भी नहीं ॥
रात को जो दीखता है दिन में वह रहता नहीं ।
दिन को क्या क्या देखते हैं रात को कुछ भी नहीं ॥

रात दिन का दीखना भी नीन्द में रहता नहीं ।
इस लिए बस दीखना ही दीखना है यहां कुछ भी नहीं ।।

कह रहा है जर्रा जर्रा यह जहां कुछ भी नहीं ।

वरना कोई दे बता खच खच भरा सारा जहां ।
है स्वप्न में जाता कहाँ रहता वहाँ कुछ भी नहीं ॥

दिन का सुपना देख कर तो अक्ल ही जाती रही ।
मान बैठा सत उसे जो कि हुवा कुछ भी नहीं ॥

कह रहा है जर्रा जर्रा यह जहां कुछ भी नहीं ।

जागना सुपना हैं दोनों एक ही वस्तु के नाम ।
काल का अन्तर है केवल और फरक कुछ भी नहीं ॥

जब दीखता रहता है कुछ कहते उसे हैं जागना ।
कहते उसे सुपना हैं तब जब दीखता कुछ भी नहीं ॥

कह रहा है जर्रा जर्रा यह जहां कुछ भी नहीं ।

जब दीखना ही जागना है जो सदा रहता नहीं ।
तब स्वप्न से हो भेद क्यों दो की वहाँ बू भी नहीं ॥

भोले भाले जीव को कैसी लगी है भूल यह ।
मानता है सत उसे जो कि हुवा कुछ भी नहीं ॥

कह रहा है जर्रा जर्रा यह जहां कुछ भी नहीं ।

अब भी होगा वह वहाँ पूर्व में देखा जो था ।
अज्ञान है यह मानना अब तो वहां कुछ भी नहीं ॥

वह तो कहीं है नहीं जो नहीं अब दीखता ।
फिर भी मिलें बिछड़े हुवे इस चाह में कुछ भी नहीं ।
कह रहा है जर्रा जर्रा यह जहां कुछ भी नहीं

खुला खुला राज है यह भेद इस में कुछ नहीं ।
पर वह इसे मानेगा क्यों जिसको खबर कुछ भी नहीं ॥

किस बात की हो वासना जब भेद सारा खुल गया ।
आभास है मेरा ही सब है कहीं कुछ भी नहीं ॥

कह रहा है जर्रा जर्रा यह जहां कुछ भी नहीं

चाह अब किस की करें जब सब का सब आभास है ।
जो कभी दीखा सो देखा अब तो कहीं कुछ भी नहीं ॥

सब भूल जा बन्धु जो देखा एक नुकता याद रख ।
मैं ही मैं हूँ मैं ही मैं मेरे सिवा कुछ भी नहीं ॥

कह रहा है जर्रा जर्रा यह जहां कुछ भी नहीं ।
होश आवे तब सुने बेहोश तो सुनते नहीं ॥

"झूठा यह जग सारा प्यारे झूठा यह जग सारा"

व्यापक मैं में द्वैत दिखाकर रागद्वेष रच मारा ।
नाम रूप का पर्दा करके कैसा जादू डारा ॥

वही मैं सुपने को देखे वही देखे है सोना ।
वही जाग कर जग को देखे रह कर सब से न्यारा ॥

झूठा यह जग सारा प्यारे झूठा यह जग सारा ।
भूल गया जब आप आप को कौन करे निबटारा ॥

विश्व, तैजस, प्राज्ञ रूप मैं हैं दृश्य सब उस मैं के ।
जो सदा ही बोध रूप से है सब का आधारा ॥

ज्ञानियों का ब्रह्म वही है है वही भक्तों का राम ।
बौद्धों का बोध वही है जिस में भास रहा जग सारा ॥

झूठा यह जग सारा प्यारे झूठा यह जग सारा ।
तीनों अवस्था काल भेद से भासते हैं उस मैं माहीं ।
जैसे भासें लहर आप में मैं में भास रहा जग सारा ।।

भासित वस्तु वही रूप है जिस में कि वह भास रही ।
जैसे लहरें आप रूप हैं जग मी नहीं मैं से न्यारा ।।

झूठा यह जग सारा प्यारे झूठा यह जग सारा ।
वहीं मैं सच्चा कर जानो शरीरादि सब मिथ्या ।
झूट की है झूट गवाही सत वही जो सर्वाधारा ।।

ढोल पीट कर वह मैं कहता सुन लो उसकी गाथा ।
साराजग सुपने में नाहिं सुपना जग से न्यारा ।।

झूठा यह जग सारा प्यारे झूठा यह जग सारा ।
जागत् सुपना दोनों नाहि सोने माहि रहते ।
मैं अकेला रहकर देखूं भूतों का सा डेरा ।।

शमशान माहिं भूत उठें ज्यों वसे ही जग सुपना ।
उठते मिटते हैं मुझ माहि मै हूँ देखन हारा ।।

झूठा यह जग सारा प्यारे झूठा यह जग सारा ।
झूटे में तो राग करो मत अपना काम बनालो ।
खाओ पियो बिचरो सब माहि रह कर सब से न्यारा ।।

शरीरों में जो मैं पना है इसी को धोका जानो ।
खुद को खोजो आप पहचानो तीनों मैं से न्यारा ।।

झूठा यह जग सारा प्यारे झूठा यह जग सारा ।
बन्धु आप को जान बूझ कर मत भ्रमो जग माहीं ।
इसी रील को पूरा करके कर दो बारान्यारा ।।

ब्रह्म जगत में भेद नहीं है ब्रह्म रूप जग सारा ।
नाम रूप में व्याप रहा वह फिर भी सबसे न्यारा ।।
झूठा यह जग सारा प्यारे झूठा यह जग सारा ।
भूल गया जब आप आप को कौन करे निबटारा ।।

' तुम्हे भूल कर भी किसी का न डर हो '

न कुछ कर्म में है न कुछ ध्यान में है ।
यह सब कुछ तो माया के इमकान में है ।।
न आना कहीं है कहीं और न जाना ।
स्वर्गादि का है यह झूठा फिसाना ।।
न ब्रह्मा की पदवी की तुम चाह करना ।
बस एक सत्य तुम हो दम अपना ही भरना ।।
वह तुम हो जो छूटा है माया से कोई ।
अबस फिक्र में उम्र क्यों तुम ने खोई ।।
अभय हो, अखिल हो महा शुद्ध तुम हो ।
अचल हो अटल हो अजर हो अमर हो ।
तुम्हें भूल कर भी किसी का न डर हो ।।



शान्ति पाठ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिद पूर्णात् पूर्णमुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

श्रीगुरु परमात्माने नमः

प्रवृत्ति में निवृत्ति

चिदाकाश निर्मल सदा पूरण परमानन्द ।
नित्य उपलब्ध स्वरूप मम, श्रीगुरु न संशय गंध ॥

• • •

अगम पन्थ की महिमा भारी, कबहुँ न उतरे सहज खुमारी ।
प्रवृत्ति न निवृत्ति, तृप्ति न अतृप्ति समझन की मत जीतन हारी ॥
उन्मन पुरुष मिल्या घट भीतर, जासों प्रीति लगी अति प्यारी ॥
जहां कुछ नाहीं, तहां कुछ पाया, सत्गुरु साहिब की बलिहारी ॥

• • •

प्रवृत्ति में निवृत्ति, कर्म में अकर्मण्यता, भेद में अभेदता और शून्य में चेतनता का गोप्य रहस्य आप को अन्तरात्मा के अनुभव से प्राप्त होगा ।

वेदान्त दर्शन के अनुसार मनुष्य के भीतर एक ऐसी अद्भुत सत्ता है जो प्रवृत्ति से परे, संयोग–वियोग से रहित और कारण कार्य भाव से स्वतन्त्र सदा अपने आप में स्थिति है ।

इस साकार ससार में जो भी अज्ञ आकार वाले पदार्थ प्रतीत हो रहे हैं, वे सभी आदि अन्त वाले हैं । जैसे यह शरीर मन, इन्द्रियें और प्राण आदि अन्त वाले होने के कारण प्रवृत्ति रूप तथा कर्ता भोक्ता कहे जाते हैं और आपका अन्तरात्मा आदि अन्त से रहित नित्य तृप्ति निवृत्ति रूप, मन इन्द्रियें आदि के बीच में रहता हुआ भी अकर्ता अभोक्ता है । ऐसे अपने वास्तविक स्वरूप आत्मा

का ज्ञान प्राप्ति कर आप बाहर से प्रवृत्ति में रहते हुए भी अपने को नित्य निवृत्ति अभोक्ता रूप में अनुभव कर सकते हैं तब कहा है—

बाहर कर्ता भोक्ता, अन्दर एक न दो ।
प्रवृत्ति में देखे निवृत्ति, जीवन मुक्त है सो ॥

वेदान्त कहता है, अगर आप सम्पूर्ण कर्म बन्धनों की निवृत्ति और नित्य सुख की प्राप्ति करना चाहते है तो अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करो । शरीर, मन, इन्द्रियों का ज्ञान तो एक मशीन के ज्ञान के समान है, जो आठों याम अपनी—अपनी प्रवृत्ति में सदा लगे रहते हैं और समय पर बदलते क्षीण होते रहते हैं, परन्तु इन की आसक्ति में आया हुआ मनुष्य अपने को प्रवृत्ति रूप मान कर सर्वदा हर्ष शोक, राग, द्वेष और अभिमान आदि के अधीन हो कर अनेक कष्टों को झेलता रहता हैं । **उदाहरणार्थ**—किसी समय एक देश का महाराजा दूसरे देश पर अधिकार करने के लिए सेना साथ ले कर आप सुन्दर रथ पर आरूढ़ हो कर जा रहा था । रास्ते में नदी पार करते समय राजा की दृष्टि एक ब्रह्मानन्द में मग्न अवधूत पर जा पड़ी, जो निश्चिन्त नदी के किनारे पर विचर रहा था । महाराजा अपने लिए अच्छा शुभ लक्षण देख कर उस महापुरुष के आशीर्वाद पाने के लिए अपने रथ से उतर पड़ा । जब उनके चरणों में आकर नमस्कार किया, तब अवधूत कहने लगा हे राजन ! तुमने मुझे नमस्कार क्यों किया ? यह वचन सुन कर राजा प्रथम तो आश्चर्य में पड़ गया और फिर सोच कर कहने लगा कि मैंने आप को नमस्कार इसलिये किया जो आप सभी सुखों की प्रवृत्ति को छोड़ कर इस भयानक बन में कष्टों को सहन कर रहे हैं । यह सुन अवधूत हंस कर बोला कि मैं भी तुम्हें दो बार नमस्कार करता हूं, क्योंकि

तुम भी तो सुख छोड़ कर कष्टों को सहन कर रहे हो और अब भी अपने आराम को छोड़ कर सेना को साथ लेकर अनेक कठिनाइयों को झेलते हुये दूसरे देश के राजा और प्रजा को परेशान करने जा रहे हो। इसलिये अरमान किस का करना चाहिए और कष्टों में कौन है, तुम हो या मै हूं? राजा महापुरुष के यथार्थ वचनों को सुन कर बड़ा विस्मय में आ गया। जब कुछ कह न सका, तब फिर अवधूत बोला कि अगर कोई अपूर्व मनुष्य हीरे और जवाहरों के जड़े हुए महलों में रह रहा हो, उस में चारों और से स्वर्ग की हवाएं चल रही हों और खाने–पीने के लिये अमृत रस भरा हो, जिस की सब लोग जय जय पुकार रहे हों, तो क्या आप उसे मन्द भागी या दीन–दुखी कहेंगे? राजा ने कहा कभी नहीं, वह तो बड़ा भाग्यशाली और मेरे से भी सौ गुना श्रेष्ठ तथा महा आनन्दमय कहां जायगा। फिर सत पुरुष ने पूछा, भला एक आदमी जो उसी सुन्दर महल से बाहर पड़े हुए कूड़े–कचड़े से अपने जीवन का निर्वाह कर रहा हो और रात को उस गन्दगी में आराम भी न मिलता हो तो क्या आप उसे बड़ा भाग्यशाली या सुखी सम्पत्तिवान मानेंगे? राजा ने उत्तर दिया कि कभी नहीं, वो तो बड़ा मन्दभागी नरक जैसे दुखों में जीवन बिताने वाला है। तिस पर महापुरुष ने कहा कि बस, इतना ही तुम्हारे और हमारे जीवन में अन्तर है, क्योंकि मैं उसी निर्भय आत्मा–साम्राज्य रूपी महल में किसी भी प्रवृत्ति से परे निश्चिन्त आनन्दमग्न रहता हूं और तू इस अनात्मरूप हाड–चाम की देह अध्यासरूपी गन्दगी के आसक्ति में घूम रहा है और मेरे साक्षी रूप मन्दिर में चारों और स्वर्ग से भी बढ़ कर समता रूपी वायु चल रही है और तेरे लिये चारों तरफ शोक चिन्ताएं राग द्वेष फिर रहे

हैं । मैं सदा स्वयं प्रकाश ज्ञान अमृत को पान कर रहा हूँ और तू मन, इन्द्रियों के आधीन खरी–खोटी प्रवृत्तियों में कष्टों को झेलता हुआ विषय भोगों की चीकट में जीवन बिता रहा है । इतना दुखी देख कर मैं तुम्हें बारम्बार नमस्कार करता हूं । महापुरुष के मार्मिक वचनों को सुन कर राजा के चित्त को बड़ी चोट लग गई, उसने अपने सेनापति को बुला कर कहा कि अब इस सारी सेना को वापस अपनी राजधानी में लौटा कर ले जाओ और मैं तब तक अपने राज्य में न लौटूंगा, जब तक इस महापुरुष की कृपा से सच्चे आत्म–साम्राज्य का पूर्ण विश्राम प्राप्त नहीं करुंगा । तत्पश्चात् महाराजा उस निर्जन स्थान पर श्रद्धा–सम्पन्न हो कर महापुरुष के वचनामृत का द्वारा पान करने लगा । तब कहा है—

प्रश्न परम सुन्दर, शिश करे शंका धरे ।
कैसे मिले कहां रहे, सुखशान्ति का सरोवर ॥
सहजे सत्गुरु ने दिया, एन अभेद उत्तर ॥
आत्म–साम्राज्य है घर, तिस घर में विश्राम कर ॥

प्रश्न : हे भगवन् ! मैं संसार की सम्पत्ति संग्रह करने के अभिमानवश अनेक शुभाशुभ प्रवृत्तियों में फंसा रहा हूं और काम–क्रोध आदिकों के वश अतृप्त रहता हुआ अब बड़े निष्काम पुण्यों से मुझे आप का दर्शन लाभ हुआ है, कृपा कर मुझे कोई ऐसा निवृत्ति का मार्ग बताए जिस से मैं सम्पूर्ण राज्य प्रवृत्ति का त्याग कर परम विश्राम को प्राप्त करुं ?

उत्तर : महापुरुष अपने उच्च कोटि के अनुभवी वचन कह रहे हैं कि हे राजन् ! प्रवृत्ति में ही निवृत्ति का रहस्य छिपा हुआ है, खाली बाहर से चुप–चाप बैठ रहने का नाम निवृत्ति नहीं है । इसलिए तुम्हें अपने प्रवृत्ति में ही नित्य–निवृत्ति स्वरूप का अनुभव करना है ।

प्रश्न : कई शास्त्र प्रवृत्ति की निन्दा क्यों करते हैं ?

उत्तर : वे इसलिये कि प्रवृत्ति में निवृत्ति के ज्ञान बिना कहीं मनुष्य प्रवृत्ति में फिसल न जाए। सर्व शास्त्रों में श्रेष्ठ जो भगवत गीता है उस में भगवान् ने अर्जुन को विशेष कर प्रवृत्ति में निवृत्ति के ज्ञान का ही उपदेश दिया है। क्योंकि अर्जुन अपने क्षत्रि धर्म की प्रवृत्ति से अत्यन्त उपराम हो गया था।

प्रश्न : कई लोग थोडी प्रवृत्ति से भी हिचक कर कहते हैं कि हमें तो निवृत्ति में ही सुख मिलता है ?

उत्तर : महापुरुष मुस्करा कर कहने लगे कि जब तक मनुष्य किसी भी कार्य में प्रवृत्ति नहीं होता तब तक उसे निवृत्ति का लाभ कैसे हो सकता है, अर्थात् प्रवृत्ति से ही निवृत्ति का प्रश्न हल हो सकता है। जैसे मार्ग में खड़ा हुआ मनुष्य अगर एक पग भी आगे प्रवृत्ति न होगा तो उसी मार्ग को तय कर विश्राम घर में कब पहुँच कर निवृत्ति का सुख अनुभव कर सकेगा। भूखा मनुष्य भूख की निवृत्ति के लिए जब कोई प्रकार की प्रवृत्ति करता है तब ही तो निवृत्ति रूप तृप्ति को पाता है। इस से ज्ञात हुआ कि प्रवृत्ति के अन्दर ही निवृत्ति का सच्चा रहस्य प्राप्त होता है। तब कहा है—

करना अमल वेदान्त का, गीता में दस्तूर है।
प्रवृत्ति में जाने निवृत्ति बो ज्ञान योगी शूर है॥
निष्कामता के शान का, भारत को ही गरूर है।
नृलेपता नृपेपता, निजहर्षता में पूर है॥

॥ ॐ तत्सत् शान्ति ॥

॥ सर्वं खल्विदं ब्रह्म ॥

जगत क्या है?

प्रश्न : हे भगवन् यह जगत् क्या है और परमात्मा में कैसे दिखाई दे रहा है?

उत्तर : जैसे गन्दर्वनगर आकाश में वर्षा ऋतु के समय दिखाई देता है वैसे ही यह जगत् चेतन चिदाकाश ब्रह्म में माया मात्र प्रतीत हो रहा है ।

प्रश्न : गन्दर्वनगर किसे कहते हैं?

उत्तर : जब बर्सात के दिनों में बादल छिन्न–भिन्न हो जाते हैं तब आकाश में उन के विचित्र रूप दिखाई देने लगते हैं, जैसे बड़े–बड़े बंगले, बगीचे, बाजारों के रूप में कहीं पहाड़, हाथी और घोड़ों, मनुष्यों के आकारों समान प्रतीत होने लगते हैं, इसे शास्त्रों में गन्दर्वनगर कहा है। अर्थात् आकाश का गन्दर्वनगर क्षण प्रतिक्षण बदलता हुआ अन्त में आकाश में ही लय हो जाता है, वैसे ही चेतन चिदाकाश ब्रह्म में यह कल्पित नाम रूप जगत् बड़े विचित्र रूप में दिखाई दे रहा है, वो प्रतिक्षण परिवर्तन करता हुआ अन्त में उस में ही लय हो जाता है, तब कहा है—

तेरा सबरूयाल है खलकत, ये ही है वेद की दस्कत ।
भूला क्यों भ्रम में भटकत, समझ में सुख समाया है ॥

उदाहरणार्थ : एक माता वर्षाऋतु में अपने बालक को खाना खिलाने के लिए कह रही थी कि तुम जल्दी खाओ तो तुम्हें आकाश में दिखाई देने वाले बाग में सैर कराऊंगी । जब वह बाग देखते–देखते बंगले के रूप में आ गया, तब बालक माता से कहने लगा

यह तो बगला है, वह बगौचा कहां चला गया ? माता कहने लगी बंगला ही तो तेरे रहने के लिये सुन्दर है। इतने में बंगला बदल कर हाथी के रूप में आ गया । तब बालक कहने लगा यह तो हाथी है। माता ने कहा तुम्हें मैं हाथी पर बिठा कर सैर कराऊंगी। बालक कहने लगा यह तो हाथी बदलकर घोड़ा हो गया। तब माता कहने लगी तुम्हारी सवारी के लिये घोड़ा अच्छा है । जब घोड़े की जगह बकरी दिखाई देने लगी तो बच्चे से कहा गया कि बकरी ही तो तुम्हारे बस में रहेगी। जब बकरी का आकार भी आकाश में लय हो गया, तब बालक कहने लगा कि अब तो कुछ भी नहीं रहा । तब माता ने कहा तुमने पेट भर रोटी तो खाई, बाकी सब गन्धर्व नगर ही तो था ।

ठीक इसी प्रकार चेतन चिदाकाश रूपी ब्रह्म में यह जगत् नाम रूप मात्र प्रतीत होता हुआ क्षण प्रतिक्षण में बदलता रहता है, आज बाल अवस्था है, पता नहीं हम कितने खेल–कूद की बातों को अच्छा समझ कर समय बिता देते हैं वह बाल अवस्था भी बदल कर यौवन अवस्था का रूप धारण करती है जिस में आकर अनेक प्रकार के विषय भोगों की आशाएं बाधते हैं । थोड़े समय में वही बेटा बाप के रूप में बदल जाता है । फिर तो वृद्ध अवस्था आ जाती है और बड़े शोक व चिन्ताएं आ घेरती हैं । अन्त में इसी जीवन समाप्त हो जाता है और कुछ काल के बाद कोई पूछता भी नहीं कि अमुक व्यक्ति भी जगत में हुआ था । तब कहा है ।

कह रहा हैं आसमां, यह सब समा कुछ भी नहीं ।
जिन के महलों में लटकते हज़ारों फानूस थे ।
अब खाक उन के कबरों पर और निशान कुछ भी नहीं ।

प्रश्न : चिदाकाश किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसे वेद की श्रुति सत्यम ज्ञान अनन्त ब्रह्म के नाम से कथन करती है, जो आदि अन्त से रहित है । जिस के सहारे चिताकाश और भूताकाश प्रतीत हो रहे हैं ।

प्रश्न : चिताकाश और भूताकाश किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस शून्य आकाश में यह वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और अनेक वनस्पति प्रतीत हो रहे हैं, उसे भूताकाश कहते हैं और जिस में प्राणी मात्र के चित मन अनेक संकल्प करते सूक्ष्म रूप से उड़ रहे हैं, उस का नाम चिताकाश है । अर्थात् मनुष्य का स्थूल शरीर जैसे भूताकाश में प्रतीत हो रहा है, वैसे मनुष्यका सूक्ष्म शरीर चित आकाश में अपने संकल्प की सृष्टियें देखता रहता है ।

प्रश्न : चिदाकाश रूप ब्रह्म में भूताकाश और चिताकाश कैसे उत्पन्न हुए हैं ?

उत्तर : वास्तव में क्या भूताकाश क्या चिताकाश उस चेतन चिदाकाश में केवल प्रतीत मात्र हैं ? जैसे चिताकाश चिन्तवन करो तो है, वैसे भूताकाश भी संकल्प मात्र से उत्पन्न हुआ दिखाई देता है । इस प्रकार कल्पित वस्तु अपने अधिष्टान से अलग सत्ता नहीं रखती, अर्थात् जगत् परमात्मा से जुदा सत्ता वाला नहीं है, वास्तव में परमात्मा ही जगत का विवृत्ति उपादान कारण कहा गया है ।

प्रश्न : विवृत्ति उपादान कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर : जैसे आकाश ने अपने आकार रहित रूप को भी नहीं छोड़ा और नीलता, कढ़ाह आदि रूपों में भी दिखाई दे रहा है, वैसे परमात्मा अपने सत् चित आनन्द रूप में भी स्थित है और जगत् के नाम रूप आदिक पंच भूतों को भी अपने में आरोपित किया है ।

प्रश्न : आकाश का परमात्मा विवृति उपादान कारण कैसे है ?

उत्तर : वास्तव में आकाश का अपना है क्या ? वो अस्ति भाति प्रिय स्वरूप परमात्मा ही तो आकाश रूप में प्रतीत हो रहा है, अर्थात् आकाश के नाम को परमात्मा के अस्तिपने में तथा आकाश के नीलता आदि पने को परमात्मा के भाति रूप ने सिद्ध किया है और आकाश के शून्यता को परमात्मा अपने प्रिय रूपता कर महा विशाल दिखा रहा है, परन्तु भ्रमवश मनुष्य को आकाश से इतरि वह ब्रह्म का अस्ति भाति प्रिय रूप अनुभव नहीं होगा ।

प्रश्न : राजा आश्चर्य में पड़ कर पूछने लगा कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदिकों का परमात्मा विवृत्ति उपादान कारण कैसे हो गया ?

उत्तर : जैसे स्वप्न अवस्था में तुम्हीं पृथ्वी, जल, अग्नि आदिके रूपों में दिखाई देते हो और फिर उनसे अलग भी अपने को अनुभव करते हो, वैसे जागृत अवस्था में परमात्मा पृथ्वी, जल, अग्नि आदि रूपों में भी प्रतीत हो रहा है और उन से अलग अपने पूर्ण सच्चिदानन्द रूप महिमा में भी स्थित है । तब कहा है--

सतदीप नव खंड चतुर्दश दसों दिशा में पूर रहियो ।
नाम रूप परपंच सर्व जो नहीं तांसों श्रुति दूर कहियो ॥
अन्तर बाहर एको पूर्ण भेदभावना सकल हरं ।
सोई निज हमरो रूप सनातन मङ्गल रूप अनूप वरं ॥

उदाहरणार्थ : एक समय वशिष्ठ मुनि भगवान रामचन्द्र जी को उपदेश देते हुए अपना आश्चर्य मय वृत्तान्त सुनाने लगे कि मैं किसी काल में संसार के कार्यों से निवृत्ति हो कर चित कावि श्राम पाने के लिए अनन्त आकाश में उड़ा और चन्द्र लोक को लांघ कर एकान्त स्थान

आकाश में एक संकल्प की कुटिया रची और उसमें कुछ काल तक निर्विकल्प समाधि में रहा जब समाधि से उतरा तो मेरे को एक धीमी सी आवाज सुनाई पड़ी, मानो मेरे को कोई बुला रहा है। जब मैंने उसी आवाज से संयम कर वृत्तिका सम्बन्ध जोड़ा तब मेरे को वहां एक ब्रह्मकुमारी की आकृत्ति दिखाई दी जो कह रही थी कि हे मुनिश्वर! मेरी रक्षा करो। अर्थात् मेरे को दूसरी सृष्टि के ब्रह्मा ने अपने संकल्प से उत्पन्न किया था अब वह निर्विकल्प समाधि में स्थित होना चाहते हैं। कृपया आप चल कर इस विषय में ब्रह्मा जी को समझा बुझा कर मेरा कल्याण करें। तब मैं उस ब्रह्मकुमारी की प्रार्थना पर उन की सृष्टि में जाने के अर्थ चल पड़ा। जब लोक लोकान्तर पर्वतों को लांघ कर एक बड़ी स्वर्णमय शिला के समीप आ कर खड़े हुए तब वह ब्रह्मकुमारी कहने लगी कि हे मुनीश्वर! इस शिला में हमारी सृष्टि है। आप इस के भीतर चलें फिर तो मैं उन के संकल्प के साथ अपना संकल्प मिला कर जब स्वर्ण की शिला में प्रवेश किया तब उस के भीतर मेरे को ऐसा ही जगत प्रतीत होने लगा। पृथ्वीलोक से आदि ब्रह्मलोक पर्यन्त सब अपनी २ मर्यादा में स्थित थे फिर तो ब्रह्मकुमारी के साथ मैं ब्रह्मलोक में जा पहुँचा, जहां ब्रह्माजी इस भूताकाश और चिताकाश के संकल्प को छोड़ कर असली चेतन चिदाकाश रूप में विश्राम पाने के लिए समाधी स्थित हो रहे थे उस समय ब्रह्मकुमारीने ब्रह्माजी को प्रार्थना कर जगाया कि दूसरे सृष्टि के वशिष्ठ मुनि अतिथि के रूप में पधारे हैं, आप उन का स्वागत कीजिए। तब ब्रह्मा जी मेरी ओर देखकर बड़े प्रसन्न हुए और ब्रह्मा-कुमारी के विषय में पूछने पर उन्होंने कहा कि मैंने इसे किसी समय चिताकाश में संकल्प कर भूताकाश में उत्पन्न किया था परन्तु अब मेरा समय पूरा हो गया है इस लिए मैं चिताकाश और भूताकाश

इन दोनों को लय कर चिदाकाश रूप होना चाहता हूँ । सो मेरे संकल्प के लय होने पर सारा जगत लय हो जायगा । इसलिए ब्रह्माजी ने मेरे को कहा कि आप शीघ्र ही इस सृष्टि से बाहर चले जाएं जैसे परलय होने के समय आप को कोई कष्ट न हो । वशिष्टजी कहने लगे कि हे रामजी ! फिर तो मेरे को परलय काल जैसे लक्षण दिखाई देने लगे, महा तत्त्व आदि मर्यादा छोड़ रहे थे इसे देखता हुआ मैं उसी स्वर्ण शिला के रास्ते बाहर निकल आया । इसी से ज्ञात हुआ कि इस भूताकाश और चिताकाश जगत का वास्तविक स्वरूप संकल्प मात्र है, साधारण लोग जगत् के नाम रूप क्रिया को देख कर अपने चेतन चिदाकाश सच्चिदानन्द स्वरूप को भुला बैठे हैं । तब कहा है–

कामल काम कमाल किया, तूने ख्याल से खेल बना दिया ।
नहीं कागज कलम जरूरत है, बिन रङ्ग बनी सब मूरत है ।
इन मूरत में इक सूरत है तैंने एक अनेक दिखाइ दिया ।

प्रश्न : ऐसे संकल्पमय जगत् के नाम, रूप किया में आसक्त होने का कारण कौन है ?

उत्तर : अपने वास्तविकता से बाहर मुख होने के कारण यह नाम, रूप, क्रिया जादू जैसा असर कर रहा है जो आज कई लोग यही चाहते हैं कि हमारा नाम बड़ा हो, मेरे नाम की जहां तहां प्रशंसा हो, अगर कोई व्यक्ति उसे कह दे अमुक व्यक्ति तेरी निन्दा करता था, यह सुन कर वह बहुत जोश में आ जाता है अथवा घबड़ा कर फिर पूछने लगता है कि मेरे नाम उसने क्या कहा ? लोग भी बड़े विचित्र हैं कि वो तुम्हारे नाम कहता था कि बड़ा निकमा है उसे कोई पूछता तक नहीं । अपने नाम यहसुन कर वो बड़ा

चिन्तातुर होता है अगर अपने नाम की प्रशंसा सुनता है तो फूला नहीं समाता।

उदाहरणार्थ : एक ज़मींदार को सरकार की ओर से जब राय साहिब की उपाधि मिली तब गांव के लोगों से वह कहने लगा कि अब मेरा नाम बड़ा शानदार राय साहब हो गया है, इसलिए मेरे को उस छोटे नाम से मत पुकारा करो। गाँव के सीधे-सादे आदमी जल्दी तो समझने वाले नहीं थे। एक बार किसी गरीब ने जमींदार को उस के नाम बुलाया तो वह क्रोधित हो कर गरीब की गायों को जो उस के जमीन में चर रही थी उन सब को बांध कर सरकारी बन्दी-गृह में ले जाने लगा तो गरीब ने कहा कि ईश्वर के नाम पर छोड़ो, धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर मेरी गायें छोड़ो। मेरे पास दण्ड भरने के लिए पैसे नहीं हैं, परन्तु उसने कुछ नहीं सुना। जब बन्दी-गृह के समीप आ पहुंचा तब किसी ने गरीब के कान में कहा——तुम ऐसा कहो कि राय साहब के नाम पर छोड़ो, जब ऐसा पुकारा तब जमींदार खड़ा हो गया और कहने लगा कि यदि तुम पहिले ही इस नाम से बोलते तो इतना कष्ट करना नहीं पड़ता। गरीब आदमी यह सुन कर दङ्ग रह गया कि क्या ईश्वर के नाम से भी राय साहब का नाम बड़ा है। ठीक इसी प्रकार आज कितने ही लोग अपने नाम की बड़ाई के पीछे धर्म, नीति और मर्यादा को भी भूल जाते हैं। तब कहा है——

कंचन तजना सहिज है, सहिज प्रिया का नेह।
नाम बड़ाई, ईर्ष्या, कठिन तजना येह॥

प्रश्न : हे भगवन! नाम का जादू समझ में आ गया, अब कृपा कर रूप का प्रभाव क्या है वर्णन करें?

उत्तर : ९९ प्रतिशत लोगों में रूप का जादू इतना छा गया है कि कोई किसी के गुण, स्वभाव पर थोड़ा भी ध्यान न दे कर केवल रूप के पीछे परेशान रहते हैं । आजकल तो शादी विवाह का सम्बन्ध लगभग रूप पर ही निर्भर हो रहा है । परन्तु विचार कर देखा जाए तो वह रूप क्षण प्रति क्षण में बदलता क्षीण होता जा रहा है । आठ महीने का बालक जब अस्सी वर्ष का वृद्ध हो जाता है तो उसे कुरूप देख कर कोई पूछता तक नहीं ।

वेदान्त कहता है कि इस देह का रूप तो आप को एक कर्मों की टिकट समान मिला है, अगर धनवान के घर में जन्म लेता है तो धनी कहलाता है और गरीब के घर में जन्म लेता है तो निर्धन कहलाता है । जब कर्मों का सम्बन्ध समाप्त हो जाता है तो वह रूप राख में मिल जाता है तब न रिश्ता रहता है न ही नाता रहता है सब छोड़ कर अकेला जाता है । तब कहा है—

देही देख न भूलो भाई, देही कर्म भ्रम से पाई ।
भूख, प्यास का भान, पापी पुण्यी कहाएगा ।
आत्म किसका नाम, साक्षी कौन कहाएगा ।

उदाहरणार्थ : एक गांव में बड़ा धनवान जमींदार रहता था जो सारा दिन अपने देह के अध्यास में, बाल–बच्चों के रूप में आसक्ति और सोना–चांदी माल–मलकियत सब रूप ही रूप तो है । उन रूपों का धनवान पर निशदिन जादू चढ़ा रहता था, जिस कारण वह गाँव के किसी भी गरीब को न पूछता था, न उन की सुनता था । एक दिन उसी गाँव में नारद जी आ पधारे, लोगों को दुखी-दीन देख कर पूछने लगा कि 'तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हुई है ?' गरीबों ने सारा वृतान्त कह सुनाया कि यह बड़ा जमींदार होते हुए

हमारी सुनता नहीं, अगर जमीन के छोटे–छोटे टुकड़े हमें निर्वाह के लिए दे दे, तो हम उस में खेती कर अपना शान्ति से जीवन बिता सकें । फिर तो नारदजी धनवान के घर पर जा पहुंचे, परन्तु धनवान ने उन्हें अन्दर आने की आज्ञा न दी, आखिर जैसे–तैसे नारद धनवान के समीप पहुंच ही गये और उन से कहा कि सारे गाँव वालों को अपना ही रूप समझ कर उन की रक्षा करो, उन का भला तुम्हारा ही भला है । परन्तु धनवान ने एक नहीं सुनी, उल्टा क्रोधित हो कर अपने पुत्रों को कहा कि यह साधू तो लूट मार करने आया है, इसे शीघ्र घर से बाहर निकाल दो । जब नारद जी का बड़ा अपमान कर उन्हें घर से बाहर निकाल दिया फिर तो नारदजी दूसरे दिन प्रातः काल को जैसे ही धनवान नदी पर स्नान के लिए घर से बाहर निकल गया तो झट नारद जी धनवान जैसा ही रूप धारण कर उसी घर में आकर धनवान के बड़े कमरे में बैठ गए । तब सब घर वाले उन के समीप आकर पूछने लगे कि आज आप इतना जल्दी वापिस क्यों लौट आये ? तो उन्होंने सब कुटुम्बियों को आश्चर्य में डालते हुए कहा कि मेरे को ऐसा कोई भूत दिखाई दिया जिसने मेरे जैसा ही रूप धारण कर रखा है । सो ऐसा न हो कि मेरे न होते घर में आकर झूठ–कपट का जाल बिछा कर सारा धन माल ही न उठा ले जाए । फिर तो पिता के पुत्र पौत्रे आदि सब घर के दरवाजे पर लाठी ले कर सावधान हो गये । इतने में वह असली धनवान जब घर में आने लगा तो उन के बाल–बच्चों ने ही उसे रोक कर कहा कि बाहर निकलो ये तुम्हारा घर नहीं है, तुम धूर्त हो । इतने में अन्दर से नारद पिता के रूप में बाहर निकल आया और कहा कि देखो–देखो, यह कैसा कपटी ठगने के लिए आया है इसे जल्दी हवलात में पहुंचाओ ।

फिर तो बच्चों ने उस की लाठियों से खूब खबर ली और मार–मार कर उसे पुलिस के हवाले कर दिया । फिर तो केस चलना शुरू हुआ, जब हाजरी हुई तब सब लोक दोनों का एक रूप देख कर बड़े आश्चर्य में पड़ गए कि इन में कौन धनवान सच्चा है, कौन झूठा है, क्योंकि आजकल बाहर रूप की ही पहिचान है, वास्तविकता कर तो कोई किसी को जानता नहीं । फिर तो नारद मुनि रूप वाले पिता ने कहा कि घबड़ाने की कोई बात नहीं, हमने ६ महीने पहिले जो लड़के की शादी की थी उस पर कितना धन लगा था और कितना दहेज मिला था वो या मैं बताऊं, या यह बाहरूपिया बताए । यह सुन कर कोर्ट ने स्वीकार किया, परन्तु वो असली पिता तो बता ही न सका और नारद पिता ने तो दोनों ही टोटल रुपये आने पैसे समेत बता दिया और बहियों को देखने से भी सोलह आना ही सही निकला । फिर तो नारद पिता का जै–जैकार हुआ और असली पिता जो पहिले ही घर से निकाला गया था । अब उसके पक्का देश निकाला मिल गया, वह बिचारा उजाड़ वन में भूखा–प्यासा घूम रहा था, उसे कोई पूछता भी नहीं था । इतने में नारदजी आ पधारे, तो धनवान रो कर उनके चरणों में गिर पड़ा कि मेरी रक्षा करो । तब नारद जी ने कहा मैंने तो तुम्हें बहुत समझाया कि अपने जमीन का कुछ हिस्सा टुकड़े-टुकड़े कर गरीबों में बांट दो । धनवान कहने लगा मैं तो सारी जमीन देने को तैयार हूं, केवल मुझे घर में वापिस आने दो । नारदजी ने कहा संसार रूप में फंसा हुआ है तुम रूप का अभिमान छोड़ दो और सब में भगवान समझकर सेवा करो । अब अपने घर में जाओ और यह किसी को नहीं कहना कि मैं वही हूं या और हूँ ऐसा कह कर नारद जी अन्तर्ध्यान हो गये । तब कहा है–

मिथ्या रूप के प्रेमी बहुत देखे, निज रूप का प्रेमी कोई है जी।
जांसू खण्ड ब्रह्माण्ड प्रकाश हुआ, सारी जग रचना सोई है जी।
चारों कुण्ड तपास कर देखा, जहां जाऊं साक्षी सोई है जी।
और चाम सेती मेरा काम केहिड़ा, आत्म राम ने मेरी दिल मोही है जी।

प्रश्न : हे भगवन! अब मैंने रूप आसक्ती के प्रभाव को समझा। शत्रु, मित्र, पुत्र, स्त्री, धन, वस्त्र, भूषण और बड़ी बड़ी बिल्डिंगें सब रूप ही जादू है! जिस में मनुष्यजीवन पर्यन्त फसा रहता है। अब कृपा कर मेरे को क्रिया के आसक्ती का कारण समझाइए?

उत्तर : नित्य निवृत्ति रूप आत्मा के ज्ञान बिना मनुष्य भ्रमवश अनेक प्रवृत्ति रूप क्रियाओं में सुख बुद्धि कर आसक्त होता जा रहा है। जैसे मैं विषय भोगूं, यह शब्द, स्पर्श, रूप, रस, प्राप्त करूं। इस प्रकार देखा–देखी में अनेक प्रकार के क्रियाओं के आधीन हो कर दुर्लभ जीवन व्यर्थ बिता रहा हैं। तब कहा है––

कोई हाल मस्त, कोई माल मस्त कोई तूती मैना सुए में।
कोई खान मस्त पहरान मस्त, कोई राग–रागनी जुए में।
कोई अमल मस्त, कोई रमल मस्त, कोइ शतरंज चौपड़ जूएमें।
इक खुद मस्ती बिन और मस्त सब पड़े अविद्या कूए में।

उदाहरणार्थ : एक नवयुवक जिसे छोटी अवस्था में ही बहुत धन प्राप्त हो गया। प्राप्ति के बाद उसने औरों की नकल कर बहुत से नौकर अपने पास रख लिए। एक खाना बनाने वाला, एक कपड़े पहनाने वाला, एक जूता साफ करनेवाला और एक होटल में साथ चलनेवाला, इस प्रकार उसकी क्रिया दिन प्रतिदिन इतनी बढ़ गई, खर्चा भी दस गुना होने लगा। उसको अपने क्रियाओं से फुर्सत ही नहीं मिलती थी। एक समय रात को उसी धनवान के घर के

फाटक के सामने आग लग गई । यह देख कर उसने एक नौकर को बुलाया और कहा कि जल्दी उठो मुझे कपड़े पहिनाओं, फाटक के सामने आग लगी है । नौकर आँखें खोलते ही घर की खिड़की से छलांग मार कर बाहर भाग गया कि ऐसे खतरे के समय कपड़े कौन पहिनाए । फिर धनिवान ने दूसरे नौकर को बुलाया कि मुझे जूता पहिनाओ, आग फाटक के पास आ गई है । वह नौकर भी सुनी-अनसुनी कर अपने सामने वाली खिड़की खोल कर बाहर निकल गया कि अपनी जान बचाएं या जूता पहिनाएं । इस प्रकार नौकर एक-एक कर निकलते गये और धनवान अकेला ही आग के लपटों से चिन्तातुर खड़ा है, अब चाहे तो नौकर के समान खिड़की में छलांग मार कर निकल जाए और चाहे तो उन क्रियाओं के बड़पन में अपना जीवन गंवाए । तब कहा है—

मुल्कगीरी में सिकन्दर से हजारों मर मिटे ।
अपने पर कब्जा ना किया फिर किया क्या कुछ भी नहीं ।

वेदान्त कहता है कि परमात्मा में जगत की तस्वीर केवल नाम रूप क्रिया मात्र है, जो विचारवान इन तीनों से नजर उठाता है उन की दृष्टि में सच्चिदानन्द ब्रह्म समा जाता है, क्यों कि यह जगत परमात्मा के अज्ञान कर ही हमें उत्पन्न हुआ दिखाई देता है अर्थात् हम कहते हैं कि परमात्मा नहीं दिखाई देता तो फिर उस के अस्ति भाति प्रिय रुप में जगत की कल्पनाएं सिद्ध होने लगती हैं । उन नाम रूप पदार्थों में आसक्त होना ही जगत है, उसमें सुख-दुख की भावना करना यही जगत है फिर आपही अपने को बन्धायमान समझना यही भ्रम है, इस प्रकार परमात्मा में जगत हम ही देखते हैं और हम ही कर्मों के फलों को पाते हैं । जैसे स्वप्न को हम

ही अपने में देखते हैं और हम ही हैरान होते हैं। जैसे रसी में सांप हम ही देखते हैं और भय भी हम ही खाते हैं। तब कहा है—

तेरा सब ख्याल है खल्कत, ये ही है वेद की दसकत।
भूला क्यों भ्रम में भटकत, सनझ में सुख समाया है।
जरा तुम जाग कर देखो कि तुम ही नूर न्यारा है।

प्रवृत्ति में बन्धन क्यूं ?

प्रश्न : हे भगवन! इस नाम रूप क्रिया की प्रवृत्ति में बन्धन का कारण क्या है?

उत्तर : एक अध्यष्टान सच्चिदानन्द स्वरुप के अज्ञान कर प्रवृत्ति में आसक्ति जीव अनेक बन्धनों को सहन करता है। जैसे स्वर्ण के भूषण में वास्तविक सत्य सोना है और भूषण का नाम रुप और पहिनने की क्रिया, तीनों स्वर्ण में प्रतीत मात्र है, तो भी लड़कियें आसक्तीवश भूषण ही चाहती हैं, परन्तु शराफ की नज़र हज़ारों भूषणों को देखते हुए भी एक सोने पर ही रहती है। जैसे मिट्टी से बने हुए घड़े में, घड़े का नाम रुप और जल भरने आदि क्रिया तीनों में उस का अपना कुछ भी नहीं, खाली कहने मात्र घड़ा कहा जाता है। वैसे जगत् के नाम रुप क्रिया में परमात्मा ही ओत-प्रोत है, जिसके ज्ञान न होने के कारण जगत का नाम रुप क्रिया ही सत्य प्रतीत होने लगता है। तब कहा है—

ये जग जान सपना देखा तज मन मूर्ख अनहोता।
नाम रूप में भटकत भूला, है है हार जन्म खोता।

ये जग कल्पवृक्ष की छाया, जिसमें रहना किसे न पाया।
ये अवसर तेरे दो दिन का है गफलत निंद में क्यों सोता।

उदाहरणार्थ : एक समय कोई वैरागी बाबा शराफि के पास दो सोने की मूर्तियां ले गया। शराफि ने दोनों मूर्तियें कांटे में तोल कर देखा तो एक-एक तोले की मूर्ति थी। जिस के २१-२१ रुपये वैरागी बाबा के हाथ में पकड़ा दिये। बस फिर तो वैरागी बाबा शराफि पर इतना क्रोधित हो गया जो बड़ी-खरी खोटी सुना कर शराफि की छाती पर चढ़ बैठा कि क्या तूं हिन्दू नहीं है? तो कहने लगा बाबा! मैं तो सनातनी हूं बाबा कहता था कि मैं तुम्हें आज सच्चा सनातनी बना कर ही छोड़ूंगा। फिर तो वहाँ कितने लोग एकत्रित हो गये कि असल बात क्या है शराफि ने कहा कि बाबा दो मूर्ति एक–एक तोले सोने की लाये थे जब इन्हें दोनों मूर्तियों की एक जैसी रकम दी गई, तब वैरागी बाबा बड़ा जोश में आ गया कि श्री महावीरजी की मूर्ति का भी २१) रुपया और भगवान रामचन्द्रजी की मूर्ति का भी २१) रुपया; यह कितना बड़ा अन्याय है। फिर तो सब लोग बात को समझ गए कि शराफि ने सोने में मूर्तिये भूला दी है और बाबा ने मूर्तियों में सोना गुम कर दिया है। ठीक इसी प्रकार जगत में जिन की दृष्टि नाम रूप क्रिया पर लगी हुई है, उन को अनेक बन्धन आसक्तिरूपी झगड़े कभी नहीं छोड़ते और जिन की नामरूप क्रिया में सच्चिदानन्द स्वरूप पर दृष्टि लगी हुई है उनको नामरूप क्रिया की प्रवृत्ति में रहते हुए भी कोई बन्धन या राग द्वेष नहीं होता क्योंकि प्रवृत्ति में नामरूप क्रिया पर रुक जाने से भेद–भावरूपी बन्धन उत्पन्न होते हैं, नहीं

तो प्रवृत्ति में निवृत्ति, भेद में अभेद पहले ही छिपा हुआ है। सिर्फ उस नजर की जरूरत है। तब कहा है—

यार को हमने जाइ बजाइ देखा, कहीं बन्दा कहीं खुदा देखा,
शिकल बुलबुल में चहचहाके हंसा है वो;
शिकल गुल में खिल खिलाइ देखा
कहीं है बादशाह तखते नशीन,
कहीं हाथ में लिये कासाई देखा

प्रश्न : जो लोग अपने निवृत्तिरूप आत्मा के ज्ञान से रहित है, जिनका शरीर, मन, इन्द्रियों की प्रवृत्ति से तादात्म अध्यास रहता है। उन की क्या गति होवे है?

उत्तर : शरीर मन इन्द्रियों के साथ तादात्म अध्यास रखकर काम करने वालों की गति शास्त्रों में अनेक प्रकार की वर्णन की गई है जो सूर्य, असूर्य आदि लोकों में जन्मों को धारण कर अपने शुभा-शुभ कर्मों के फल भोगते रहते हैं।

प्रश्न : असूर्य लोक किस का नाम है और वह कहां हैं?

उत्तर : जो पृथ्वी के अन्दर सर्प आदिक देहधारी जीव उत्पन्न होते हैं, जहां कभी सूर्य उदय होता नहीं, इस लिये उस का नाम असूर्य लोक है। वे असूर्य लोकवासी सारा दिन अन्धकार में बिताते हैं। और उनका चित भी अविद्यारूप अंधकार में रहता है। अगर कभी २ रात को पृथ्वी से बाहर निकलते हैं तो भी अन्धकार में ही विचरते हैं। जैसे काली रात में काली कीड़ी काले पत्थर पर भ्रमती हो, उस पर किसी की नजर नहीं पड़ती, तैसे अज्ञानरूपी अंधकार में काले कर्मों को काले अन्तःकरण से करनेवाला जीव असूर्य लोक की यात्रा करता है, और यम यातना को सहन करता है। तब कहा है—

यम से कौन सगाई तेरी
मात पिता तज स्वर्ग सिधारे तुम जानत हो मेरी
तन नगरी किस की नहीं पियारे यह है भूतनी केरी
करना हो तो करो न भूलो आगल रैन अंधेरी

प्रश्न : जगत की इतनी जिम्मेवारी जीवों पर क्यूं ढाली गई है ?

उत्तर : यह जगत जैसे परमात्मा से जुदा नहीं, तैसे जीव आत्मा से भी जुदा नहीं । जैसे आकाश वायु आदिक पांच तत्त्वों का परमात्मा विवृत्त उपादान कारण है, तैसे उन पांच तत्त्वों से ही सम्पूर्ण जीवों का तादात्म अध्यास हैं । इसी कारण एक ही वायुमंडल से सम्पूर्ण प्राणो प्राण ले रहे हैं । एक ही पृथ्वी के अन्न जल से अपना पालन पोषण कर रहे हैं । एक जैसा ही शीत उष्ण से सबको सुख दुख होता है, एक ही आकाश के विकास में सब ही चल फिर रहे हैं, फिर अज्ञान वश जो जीव एक दूसरे से अन्याय करते हैं भेद–भाव रख कर किसी को व्यवहार में धोखा देते हैं अथवा अन्याय करते हैं, वो मानो अपने को अंधकार में रखते हैं । तब कहा है--

है खटिका उसके साथ लगा, जो और किसी को दे खटका ।
वो गैब से झटिका खाता है, जो और किसी को दे झटका ।
चीरे के बदले चीर है, पटके बदले है पटका ।
क्या कहिए किस के आगे तमाशा है सब झटपटका ।

उदाहरण—एक भले स्वभाववाले मनुष्यको यात्रा करते समय रास्ते में बुरे स्वभाववाला मनुष्य आकर मिला और कहने लगा आपस में इकट्ठे ही चलें । इस लिये यात्रा में पहले जो भी कुछ खरचा हो वह तुम करते चलो फिर मैं करूंगा । भले मनुष्य ने यह बात मान ली । जब यात्रा करते भले आदमी के सारे पैसे

खर्च हो गए बाकी सफर का सामान ही आकर बचा, यह जान कर उस बुरे आदमी ने जंगल में आधी रात को उठकर गहरी नींद में सोए हुए भले आदमी को उठा कर एक अंधे कुएँ में फेंक दिया, और उसका सामान उठा कर चलता बना। भले आदमी को कुएँ में एक वृक्ष की जड़ का रास्ता मिल गया और सावधान होकर बड़े विलाप करने लगा। इतने में एक भेड़ चरानेवाला आ निकला, उसने जैसे तैसे कर उसको कुएँ से बाहर निकाला और पगडन्डी का रास्ता दिखा कर कहा कि यहां से तुम सीधे बड़े शहर में पहुंच जाओंगे। भला आदमी ठण्डी से ठुठरता हुआ जब उसी बड़े शहर में जा पहुँचा तो उसे खाने के लिए एक पैसा भी नहीं था और भूख बड़ी सता रही थी, किहीं लोगों ने कहा कि आज यहां महाराजा का राजतिलक है, वहां खाने के लिये बडा भण्डारा खुला हुआ है। फिर तो वह भला आदमी जल्दी वहां पहुँच गया और भोजन पाकर उसी महाराजा के राजतिलक में भी आ शामल हुआ। जब लोगों के बीच में सुन्दर रथ पर राजा को विराजमान देखा, जिस के चारों ओर से लोग जय जयकार पुकार रहे थे। फिर तो उस भले आदमी के आश्चर्य की हद न रही, जो उसे वो ही बुरे स्वभाववाला आदमी जो कल रात को उसे कुएँ में फेंक कर चला था, आज वही राजतिलक के अर्थ बड़े सन्मान के साथ स्वर्ण के रथ पर विराजमान है और सिर पर चँवर झूल रहे है। फिर पूछताछ करने पर भी यह निश्चय हुआ कि बराबर सुबह को आते वक्त इसे दो आदमियों का सामान साथ में था। दुरभाग्य वश इस देश के राजा स्वर्गवास हो जाने के कारण उन की कोई सन्तान न थी, तब प्रजावासियों ने यह प्रतिज्ञा की थी कि आज हमारे देश में प्रातःकाल जो अतिथि सब से पहले

पहुँचेगा उसे हम राजतिलक देंगे. तो ऐसे शुभ अवसर पर यह आदमी आकर पहुँचा । भले स्वभाववाला आदमी यह सारा वृतान्त सुन कर भारी संशय में पड़ गया कि ईश्वर को कैसे न्यायकारी माना जाए, जो बुराई करनेवाले को बादशाही देता है और भलाई करनेवाले को अंधे कुएँ में फेंकवाता है । ऐसे ईश्वर की सृष्टि में हमें जी कर क्या करना है । फिर तो वो भला आदमी जंगल में जा कर वहां लकिड़ियें इकट्ठी कर उन में आग लगा कर आप भी उसी धधकती हुई आग में पड़नेवाला ही था, तब इतने में एक महापुरुष आ निकला जिसने उस के सिर पर हाथ रख कर कहा कि दो मिनटों के वासते आंखे बन्द करो । तत्पश्चात् जब आंखे खोली तो उसने अपने को दो सुन्दर बगीचों के बीच में देखा, जिन में से एक बाग तो बड़े सुन्दर हरेभरे फलोंवाला था, जिस को एक कोने से क्रूर राक्षस आग लगाता जाता था और दूसरी तरफ नया बाग लग रहा था जिसमें कितने माली मिलकर सुन्दर फूल और फलों के पौधे जल्दी २ लगा रहे थे । यह विचित्र दृश्य देखकर भला आदमी महापुरुष से पूछने लगा कि वह बाग किसका है, जिसको आग लगी हुई हैं ? और यह बाग किसका है जिस को नए सिरे से लगाया जा रहा है ? तब उस दिव्य पुरुष ने उत्तर दिया कि वह फला फूला हुआ बाग जिसको आग लगी हुई है वो बुरे स्वभाववाले आदमी का है पहले उसके बड़े पुण्य कर्मों ने लगाया था ! अब उसको पापकर्मरूपी राक्षस बाग को जला रहे हैं और ये नया बाग तुम्हारे शुभ कर्मों कर सरसबज हो रहा है इसमें उत्तम फूलों के पौधे बढ़ रहे हैं, जब इस में उत्तम फल लगेंगे तब उनका आनन्दरूपी रहस्य प्राप्त कर तुम ईश्वर को धन्यवाद देने लगोगे । यह सारा दृश्य भला मनुष्य देख कर बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुआ

फिर तो आगे से भी बड़ा श्रद्धावान बन कर और निःस्वार्थभाव से लोगों का भला करने लगा। तब कहा है।

तू और की तारीफ कर, तुझ को भी सखवानी मिले।
कर मुशकल आसान और की तुझ को भी आसानी मिले॥
तू और को महमान कर तुझ को भी महमानी मिले।
क्या खूब सौदा नकद है, इस हाथ दे उस हाथ ले॥

वेदान्त कहता है वास्तव में प्रवृत्ति बन्धनरूप नहीं है, हमारे स्वार्थी विचार ही बन्धन के कारण है। जैसे वायु चलता है, नदियें बहती है, सूर्य उदय होता है और समुद्र रात दिन उमंगों से उछलता है, इतने प्रवृत्ति होते हुए भी उन्हें किसी बन्धन में नहीं कहा जाता। वैसे मनुष्य भी व्यवहार में जैसा विचार रखता है वैसा हो जाता है।

जैसे प्रातःकाल को उठते ही खेती करनेवाले को यह विचार उत्पन्न होता है कि सवेरे ही सब्जी लाद कर हमें शहर वासियों को पहुँचानी चाहिए, क्योंकि उसने शहर के लोगों के लिए ही सब्जी बोई है। भूमि में अनाज बोनेवालों से पूछो कि यह तुमने गेहूँ, चना अपने लिए ही बोया है? वो कहता है कि नहीं सारे देश वासियों के लिए। इस प्रकार हम जो भी प्रवृत्ति करते हैं, वो सिरफ अपने लिए नहीं, बल्की औरों के लाभार्थ होती है। सीधे वाले सवेरे ही दुकान खोल कर क्यों बैठ जाते हैं? जैसे कोई भूखा न लोट जाए। इसी प्रकार कपड़ेवाले कपड़ा, लकड़ीवाले लकड़ी दूर दूर से मंगा कर एक दूसरे की जरूरतें पूरी करते हैं। वास्तव में यह प्रवृत्ति सेवाभाव से की हुई परस्पर एकताभाव को बढ़ानेवाली है क्योंकि जगत से हमारा एक जैसा ही संबंध है, इस लिए जैसा

हम दूसरे के लिए करते हैं वैसा ही हमारे लिए होता है । तब कहा है—

जो और के मुख में मिश्री दे, फिर वो बी शक्कर खाता है ।
जो और को ठोकर मार चले, फिर वो बी ठोकर खाता है ॥
जो और को डाले चक्कर में, फिर वो बी चक्कर खाता है ।
कुछ देर नहीं अन्धेर नहीं, इन्साफ अदल परसती है ।
इस हाथ करो उस हाथ मिले, ये सौदा दसत बदसती है ॥

वेदान्त कहता है हम सब आत्म कर के एक ही हैं । जैसे शरीर अनेक हैं, वैसे प्रवृत्तियें भी असंख्य हैं । परन्तु निवृत्तिरूप साक्षी आत्मा सबका एक है इस लिए हमारा एक दूसरे के वासते निष्काम प्रेम होना चाहिए । जैसे घोड़ा आदमी के लिए है तैसे आदमी भी उतना ही घोड़े का ख्याल करता है । क्योंकि एक ही व्यक्ति परस्पर सहारा लिए बिना अपनी सारी जरूरते आप पूरी नहीं कर सकता है ।

इस प्रकार जगत में अनादीकाल से जीवों की आपस में एकता बनाए रखनेवाली प्रवृत्ति बन्धनरूप नहीं है, परन्तु आज कल जो स्वार्थ के आवेश में आकर उसी एकतारूपी अमृत में विष्णु मिलाई जा रही है वो ही प्रवृत्ति भारी बन्धन का कारण है । जैसे लोभ वश लोगों के खाने पीने की चीजों में मिलावट कर उनमें अनेक रोग उत्पन्न करना या मौके पर लोगों को तंग कर उन्हें महंगा माल बेचना, अथवा दीन हीन गरीबों को महेनत का पूरा अजूरा न देना । इसी प्रकार संसार में दुःखों और कष्टों को फैलानेवाली प्रवृत्ति ही महा दुःखरूप है । तब कहा है—

जो चाहले चल इस घड़ी, यहां जिनस सभु तैयार है ।
आराम में आराम है, आजाब में आजाब हैं ॥
दुनिया न जान इसको भाई, ये तो दरयाह की मझधार है ।
औरों का बेड़ा पार कर, तेरा भी बेड़ा पार है ॥

एक बड़ा कंजूस धनवान किसी महापुरुष के आगे आकर प्रार्थना करने लगा कि मैं बड़ा दुखी हूं और कितने उपाय कर हारा हूं, इस लिये आप कृपा कर कोई उपाय कहें, जिस कर मेरा दुःख दूर हो ? महापुरुष ने कहा कि जितना तुम्हारे पास धन सम्पत्ति है, उस के दो हिस्से करो ! जिस में से एक हिस्सा गरीब अनाथों में बांट दो और एक हिस्सा अपने नृवाह अर्थ रखो। ऐसा करने से धनवान का सारा दुःख दूर हो गया । किसी ने आकर महापुरुष को कहा कि मेरे को स्वर्गसुख की प्राप्ति कैसे हो ? सति-पुरुष ने उत्तर दिया कि जितना प्रेम स्नेह तुम्हारा अपने कुटुम्ब परि-वार में है उसे आधा कर दो और आधा प्रेम सनेह देशजाति के लोगों के सेवा में लगाओं तो तुम्हारे लिए स्वर्ग का दरवाजा खुल जायगा । फिर तीसरे मनुष्य ने आकर कहा कि मेरे को परमात्मा का आत्मा में कैसे साक्षयातकार होगा ? सतिपुरुष ने उत्तर दिया कि जितना प्रेम तुम्हारा अपने पुत्र में है, उतना ही प्रेम सब प्राणी मात्र से करो तो ईश्वर का अभेद दर्शन हृदय में अवश्य होगा । इसी प्रकार तीनों को वर्ताव करने से परम सफलता प्राप्त हुई तात्पर्य यह है कि वास्तव में जीव, जगत और ईश्वर तीनों एक दूसरे से अलग नहीं है । परन्तु हम ही ज्ञान अथवा अज्ञान वश प्रवृत्ति करने से जगत को बन्धन या मुक्ति का कारण बनाते हैं । जैसे ईश्वर इस जगत को अपना खेल समझ कर हर्ष शोक से रहित होकर लीला

करने आता है, अगर तैसे जीव भी इस जगत को तमाशा समझ कर निष्काम होकर अपने प्रवृत्ति का पार्ट पूरा करने लगे तो उसके लिये कोई भी प्रवृत्ति बन्धन का कारण कभी नहीं बन सकती। ज़ैसे खिलाड़ी खेल में हार जीत दोनों में समान रह कर तमाशा करता है, उसे संयोग अथवा वियोग से न हर्ष पैदा होता हैं न शोक! न राग होता है न द्वेष।

॥ ॐ तत्सत् ॥

जीव कैसे बना ?

प्रश्न : हे भगवान! जगत और ईश्वर का स्वरूप तो समझ में आ गया, अब कृपा कर कहो यह जीव कैसे बना और इसका क्या स्वरूप है ?

उत्तर : यह एक मुख्य सवाल है। जिसको भारत के ब्रह्मवेताओं ने बड़ी सावधानी से हल किया है कि जीवात्मा में जो जीवपना है वह न सत्य है न असत्य है। जैसे दर्पण के सम्मुख होने पर जो उसमें आपको मुखाभास दिखाई देने लगता है, वह सत्य है न असत्य है। क्योंकि जब तक आप दर्पण के सामने हैं, तब तक वह मुख दर्पण में दिखाई देता है, और जब आप दर्पण के सामने नहीं हैं तो दर्पण में ढुंढने पर भी मुखाभास नहीं मिलता। ठीक इसी प्रकार साक्षी आत्मा का अन्तःकरणरूपी दर्पण में जो आभास पड़ता है उसका नाम जीव रखा गया है, अर्थात् जो शरीर मन इन्द्रियां आदकों में जीता है और आत्मा के ज्ञान कर फिर वही रूप हो जाता है। और अज्ञान में वही जीव अन्तःकरण के अध्यासवश

अपने को तुच्छ हर्ष शोक कर दीन दुःखी मानने लगता है। इसी प्रकार मनुष्यों से लेकर कीड़ी पर्यन्त जितने भी देहधारी हैं उन में यह जीव अन्तःकरण से मिलकर अनेक शुभ अशुभ कर्मों का भोक्ता बनता है। अगर मानुषजनम में कोई मोक्ष का जिज्ञासू अपने को जीवपने से मुक्त करने अर्थ जब वास्तविक स्वरूप आत्मा का साक्षात्कार करता है तो उसी क्षण सम्पूर्ण कर्म बन्धन से मुक्त हो कर वही असंगरूप हो जाता है। फिर अपने को जीव आभास नहीं मानता। तब कहा है--

दरयाह से हबाब की है ये सदा, मुझको न समझ अपने से जुदा।
तुम और नहीं हम और नहीं,
आईने मुकाबल रूख जो रखा। झट बोल उठा नकश उसका॥
क्यूं देख के यार हैरान हुआ तुम और नहीं, हम और नहीं।

प्रश्न : यह जीवाभास समीप से समीप होते हुए भी अपने आत्मा का ज्ञान क्यूं नहीं प्राप्त करता?

उत्तर : अन्तःकरण आदकों के स्वभावों के आधीन हो कर अल्पज्ञता के कारण अपने को और का और मानने लगता है। इसी कारण वास्तविक स्वरूप के ज्ञान से सदा बाहरमुख रहता है। तब कहा है--

जीने वृती अंतर कर लीजे--
भरमत भरमत जग में दुःख पायो अब काहू को खीजे।
मानुष जनम जानों अति दुर्लभ कारज आपनो कीजे॥

शामवेद के केन उपनिषद में एक उदाहरण मिलता है कि एक वृक्ष में दो पक्षी निवास करते थे, उनमें से एक तो वृक्ष की चोटी

पर निराहार रहता था । और दूसरा वृक्ष की डाली २ पर फूल फूलों की आशाओं में फिरता था । कहीं मीठा फल मिलता है तो फूला नहीं समाता, अगर कड़वा फल चखता है तो बड़ा व्याकुल हो जाता है, इस प्रकार वह पक्षी सुखदुःख, आशा निराशा के बीच भरमता रहता था । और जो वृक्ष के चोटी पर पक्षी बैठा था । वह सदा तृप्त और प्रसन्नचित्त से सिर्फ नीचेवाले पक्षी को देखता रहता था । और नीचेवाला पक्षी कभी किसी सुन्दर फल की इच्छा में रहता है कि फल पकने पर मैं उसे अवश्य खाऊँगा, परन्तु हवा का झोका जोर से चलने पर जब वह फल पकने से पहले ही नीचे गिर जाता था, तब वह बड़ा उदास होता था । और जब मीठा फल मुख में पड़ता था, तो फूलने लगता था अगर कड़वा कच्चा फल खा लेता था, तो विलाप कर निराश हो जाता था उसकी नजर जब अपने ऊपर चोटीवाले पक्षी पर पड़ती थी कि वह कैसा बेचाह बेपरवाह बैठा हुआ है, मैं भी उस से मिलकर अपने दुःखों का अन्त करूं । फिर तो ऊपरवाले पक्षी के साथ मिलने की आशा उसे बड़ी व्याकुल करने लगती थी । जब वह वृक्ष के मीठे खटे फल खाने की इच्छा त्याग कर और डाली डाली पर घूमने का मोह छोड़ कर सीधा ऊपर उड़ने लगता है, तब वहां पहुँचते हो उस के आश्चर्य की हद ही नहीं रहती कि मैं तो इसी चोटी पर बैठे हुए पक्षीका ही प्रतिबिम्ब मात्र हूँ और उससे अपने को अभेद अनुभव करने पर आप भी उस वृक्ष के फलों की चाह से बेचाह बेपरवाह हो जाता है । ठीक इसी प्रकार इस शरीररूपी वृक्ष में दो पक्षी कौन है ? यानी एक साक्षी आत्मा और दूसरा उसका प्रतिबिम्बरूपी जीव जो अन्तःकरण में प्रतीत हो रहा हैं । परन्तु साक्षी आत्मा तो सदा सम्पूर्ण शरीर के भोगों से अभोक्ता बेचाह

बेपरवाह विराजमान रहता है । और प्रतिबिम्बरूपी जीव अन्तःकरण की वासनाओं से मिलकर शरीररूपी वृक्ष के अंदर अनेक भोग भोगने की आशाओं को रखता हुआ कभी इन्द्रियों के अधीन; कभी मन के हर्ष शोकरूपी खटे—मीठे फल खाने में और कभी बुद्धि के हानी—लाभ में बेचैन रहता है । जब वेदांत के उपदेश से जीवाभास की दृष्टि अभिमान से परे उस साक्षी आत्मा की तरफ जाती है कि वह कैसा अकर्ता अभोक्ता अपनी महिमा में सदा निश्चिन्त स्थित है । तब जीव में आत्मा के अखण्डता का अभ्यास बढ़ने लगता है । और विवेक वैराग के बल ते शरीर मन इंद्रियों के विषयभोगों में गिलानी कर निज साक्षी आत्मा से जा मिलता है, तब जीव के आश्चर्य को हद नहीं रहती क्योंकि इसे अनुभव होने लगता है कि मैं तो इस आत्मा का ही आभास मात्र प्रतिबिम्ब हूँ । जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब तलाव से निकल कर सूर्य से जा मिले, तैसे जीवाभास अन्तःकरणरूपी तलाव के सम्पूर्ण गुण स्वभावों से निकल कर, जब आपने निज साक्षी आत्मा से एक हो कर रहता है, तब उसे ज्ञात हो जाता है मैं जीव कैसे बना था यह मुझे मालूम हो गया । तब कहा है—

दिया आपने खुदी को जो हमने उठा,
वो जो परदा था बीच में अब न रहा ।

रहा परदे में अब न वो परदे नशीन,
बस सिवाय उसी के, और न रहा ॥

जैसे दर्पण में दिखाई देनेवाले प्रतिबिम्ब की कोई अलग हस्ती नहीं होती, वैसे अन्तःकरण में खुदी अभिमान करनेवाले जीव की कोई वास्तविकता नहीं होती, जब तक खुदी को मिटा कर खुद

आत्मा का ज्ञान प्राप्त न करे, निज आत्मा के ज्ञान बिना यह जीव उस लकड़ी के कोयले के समान है जो अग्नि के सम्बन्ध कर प्रकाशित होता है, नहीं तो बुझ जाता है। तैसे यह जीव भी आत्मा का प्रतिबिम्ब होने से चेतन प्रतीत होता है। और थोड़ी सी विषय वासनाओं को भोगकर फिर गहरी सुबुद्धि अवस्था में लीन हो जाता है, फिर जागने पर चेतन होने का दावा करता है। ये ही परतन्त्रता है। तब कहा है—

न थी हाल की जब हमें अपनी खबर,
रहे देखते औरों के ऐबो हुनर।
पड़ी अपने गुनाहों पर जब नजर,
तो निगाह में कोई बुरा न रहा ॥

जैसे बरफानी हिमालय आदि पहाड़ों पर जब सूर्य उदय होता है, तब जो बरफ पिघल पानी हो कर नदी नालों के रूप में बहने लगती है, तो सूर्य का प्रतिबिम्ब उस पानीमें खुद व खुद दिखाई देता है। चाहे वो सूर्य से अलग नहीं है, तो भी जुदा सा प्रतीत होता है। ठीक इसी प्रकार सच्चित आनन्द सूर्य प्रकृतिरूपी बरफीनी पहाड़ों पर जब अपने चेतन प्रकाश कर हलचलें पैदा करता है, तो प्रकृति में जो शुद्ध सतोगुण अंश का कार्य अन्तःकरण है, उस में चेतन का आभास, याने जीवपना जाहिर होने लगता है। परन्तु उसके आधीन कुछ नहीं होता तो भी कहता है मैं शरीर को बनाता हूँ, प्राणों को चलाता हूँ और इन्द्रियों से भोग भोगता हूँ, फिर समय पर प्रत्यक्ष देखता है कि मेरे बस में कुछ भी नहीं। क्योंकि मनुष्य के भीतर दो प्रकार की चेतनता है, एक मुख्य साक्षी आत्मारूप सूर्य की, और दूसरी चिदाभासरूप जीवकी।

जब तक जीव अपने असली आत्म–स्वरूप का विस्मरण कर नकली मन इन्द्रियों से मिला हुआ रहता है, तब तक शब्द, स्पर्श, रूप, रस आदि विषयों के पीछे परेशान रहता है। जब चिदाभास अपने जीवपने का अभिमान त्याग कर साक्षी आत्मा से एक हो रहता है, तब उन्हें अन्तरमुख, मुक्त आत्मा कहा जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि जीव साक्षी आत्मा का ज्ञान पाकार प्रवृत्ति में निर्बन्धन रहे तो उसकी खुशी अगर अन्तःकरण के स्वभावों को अपना मान कर प्रवृत्ति में बंधाइमान रहे, तो उसकी खुशी। जैसे जीव का जीना अन्तःकरणरूपी प्रवृत्ति में है तैसे जीव की असलियत निवृत्तिरूप आत्मा में है। वेदान्त कहता है कि संसार में आपको दो प्रकार के मनुष्य देखने में आयेंगे, एक वह जिन्होंने अपने को आत्मरूप में साक्षात किया है, वो शरीर मन इन्द्रियों के प्रवृत्ति में रहते हुये भी नित्य निवृत्तिरूप में स्थित हैं, और दूसरे वो हैं जो अन्तःकरण के स्वभावों से एक हो कर शरीर मन इन्द्रियों की प्रवृत्ति के बन्धन में अपने को बांधा हुआ मानते है।

जैसे उत्तराखंड में बन्दरों को पहले कोई नहीं बांध सकता, जब तक वो अपने को आप ही बांधे हुये का भ्रम न करें, व्याध लोग तो सिर्फ एक छोटे सुराखवाले खड्डे में दो-चार फल गिरा देते हैं। बन्दर आते ही दोनों हाथ खड्डे में डालकर सारे फल निकालना चाहता है, परन्तु उस छोटे मुंहवाले गड्डे से फलों से भरे हुए हाथ कैसे निकले। इसलिए बन्दर अपने को बाँधा हुआ घोषित करने के लिए बड़ा हल्ला मचाता है, तब व्याध भी सोचता है कि जब वह खुद ही बाँधा हुआ अपने को मानता है, तो हम भी क्यों न एक रस्सा बन्दर के गले में डालदें। फिर तो बन्दर सारी आयु बन्धन में ही नाचता है और बन्धन में ही खाता पीता है। ठीक

इसी प्रकार जीव को भी पहले प्रकृत्ति का गुण स्वभाव नहीं बांध सकता, जब तक अपने को अन्तःकरणरूपी परीछन्न खड्डे में विवेक–विचाररूपी दोनों हाथ डालकर कामनारूपी फूलों से भर देता है, फिर अन्तःकरण से बाहर निकल नहीं सकता इसलिये वह जहां तहां अपने को बांधा हुआ घोषित करता है । तब दुनियां भी कहती है कि जब खुद ही अपने को बांधा हुआ कहता है तो हम भी उसको कोई न कोई मोह–स्नेहरूपी रस्सा डाल कर अपने कब्जे में क्यों न कर लें । फिर तो जीव विषय–वासना में सारा जीवन झूलता रहता है । तब कहा है–

दुनियां के जंगलों में यह दिल भटक रहा ।
अटका यहां जो आज, तो कल वहां लटक रहा ॥
लालच में फंस गया, कभी मोह में जा फंसा ।
छूटा यहां से आज, तो कल वहां भटक गया ॥
सिदक और यकीने बिना, दिल्बर मिले कहां ।
गो जंगलों में बरसों ही, सिर को पटक रहा ॥

जैसे जब तक सूर्य उदय नहीं हुआ तब तक दीपक के प्रकाश से ही काम चलाना पड़ता है, तैसे जब तक आत्मज्ञान का सूर्य उदय नहीं हुआ, तब तक जीवरूपी दीपक की रोशनी में मन बुद्धि चित्त अहंकार के सहारे ही काम चलाना पड़ता है । अर्थात् सारा दिन मन का मनन, चित्त का चिन्तन और मेरेपनेका निश्चय ही होता रहता है, पर वास्तविक मैंपने का ज्ञान ही उदय नहीं हुआ । जैसे सूर्य के प्रकाश में रखा हुआ दीपक खाली दिखावे मात्र होता है, तैसे आत्मप्रकाश में यह जीवपना खाली दिखावे मात्र प्रतीत हो रहा है ।

अथवा अज्ञान वश किए हुए प्रारब्ध कर्म को पूरा करता रहता है और आत्म साक्षात्कार होने पर जीवपने की प्रवृत्ति, कोई हस्ती नहीं रखती । जैसे मध्याह्नकाल को सूर्य के सामने दीपक की कोई विशेष सत्ता दिखाई नहीं देती, तैसे आत्मवेता के सामने जीवपने का द्वैत सिद्ध नहीं होता । तब कहा है—

जहां आप ही आप है, वहां गैर का कुछ काम नहीं ।
जाता मुतलक में कोई शिकल नहीं, नाम नहीं ॥

प्रश्न : सत्य शास्त्रों में कहीं जीव एक ही कहा है और किसी जगह कहा है कि जीव अनेक हैं; इन दोनों वचनों का यथार्थ रहस्य क्या है ?

उत्तर : वेदान्त में प्रथम सृष्टि का एक ही जीव वर्णन किया है, जिसे ब्रह्माजी कहते हैं । भगवान विष्णुजी जो व्यापक है उनके कमल याने मध्य से उत्पन्न हुआ है । फिर ब्रह्माजी अपने ही संकल्प से अनेक जीवों के रूप में दिखाई देने लगा । जैसे हम स्वप्न अवस्था विशे आप ही अनेक रूपों में दिखाई देने लगते हैं कहीं मनुष्य, कहीं पशु पक्षी, कहीं सुखी दुखी । वैसे एक ही ब्रह्मा माया विशिष्ट संकल्पशक्ति से अनेक जीवों के रूपों में दिखाई देने लगा । जैसे स्वप्न में हम जिन जीवों को देखते हैं उनकी हमारे से अलग कोई सत्ता या स्फुर्ति नहीं होती । वैसे ब्रह्मा के सृष्टिरूप सपने में जो अनेक जीव दिखाई दे रहे हैं वो एक ब्रह्मा के ही प्रतिबिम्ब मात्र हैं, इसी कारण किसी को भी अपनी अलग स्वतन्त्रता दिखाई नहीं देती । जैसे जब हम अपने सपने से जागते हैं, तो स्वप्न में दिखाई देनेवाले जीव सब हमारे अविद्या के संस्कारों में लय हो जाते हैं । वैसे जब ब्रह्माजी अपनी सृष्टिरूप सपने से जागते हैं । तब सम्पूर्ण जीव प्रलय समय अविद्या में लय हो जाते हैं, फिर एक ही जीव ब्रह्माजी अपने को ब्रह्मरूप अनुभव करते हैं ।

प्रश्न : एक ही जीवरूप ब्रह्मा ने हम अनेक जीवरूप प्रतिबिम्बों को इतने बन्धन में क्यों डाला है ।

उत्तर : हम ब्रह्माजी के संकल्परूप होने से उससे जुदा नहीं है। जैसे मन का संकल्प मन से जुदा नहीं जो संकल्प जोर पकड़ता है, वो ही मनरूप हो जाता है । वैसे एक ब्रह्मा से हम अनेक जीव भिन्न नहीं हैं जो भी जीव अपने तपस्या संयम साधन से बल बढाता है तो वह ब्रह्माजी के समान ब्रह्मलोक में जा कर निवास करता है । जैसे एक सरसों का दाना जमीन में बोने से अपनी शक्ति से हजारों दानों के रूप में उग सकता है । इस प्रकार कोई भी जीव वेद-वेदान्त के श्रवण-मनन निदिध्यासन करने से ब्रह्माजी से पहले ही मुक्त हो सकता है । अगर कोई जीव आसक्तिवश सृष्टि के वासनाओं में फंसा रहता है । तो वह ब्रह्माजी के संकल्प समेटने पर भी मुक्त विदेह नहीं होता और परलयकाल में अपने सूक्ष्म सकारों सहित वे जीव माया में लय हो जाते हैं । जब कभी ब्रह्माजी अपने संकल्प सृष्टि की रचना करता है । तब वह सम्पूर्ण जीव अपने कर्म सुभावों के अनुसार बरसात में मेंढ़कों की न्याई मैं-मैं तू-तू करते उत्पन्न हो जाते हैं । तब कहा है ।

सोया सब निंद में आलम देखा उन्हें ख्वाब में जालम,
नहीं उसे आपकी मालूम, जागे तब नूर न्यारा है ।

उदाहरण—योगवशिष्ठ में आता है कि एक समय असुरोंने देवताओं पर विजय पाने अर्थ अपने संकल्प से तीन महा पराक्रमी असुरों को उत्पन्न किया जिनका नाम था दाम, व्याल, कटु । उनको स्वर्ग के देवताओं ने कई बार जीतने का प्रयत्न किया, परन्तु देवता हार ही खाते रहे । असुरों की वीरता और शक्ति का पार न पाकर

देवता ब्रह्माजी के सन्मुख जाकर सारा वृत्तान्त कहने लगे कि इन महाबली असुरों को कैसे जीता जाये ?

ब्रह्माजी ने उत्तर दिया कि इनके अजीत होने का मूल कारण अभिमान का न होना है । और न इन में कर्ता भोक्तापने के विचार ही है कि हम देवताओं पर विजय कर कोई स्वर्ग का सुख भोगें और न इनको युद्ध में पराजय होने की कोई चिन्ता ही है । इसलिए अगर तुम इन असुरों में अहंभाव उत्पन्न कर सकें अथवा युद्ध की हार-जीत का हर्ष-शोक, मान अपमान पैदा कर दें तो वो शीघ्र ही जीत जाएंगे । फिर देवताओं ने ऐसा आशय हृदय में रख कर तिन असुरों से युद्ध करना शुरू कर दिया अर्थात् जिस समय वो असुर दाम, व्याल, कटु देवताओं पर हमला करना शुरू करें तो देवता उनको विजयी कहते हुए युद्ध का मैदान छोड़ कर चले जाएं और थोड़ी देर बाद उन असुरों को आकर ललकारें और उनको कायर डरपोक कह कर अपमान करें । जब उन्हें जोश आने लगे, तब देवता उनकी प्रशंसा करते हुए गायब हो जायें । इस प्रकार धीरे–धीरे उन तीनों असुरों में हर्ष–शोक अभिमान आदि उत्पन्न होने लगे और वो अखण्ड आत्मसत्ता से हटने लगे । तब उनको यह जीवभाव का भ्रम होने लगा कि हम कितने बड़े बलवान हैं जो हमारे भय से देवता पराजय होकर कहीं से कहीं भाग रहे है । अब हम क्यों न स्वर्ग पर अधिकार कर उत्तम भोगों को भोगें ?

इस प्रकार जब वह कर्ता भोक्तापने के पिंजरे में तुच्छ कामनाओं वश फंस गए, तब देवताओं को उन पर विजय पाने में कोई देर ही न लगी । परन्तु उन असुरों को हर्ष शोक रागद्वेष और विषयवासनाओं वश अनेक प्रकार के जन्म धारण कर भारी कष्टों को भोगना पड़ा ।

तात्पर्य क्या है कि यह संकल्परूप जीव निःसंकल्प आत्मा के ज्ञान बिना अनेक संकल्पों को करता हुआ अनादिकाल से इस जगत में भ्रमता रहता है।

प्रश्न : किन शास्त्रों में जीव को अनादि किस कारण कहा गया है ?

उत्तर : जब तक आत्मा का अज्ञान है तब तक जीवपना निवृत्ति नहीं होता। इसलिये जीव को अनादि शांत कहा गया है, अर्थात् आत्मसाक्षात्कार होने पर जीवपना उसी वक्त शांत हो जाता है। जैसे किसी पर्वत की कन्दरा में अन्धकार हजारों बरसों से रहता आया हो, परन्तु प्रकाश करने पर वो उसी वक्त शांत हो जाता है। वैसे अनादिकाल के अज्ञान कर यह जीवपना रहता आया है और अनेक जन्मों में कर्मों के अनुसार सुख–दुःख भोक्ता चला आ रहा है, जब मनुष्यजन्म में आकर ब्रह्मवेत्ता गुरु द्वारा ज्ञान का प्रकाश पाता है, तब उसी वक्त ही जीवपने से मुक्त होने का परम लाभ प्राप्त हो जाता है। तब कहा हैं–

पालिया जो था कि पाना, काम क्या बाकी रहा।
जानना था सोई जानया, काम क्या बाकी रहा॥
लाख चौरासी चक्कर से, थक कर खोली कमर।
अब रहा आराम पाना, काम क्या बाकी रहा॥

वेदान्त कहता है कि मनुष्य को जीव बने रहने में सिर्फ मन इन्द्रियों के आधीन होकर क्षणभंगुर विषय भोग कर्मों अनुसार भोगने पड़ते हैं और आत्मसाक्षात्कार करने पर नित्य निर्विषय सुख की प्राप्ति होती है। तात्पर्य क्या है कि मनुष्य जब तक जीव बना रहता है तब तक अध्यासवश यही कहता रहता है कि आंखों से देखना ही मेरा देखना है कानों से सुनना ही मेरा सुनना है और जिह्वा से रस

लेना मेरा रस लेना है परन्तु जब अपनी आत्मा का ज्ञान प्राप्त करता है तो उसी वक्त कहता है कि देखने का देखना मैं हूँ, सुनने का सुनना मैं हूँ, मैं किसको देखूं किसको सुनूं और किसका हर्ष करूं किसका शोक करूं । तब कहा है—

कहना सुनना देखना, होइ रह्यो जब आप ।
सहजे ही चिदरूप में, मगन भयो तजताप ॥

जैसे दर्पण में पड़नेवाला मुखाभास जब उलट कर अपने मुख की ओर देखने लगता है, तो समझो अपनी ही असलियत को पाता है, वैसे अन्तःकरण में पड़नेवाला जीवाभास जब उलट कर अपने आत्मा की ओर देखने लगता है; तब वो ही रूप हो जाता है और उसके जीवपने का अभिमान निवृत्ति हो जाता है । फिर आठों याम उसका आत्म–पालन का अभ्यास सहज ही बढ़ने लगता है ।

॥ ॐ तत्सत् ॥

॥ ओ३म् जय सच्चिदानन्द ॥

आत्म–पालन

प्रश्न : हे भगवन् ! जब आत्मा से ही सब शरीर मन इन्द्रियों का पालन हो रहा है, तब आप आत्मपालन किसे कहते हैं ?

उत्तर : जब यह जीव भोक्तापने के भारी भ्रम को त्यागकर अपने अभोक्ता आत्मा का सब वर्ताव में सावधान होकर स्मरण चिंतन करता रहता है, इसी का नाम आत्म–पालन है । जैसे शरीर का पालन–पोषण अन्न, जल वायु कर होता है वैसे आत्मपालन वेदांत के श्रवण, मनन और निदिध्यासन से होने लगता है । अर्थात् दिन प्रतिदिन देहाध्यास को मिटाना और आत्मक निश्चय बल को बढ़ाना

इसका नाम आत्म-पालन है। जिस कारण विषय भोगरूप प्रवृत्ति से अपने को नित्य निवृत्तिरूप मानता हुआ आत्मवेत्ता सदा अपने को तृप्तरूप में अनुभव करता है, फिर उसमें किसी प्रकार की भी आत्म-दुर्बलता नहीं रहती।

प्रश्न : आत्मिक-दुर्बलता किसे कहते हैं?

उत्तर : जो मनुष्य दिन रात अपने को, मैं देह हूँ, मैं दीन हूँ, मैं वर्ण आश्रम हीन हूँ, ऐसा मानता हुआ मन इन्द्रियों के आधीन जीवन बिता रहा है, इसका नाम आत्म-दुर्बलता है।

प्रश्न : इसी आत्मिक दुर्बलता से मनुष्य की क्या हानि होती है?

उत्तर : वह मनुष्य समझो अपनी आत्मा की हिंसा कर रहा है, जो सारा दिन शरीर आदि के आराम और मान सनमान के पीछे लगा रहता है, परन्तु आत्मा के विषय में थोड़ा भी ज्ञान नहीं रखता।

प्रश्न : नित्य अजर-अमर आत्मा की हिंसा कैसे हो सकती है?

उत्तर : जैसे शास्त्रों में किसी महापुरुष का अपमान करना या झूठा कलंक लगाना उसे हिंसाके समान दोष कहा गया है। वैसे नित्य शुद्ध साक्षी आत्मा को सुखी-दुःखी विषयी मान कर उसे जन्म-मृत्यु का कलंक लगाना भारी हिंसा दोष के समान है। जिसका फल इस लोक और परलोक में भोगना पड़ता है। अर्थात् इस लोक में तो सारा जीवन शरीर मन इन्द्रियों के आधीन अपने को कर्ता-भोक्ता मान कर व्यतीत करता है और परलोक में उन शुभा-शुभ कर्मों के अनुसार अनेक जन्म-मृत्युरूपी कष्टों को भोगता रहता है। तब कहा है।

आत्म भिन जो-जो किया, सो-सो भ्रम को मूल ।
कायक वाचिक मानसिक, सब अपनी है भूल ॥
सब अपनी है भूल, मोक्ष हित करे जो करनी ।
ज्यों रवि चाहे तेज, जावे खद्दूत (तारों) की शरणी ॥
कहे गिरधर व विराय साधे सो सभी अनात्म ।
सुते सिद्धि नित्य मुक्ति, है तूँ आत्म ॥

अर्थात् अपने आत्मा के जाने बिना जो—जो तुमने किया वो सब भ्रम का कारण हुआ ! शरीर, मन आदिकों का जो आत्मा के अज्ञान कर पालन किया, वो तुम्हारी भारी भूल सिद्ध हुई और मोक्ष के लिए आत्मज्ञान के सिवाय अनेक प्रकार के उपाय तुमने किये, वे ऐसे निकले जैसे सूर्य प्रकाश के लिए तुच्छ खद्दूत की खोज में निकले । इस प्रकार आत्म—पालन के बिना जो भी तुमने किया, वो अनात्मा ही सिद्ध हुआ और तुम अपने को असिद्ध शक्ति हीन अनुभव करने लगे ।

उदाहरणार्थ : एक आदमी ने शेर का छोटा बच्चा बड़े प्रेम से पाला, आप भूखा रह कर भी उसे बहुत कुछ खिलाता था, फिर तो जल्दी ही शेर का बच्चा बड़ा जोर पकड़ गया । एक दिन वह आदमी सोया हुआ था और शेर का बच्चा उसका हाथ चाट रहा था, तो अकस्मात दांत लगने से उसके हाथ से खून निकल आया । इतने में वो आदमी जाग उठा और शेर के बच्चे से अपना हाथ छुड़ाने लगा पर वो कब छोड़ता है । कितनी कोशिश करने पर भी शेर बड़-बड़ कर उसका सारा हाथ चबा गया । ठीक इसी प्रकार जो आदमी अपना आत्मपालन छोड़ कर सिर्फ मन इन्द्रियों के पालन पोषण में लगा हुआ है, उसके मन इन्द्रियां कब्जे से बाहर

निकल जाते हैं और अपने में आत्मिक बल न होने के कारण सारा जीवन उनके आधीन खो डालता है ।

वेदांत कहता है कि अगर आप सब दुर्बलताओं से ऊपर उठना चाहते हैं तो आत्म-पालन करना सीखो । आज कल हमारे में उल्टापना घर कर गया है जो आत्मपालन से सौ गुनां अधिक शरीर मन इन्द्रियों के पालन में लगे हुये हैं । जैसे एक आदमी भांग के नशे में घड़ी घड़ी सिर पर हाथ फेर रहा था किसी ने पूछा ये क्या कर रहे हो ? उसने उत्तर दिया कि सर से टोपी उतारना चाहता हूँ । वास्तव में उसके सिर पर टोपी थी ही नहीं तो उतरे कहां से । वैसे ही अविद्या के नशे में आदमी दिन–रात इतनी चिन्ता में लगा हुआ है कि मैं अपनी आत्म का दुख दूर करना चाहता हूँ । पर वास्तविक कर आत्मा में दुख है ही नहीं तो दूर कहां से होवे । गीता में भगवान ने अर्जुन को कहा कि सब का आत्मा सत् चित्त आनन्दरूप है फिर भी हम नहीं समझते तो यह अविद्या का प्रभाव है जिसकर हम विपरीत वर्ताव पसंद करते हैं । जैसे कोई मनुष्य ठंडी के कारण घर से सुवाटर पहन कर निकला हो तो भी किसी दुकानदार को कहने लगा कि मेरे पास सुवाटर नहीं है । कोई गरम सुवाटर पहिनाओ । दुकानदार ने देखा कि यह तो उलटा बोल रहा है, वह सुवाटर तो इसने पहले ही पहना हुआ है । ठीक इस प्रकार मनुष्य की आत्मा पहले ही सुखरूप है तो भी अविद्यावश विषय भोगों की बाजार में सुखी होना चाहता है । जब किसी महा पुरुष के समीप जा कर कहता है कि मैं सुखी होना चाहता हूं, तब वह अविद्या के निवृत्ति का उपदेश देकर कहता है कि तुम्हारा आत्मा पहेले ही सुखरूप है, तुम आत्मा के सुखी करने के बदले उसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करो । तब कहा है ।

ज्ञान निष्ठा की जानत ज्ञानी ।
और सकल जन भर्म भुलानी ॥
जपी तपी और ध्यानी ।
विवेक वैराग आगे है ठाडे ॥
मुक्त न जानी निशानी ।

वेदान्त में आत्मपालन करनेवालों को देवता और सिर्फ शरीर इन्द्रियों के पालन पोशन करनेवालों को असुर नाम से वर्णन करा गया है । क्योंकि वह मनुष्य आत्मक पूजन छोड़ कर हाड चाम के पुतले का पूजन करने लगा है ।

ब्रह्मवेता याज्ञवल्क मुनि अपने मेत्री नामा स्त्री के प्रति उपदेश के आरंभ में यही कहा था कि हे मेत्री ! जो पति स्त्री को आत्म-दृष्टि से न देख कर देहदृष्टि से देखता है उसके लिए स्त्री मोह बन्धन का कारण होती है । और जो स्त्री पति को आत्मदृष्टि से नहीं देखती उसके लिये पती स्वार्थवश बन्धनरूप है । इस प्रकार पिता पुत्र को और पुत्र पिता को, जो आत्मदृष्टि से नहीं देखते, वह एक दूसरे के लिये बन्धनरूप हो जाते हैं । क्योंकि आत्मपालन के बिना मनुष्य में मोह ममता का पालन बढ़ने लगता है, जिस कारण गृहस्थ आश्रम भारी बन्दीगृह बन जाता है । तब कहा है ।

बिना आत्मज्ञान, ममता ना मिटे मनकी,
चाहे सौ साधन करे, पढ़े वेद पुरान ।
गीता में भगवान अर्जुन को ऐसे कहा ॥

उदाहरणार्थ : किसी ब्राह्मण ने अपने बालक को बड़े मेले में जाता हुआ देखकर गले में एक सुन्दर माला पहिना दी और कहा इस माला को भूलना मानों अपने को भूल जाना है । फिर तो

बालक की माला में बड़ी प्रीति बढ गई । एक समय मेले में रात को सोया हुआ उस बालक के गले से किसी ने माला उतार ली । सूबह को उठते ही बालक माला माला करता हुआ उसे ढूढने निकला । जब उसी माला को एक गधे के गले में पहने हुए देखा तो भर्म वश उसे ही मालावाला मान कर आगे कर दिया और आप गधे के पीछे पीछे घर को चलने लगा ।

यह देख कर घरवालों ने दरबाजा बन्द कर दिया लड़के ने आवाज दी कि दरवाजा खोलो, तो अन्दर से आवाज आई कि गधे को यहां से हटाओं मगर लड़का कहने लगा कि पहले माला-वाला गधा आएगा और उसके पीछे मैं, क्योंकि माला जो उसको पड़ी है । इस प्रकार न बालक गधे को पीछे हटाता है न घर का दरवाजा खुलता है । ठीक इसी प्रकार मनुष्य को इस जगतरूपी जलसे में आने के समय आत्मा के मैं पने का सोमान प्राप्त हुआ है परन्तु अविद्या की निंद में वो मैं रूपी माला अहंकार ने इस शरीररूपी गधे को पहना दी जिस कारण मनुष्य उसी अज्ञान वश इस शरीर को ही मैं मान कर आगे कर दिया है इसका ही मान सन्मान चाहता है । अर्थात् पहले शरीर पालन पीछे आत्मा का ज्ञान, अगर मोक्ष के दरवाजे पर याने सत्संग साधन में आता है तो भी पहिले शरीर का आराम पीछे आत्मा का ज्ञान परन्तु परमार्थ से आवाज आती है कि पहले इस शरीर से मैं पने को हटाओ । सो जब तक इस आदेश का पालन नहीं होता है तब तक न मोक्ष का दरवाजा खुलता है न मनुष्यजन्म सफल होता है । तब कहा है ।

क्यूं न पाया गुरू ज्ञान, जब देह में आराम था ।
क्यूं न किया कुछ दान, जब घर में सामान था ॥

खुली थी बाजार, सौदा ना किया !
हो गया दर, बंदि, गाफल रो दिया ॥

वेदान्त कहता है कि अपनी आत्मा पर निर्भर रहना सीखो तो कोई भी संसार का प्रवर्तन आप को चलायमान न कर सकेगा, जैसे तैरना सीखा हुआ मनुष्य पानी में आप पर निर्भर हो कर तैरने लगता है वैसे आत्मपालन का अभ्यास सीखा हुआ जिज्ञासु संसार के किसी भी पदार्थ पर निर्भर न हो कर अपने आत्मक बल पर ही सफलता पाता है । गीता में ऐसे व्यक्ति को स्थितप्रज्ञ के नाम से वर्णन करा गया है । तब कहा है ।

चाहे समझो आज, चाहे समझो जन्म अनेक ।
जब समझे तब समझलो, तुलसी आत्म एक ॥

॥ ॐ ॥

निज निवृत्ति का ज्ञान

प्रश्न : हे भगवन ! शरीर मन आदकों की प्रवृत्ति के बीच में हम अपने आत्मा को नित्य निवृत्तिरूप में कैसे अनुभव करें ?

उत्तर : वेदांत में निवृत्ति तीन प्रकार की वर्णन की गई है, एक बहार से निवृत्ति याने शरीर इन्द्रियों से कुछ भी न करना चुपचाप बैठे रहना, दूसरी चित्त के चिंत्वनरूप प्रवृत्ति को ध्यानयोग के बल से निवृत्ति करना, और तीसरी सहज निवृत्ति अपने आत्म साक्षात्कार से प्राप्त होती है। जिसमें प्रवृत्ति का लेश मात्र भी नहीं है क्योंकि उस कर सर्व प्रकार के प्रवृत्तियों का अनुभव होता है इस लिए वो स्वतः सिद्ध निवृत्तिरूप है ।

प्रश्न : अनुभव स्वरूप किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो मन बुद्धि आदिकों को जानने वाला और जिसे मन बुद्धि कर जाना न जाए, उसे अनुभव स्वरूप कहते हैं। जैसे साधारण अवस्था में लोग कहते हैं कि मैं शरीर मन इन्द्रियों को जानता हूँ और उनके सुख-दुःख को पहिचानता हूँ, फिर भी कहते है कि हम अपने आपको नहीं जानते, ये ही बड़ा आश्चर्य है।

प्रश्न : उस अपने आपको कैसे जाना जाए ?

उत्तर : जब जानन हार ही आप है, फिर आपको आप किस कर जानेंगे ? अगर तुम अपने को और किसी उपाय कर जानने का हठ करोगे, तो उसी प्रवृत्ति अनुसार अपने को मानकर किसी भ्रममें पड़ जाओगे। क्योंकि अपने जानने की इच्छा आपको परीछिन्न बना देगी।

प्रश्न : उपासक लोग जो भगवान के रूप देखने का यत्न करते हैं, क्या उन्हें भगवान का दर्शन नहीं होता ?

उत्तर : उन्हें भावना अनुसार भगवान का दर्शन किसी न किसी लीला विग्रह प्रवृत्तिरूप का ही होता है, परन्तु परमात्मा के वास्तविक निवृत्तिरूपका दर्शन तो अपने आत्मा से अलग नहीं हो सकता। तब कहा है—

कोई सूरत मुझे माने, कोई मुतलक पहचाने है।
कोई खालक पुकारे है, कोई कहता है यह इन्सा है।
मेरी हस्ती में यकताई, हुई हरगिज नहीं बनती।
सवाइ मेरे न था होगा, यह हर्फ आरफो के है॥

उदाहरणार्थ : एक समय भगवान श्री कृष्णचन्द्र ने देखा कि मेरे को गोपीए और गुवाल मक्खन चोर मटिका फोर और दूध दही

खाने वाला कह कर बड़े कलंक लगाते हैं । उन्हें सावधान करने के लिए एक दिन भगवान बन से अंतरध्यान हो गए । गोपी और गुवाल जगह जगह खोजते भगवान का नाम लेकर पुकारते थक गए, परन्तु उन्हें भगवान का दर्शन नहीं हुआ फिर तो वह उन्हें भगवान के लिए लाया हुआ मक्खन, दही, निरास हो कर वापस ले जाना पड़ा । जब दूसरे दिन भगवान को बन में गऊएँ चराते देखा तो सब गोपी गुवाला आ कर कल न मिलने का कारण पूछने लगे, तो भगवान ने उत्तर दिया कि मेरे गुरु दुरवाशा ऋषि जमुना के उस पार आए हुए हैं, में उनके दर्शनार्थ वहां गया था फिर तो सब गोपी गुवालों ने ये निश्चय कर लिया कि हमें भी अवश्य वहाँ चल कर दर्शन करना चाहिए । कल को सभी सुन्दर भोजन बनाकर दही मक्खन साथ लेकर जमुना के उस पार जाने के लिए त्यार हो कर आए । भगवान से पूछा कि हम जमुना नदी के उस पार कैसे जाए वहाँ कोई नाव तो थी नहीं । तब भगवान ने कहा कि तुम जमुनाजी के सामने जा कर कहो कि अगर भगवान कृष्ण निआहारी है, कभी दूध–दही–मक्खन खाया ही नहीं और गोपी गुवालों से कोई लीला की ही नहीं तो हमें उस पार जाने का रास्ता देओ । यह सुन कर सब चकित रह गए कि ऐसी उलटी प्रार्थना पर हमें जमुनाजी रास्ता कैसे देगी ? आखिर में कितने गुवाल सहमत हो गए कि चलो तो सही सच झूठका पता वहां लग जाएगा । जब जमुनाजी के किनारे सब मिल कर बड़े प्रेम से कहने लगे कि हे जमुनाजी, अगर श्री कृष्ण सदा निरआहरी है किसी गोपी गुवाल छुहे तक नहीं तो हमें उस पार जाने का रास्ता देओ । फिर तो आखें खोलने की देर थी, आधी जमुना इस तरफ हो गई और आधी उस तरफ, बीच के रास्ते पर गोपी गुवाल आश्चर्य करते हुए

उस पार पहुँच गए । वहाँ दूर से देखा तो दुरवाशा ऋषि अकेले बैठे हुए हैं, फिर तो समीप आकर चरणों में प्रणाम कर सब कहने लगे कि पहले हमारा भोजन स्वीकार कीजिए । दुरवाशा ऋषि ने कहा कि तुम घबराओ मत, मेरे को इतनी भूख है जो तुम्हारे भोजन से भरे हुए सब बर्तन खाली कर देऊँगा, यह सुन कर गोप-गुवाल बड़े प्रसन्न हुए । और दुरवाशा ऋषि भी धीरे धीरे सारा भोजन खा पी गए और सत्संग वार्तालाप करने के पश्चात, जब सायंकल होने को आया तब गोपी गुवालों को आखिर पार जाने की चिन्ता लगी क्योंकि वे भगवान से लोट कर आने का उपाय पूछ कर ही नहीं आए थे । जब दुरवाशा ऋषि को अपना सारा वर्तान्त बता कर पूछने लगे कि अब हम उस पार कैसे जायें, तब दुरवाशा ऋषि ने कहा कि अब जमुना जी को यह जा कर कहो कि अगर दुरवाशा ऋषि कभी भी कुछ खाते पीते नहीं सदा अभोक्ता स्वरूप हैं, तो हमें पार जाने का रास्ता देओ । यह सुन कर सभी गोपी गुवाल ऋषि की और ताकने लगे कि अभी अभी दस आदमियों का भोजन खा कर किसने बर्तन खाली कर दिए ! ऋषि ने मुसकरा कर कहा कि अगर तुम्हें विशवास नहीं आता तो और कोई उपाय पार जाने का नहीं है, फिर तो गोपी गुवाल हठ हार कर ऋषि को प्रणाम कर जमुना जी के किनारे आ खड़े हुए और यही प्रार्थना करने लगे, कि हे जमुनाजी ! अगर दुरवाशा ऋषि सदा निरआहरी है खाने पीने को छुहते तक नहीं तो हमें उस पार जाने का रास्ता दोओ । इतने में जमुनाजी आधा इधर आधा उधर हो गई । सर्व गोपी गुवाल दौड़ते हुए उस पार पहुँच कर परस्पर कहने लगे कि ये सत्य है या वो सत्य है ? यह गोप्य रहस्य समझने अर्थ कलि को सब भगवान को बन में चारों ओर घेरे हुए बैठ गये कि

बताओ कि आप अभोक्ता कैसे हैं और दुर्वाशा ऋषि निराहारी कैसे हैं ? जिस पर भगवानने मार्मक वचन कहे कि तुम्हें अपने अभोक्ता आत्मा का ज्ञान नहीं, इस लिए सारा दिन शरीर मन इन्द्रियों की प्रवृत्ति के पीछे लगे हुए हो और उनका खान पान स्नान क्रिया सब अपने में मानकर और मेरेको भी भोक्ता दूध दही खाने वाला जानकर भारी भ्रम में पड़े हुए हो । वास्तविक में सब की आत्मा नित्य तृप्तरूप है, जिसके ज्ञान प्राप्ति करने से इन शरीर मन आदकों का भोक्तापना तुम्हें कभी भी छु नहीं सकता; सदा अपने निर्विषय सुख में स्थित रहोगे । इतना उपदेश श्रवण कर सब गोपी गुवाल आत्मजाग्रती में आ गए और समय-समय पर श्री भगवान से निज निवृत्तिरूप आत्मा का ज्ञान सुनकर प्रवृत्ति के बीच में रहते हुए भी अपने को सदा निवृत्तिरूप में अनुभव करने लगे । तब कहा है ।

रहता सभी के संग, पर करता न किस का संग है ।
है रंग आत्म में रंगा, चढ़ता न कचा रंग है ॥
है आप में नित्य युक्ति, और बाहर से प्रवृत्ति है ।
है आप में ही निव्रति, सो इच्छा बिना ही मुक्ति है ॥

प्रश्न : हे भगवन ! इस प्रवृत्तिरूप शरीर मन इन्द्रियों के बीच में हम अपने आत्मा को अक्रिया और निवृत्तिरूप कैसे अनुभव करें ?

उत्तर : वेदान्त कहता है कि निज निवृत्तिरूप आत्मा के अपरोक्ष ज्ञान होने पर आप हजारों प्रवृत्यों के बीच में रहते हुए भी अपने को आकाश वत असंग अनुभव कर सकते हैं । जैसे निर्मल आकाश से चाहे कितने भी बादल गरजें, वायु के तूफान चले, समुद्र के तरंग उछले, पृथ्वी और पहाड़ हिलने लगे तो भी आकाश सदा अक्रिय ज्यों का त्यों स्थित रहता है । इसी प्रकार नित्य निवृत्तरूप

आत्मा के समीप शरीर मन बुद्धि की अनेक क्रिया होती रहें और प्रारब्ध भोग अनसवार कितने ही हानि लाभ संजोग वियोग होते रहे तो भी साक्षी आत्मा ज्यों का त्यों अक्रिय सदा अपने महिमा में स्थित रहता है । तब कहा है ।

बढ़ गया बाल तो क्या परवाह ।
उतर गई खाल तो क्या परवाह ।।
मिल गया माल तो क्या परवाह ।
हुए कंगाल तो क्या परवाह ।।

प्रश्न : हे भगवन ! जब आत्मा ऐसा अक्रिय है तो फिर उसका क्रियावान प्रवृत्तिरूप संघात में क्या आवश्यकता है ?

उत्तर : अगर आप में अक्रिय साक्षी आत्मा न हो तो क्रिया करनेवाले मन आदकों कौन कौन जाने जैसे महा आकाश क्रिया रहित जहाँ तहाँ मौजूद न हो तो संसार की कोई भी हलचल सब बन्द हो जाए । तात्पर्य क्या है जैसे संसार को सिद्ध करने अर्थ अङ्ग आकार रहित आकाश की परम आवश्यकता है । तैसे सम्पूर्ण देह धारणों के मन इन्द्रिय आदकों की प्रवृत्ति को क्रियावन्त करने अर्थ अक्रिय निर्विकार आत्मा के होने की परम आवश्यकता है । जैसे साफ दर्पण बाहर की सम्पूर्ण हलचलों को अपने में दिखाता हुआ आप किसी भी हलचल कर चलायमान नहीं होता ! वैसे साक्षी आत्मा मन आदकों के प्रवृत्यों को प्रकाशता हुआ सदा अपने निवृत्ति रूप में ही स्थित रहता है तब कहा है—

मैं इंद्री न हीं मम इंद्री, मैं साक्षी कूटस्थ असंग ।
भोगे विषय या त्यागे इंद्री, इनसे मेरो नाही संग ।।
ये निसंचय ज्ञानी को जाते, कर्ता दीखे करे न अंग ।।

अर्थात् न मैं इन्द्री हूं न मेरी इन्द्रिये हैं यह तो मशीन की तरह सब आपों अपना कार्य कर रही हैं । मैं तो इनका साक्षी अक्रय कूटस्थ याने कभी न बदलने वाला असंग आत्मा हूँ । संसार में जो भी पदार्थ संगवान और क्रियावान दिखाई देते हैं वो प्रत्क्षण बदलते अन्त में नष्ट हो जाते हैं । जैसे मशीनरी का हर एक पुरजा क्रिया करता गसता हुआ अन्त में क्षीण हो जाता है । वैसे प्रवृत्ति करने वाले ये शरीर मन इन्द्रिया आदक जो है वो टूट फूट कर अन्त में क्षीण हो जाने वाले हैं, परन्तु उनमें निवृत्तिरूप अक्रय आत्मा है, जो सदा एक रस अजर अमर रहता है । ऐसे अनुभव करनेवाले को गीता में स्थितप्रज्ञ कहा गया है ।

प्रश्न : ऐसे असंग आत्मा को मन इन्द्रियों कर क्यूँ नहीं जाना जाता ?

उत्तर : वेद की श्रुति कहते है कि यह निर्विकार आत्मा मन इंद्रियों का विषय नहीं है, क्योंकि मन इंद्रियों को जगत के शब्द, स्पर्श, रूप, रस आदकों का ही ज्ञान होता है । परन्तु आत्मा तो न शब्द है न रस है वह तो सम्पूर्ण कल्पनाओं से परे है । तब कहा है–

बे चून बे नमून कहते, जिसका हर्थे न पाइ ।
देखने में नही आता हादी, ने दियो बताइ ॥

उदाहरणार्थ : एक महापुरुष अपने शिष्य को अति इंद्रिय आत्मा का उपदेश देते हुए कहा कि इस नारगी को पहचानते हो ?

शिष्यने कहा भगवन मैने नारंगी को बहुत दफा देखा है, इसका रूप तो प्रत्यक्ष प्रतीत होता है । गुरु ने कहा ये तो नेत्रों का विषय नारंगी के रंग का ज्ञान हो रहा है, बाकी नारंगी के असलियत का ज्ञान तुम्हें कहां है । शिष्य ने दृढ़ता से कहा कि मैंने कई दफा नारंगी का असली रस पीया है । गुरु ने कहा ये तो जिह्वा

का विषय रस तुमने पान किया है। इस प्रकार नारंगी का सुगन्ध सुपर्श आदि सब नारंगी के बाहरी विषयों का तुम्हें इंद्रियों द्वारा ज्ञान हो रहा है। इसे वास्तविक ज्ञान नहीं कहा जाता।

जैसे किसी मनुष्य के रूप को आप आंखों से पहिचाने, उसके शब्द को कानों से, सुपर्श को हाथों से और उसके सुगन्ध दुर्गन्ध को नासिकाओं से पहिचान कर आप उसे कहें कि मैंने आपको पहिचान लिया, तो वह विचारवान मनुष्य साफ कह देगा कि यह तो मेरा बाहरी हालतों का ज्ञान है, इनको मैं पहचानने वाला इनसे अलग हू जिसका तुम्हें ज्ञान नहीं हुआ, क्योंकि वो इन्द्रियों का विषय नहीं है। तात्पर्य यह है कि जैसे मनुष्य के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान मन इन्द्रियों का विषय नहीं अर्थात् शब्द सुपर्श से परे निज चेतनरूप है। तैसे इस नारंगी का वास्तविक स्वरूप, रूप, रस आदकों से परे निर्विषय दृष्टा है। जिस में यह नाम, रूप आदक कलपित हैं, वैसे ही उसी साक्षी चेतनरूप में तुम्हारे शरीर मन इन्द्रियां कलपित हैं। अब कलपित नारंगी के विषयों का और कलपित मन इंद्रियों का, दोनों प्रकार के सम्बन्ध से असंग होने से सर्व व्यापक परमात्मा सबका आत्मा अनुभव होने लगेगा।

इस प्रकार गोप्य रहस्य ब्रह्मवेत्ता गुरु द्वारा श्रवण कर शिष्य कृतार्थ हो गया और निश्चय करने लगा कि वास्तव में मेरा ही आत्मा नारंगी आदक सारे विश्व का आत्मा है। तब कहा है—

कहूँ क्या अब आपको ए प्यारे।
अवनाशी कब वाचक शब्द तुम्हारे॥
जहां गति रूप की व नाम की है।
वहां गति आज हमारे धाम की है॥

जैसे दिवाली के दिनों में बालक कागज़ के फानूस बना कर उसमें घोड़े हाथी लश्कर की मूर्तियां लगाकर जब रात्रि के समय उस फानूस के बीच में दीपक जलां के रखते हैं तो उसके प्रकाश से फानूस के सारे लश्कर खुद ब खुद दीपक के चारों तरफ फिरने लगते हैं। परन्तु दीपक फानूस के अन्दर ज्यों का त्यों अडोल स्थित रहता है। ठीक इसी प्रकार जगत रूपी जलसे को फानूस की तरह समझो। जिसमें मन के संकल्प विकल्परूपी लश्कर उसी साक्षीरूप प्रकाश के सहारे फिरते नजर आते हैं, परन्तु स्वयं ज्योति आत्मा सदा अपनी निज निवृत्तिरूप में स्थित रहता है। तब कहा है—

जो तुमको हिलाने आवे, वो खुद भस्म हो जाए।
तुम खुद की दीद खोलो, सब दूर हो बलाए॥

॥ ॐ तत्सत् ॥

सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म

हद में बेहद

प्रश्न : हे भगवन! जब हमारा वास्तविक आत्मा इस परिछिन्न शरीर मन इन्द्रियों जितना नहीं है तो फिर उतना प्रतीत क्यूँ होता है?

उत्तर : जैसे महाआकाश घट मठ आदिकों जितना नहीं है तो भी उन उपाधयों में प्रतीत होने के कारण उन जितना दिखाई देता है, परन्तु उन से महाआकाश में कोई परिछिन्नपना नहीं आ जाता। तैसे सर्वत्र पूर्ण परमात्मा इन परिछिन्न मन आदिकों में आत्मारूप होने पर उससे बेहदपने में कोई हदरूपी दीवाल नहीं आ जाती। इसलिये आत्मा को परमात्मारूप ही वर्णन किया गया है। वेद का

महावाक्य कहता हैं (अयमात्मा ब्रह्म) अर्थात् तुम्हारी आत्मा हद से रहित बेहद ब्रह्मस्वरूप है ।

प्रश्न : जब आत्मा अपरिछिन्न ब्रह्म स्वरूप है तो फिर हमारे में हदवाले संकल्प विकल्प क्यों उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : वेदान्त कहता है कि आप में मन हदवाला होने के कारण वो परिछिन्न संकल्प विकल्प उत्पन्नकर रहा है, इसलिये हर एक मनुष्य की अलग अलग प्रवृत्ति प्रतीत हो रही है । जैसे अघाद (अघाह) समुद्र में अनन्त लहरें और तरंग अलग अलग आकार और वर्ताव वाले प्रतीत होते हुए भी इससे समुद्र में कोई भेदभाव नहीं आ जाता ।

प्रश्न : फिर मनुष्य मन के संकल्प विकल्पों से अपने को क्यूँ बंधायमान समझता है ?

उत्तर : जब तक अविद्या की आवरण शक्ति ने जीव के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान ढ़क रखा है, तब तक वो मन की कल्पनाओं को अपने में आरोपण कर सदा चलायमान रहता है, इस लिए मन की कल्पनाओं की आसक्ति का त्याग ही, परम श्रेष्ठ त्याग माना गया है ।

प्रश्न : कितने शास्त्रों में गृहस्थ आश्रम के त्याग को ही परम त्याग कहा है, और आप केवल आसक्ति के त्याग को ही श्रेष्ठ त्याग कैसे कहते हैं ?

उत्तर : यह तो भगवान ने भी गीता में अर्जुन के प्रति कहा है कि बाहर के त्याग से अन्दर के आसक्ति का त्याग ही महान त्याग है । आप सब कुछ त्याग कर किसी घने जंगल में जाकर क्यों न रहें, अगर आसक्ति धन सम्बन्ध में लगी हुई है, तो वह

त्याग भारी बोझ सा प्रतीत होने लगेगा। अगर प्रारब्ध भोग अनुसार किसी वर्णाश्रम में धन पदार्थ सम्बन्धी आदिकों के बीच में रहते हैं। परन्तु किसी पदार्थ के आसक्ति का भाव नहीं पड़ता तो समझो आप सच्चे त्यागी हैं।

प्रश्न : आसक्ति रहित मनुष्य किसे कहते हैं।

उत्तर : जो अपने शुद्ध आत्मा का अनुभव कर संसार सम्बन्ध में शरीर का निर्वाह मात्र मानता है, जिसका जीवनरूपी खजाना विषय भोगों की तरफ खर्च न होकर परमार्थ और परउपकार में लगता है, वो मानुष अपने परिवार में ऐसा रहता है जैसे किसी के घर में आया रहती है, जो छोटे बच्चों का पालन ऐसे स्नेह से करती रहती है मानो बच्चे उसके जिगर के टुकड़े है। परन्तु जब उसकी नौकरी पूरी हो जाती हैं तो वहां से झट अपना बोरी बिस्तरा उठा कर दूसरे घर में चली जाती है, उसे किञ्चितमात्र भी चिन्ता नहीं होती, वैसे आसक्ति रहित मनुष्य भी अपने सम्बन्धी साथियों के बीच में रहता हुआ उनके संयोग वियोग में किञ्चितमात्र भी चलायमान नहीं होता। तब कहा है—

अगर यार की मरजी हुई सिर जोड़ के बैठे।
मोड़ा जिधर उन्हें मुंह मोड़ के बैठे॥
घर बार जो छुड़ाया तो छोड़ के बैठे।
गोदरी जो ओढ़ाई तो ओढ़ के बैठे॥
अगर शाल ओढ़ाई तो शाल में खुश हैं।
पूरे हैं वो ही मरद जो हर हाल में खुश हैं॥

वेदान्त कहता है कि अदृष्ट अनुसार जिन भोग पदार्थ सम्बन्ध का आप त्याग नहीं कर सकते, तो उसकी आसक्ति का अवश्य

त्याग करो। जैसे मृत्यु से पहले कोई अपने शरीर का त्याग नहीं कर सकता, परन्तु निज आत्मा के ज्ञान से उसकी आसक्ति का त्याग कर उनसे बड़े से बड़े कार्य होने पर लोग उससे महान लाभ उठा सकते हैं।

उदाहरणार्थ : एक प्रेमी किसी विरक्त महात्मा को प्रार्थना कर के घर में ले आया। उसने अपनी स्त्री को कहा कि जल्दी से एक दूध का गिलास भर कर महात्मा के वासते ले आओ। स्त्री बड़ी कंजूस थी, वह चाहती थी कि गिलास में दूध तो पड़े मगर मलाई बच जाए। परन्तु ज्यों ही गिलास में दूध डालने लगी तो अचानक मलाई गिलास में आ गिरी, तो स्त्री के मुख से (हाय) हाइ निकल गई। दूध का गिलास महात्माजी के आगे लाया गया वे थोड़े समय सत्संग वार्तालाप कर वहां से चल पड़े। तो प्रेमी ने प्रार्थना की कि यह दूध खास आपके पीने के वासते रखा हुआ है। संत ने उत्तर दिया कि यह दूध हमारे पीने योग्य नहीं रहा। प्रेमी ने चकित हो कर कहा कि दूध तो सुन्दर गऊ का है, और उसमें सिर्फ मीठा और इलायची डाली गई है, तो महात्मा ने मुस्करा कर कहा कि तुम्हारी स्त्री ने और भी कुछ डाला है। स्त्री चौंक पड़ी कि मैंने ज्यादा से ज्यादा मलाई डाली है, विरक्त महात्मा ने कहा उसके साथ तुमने (हाय) हाइ भी डाली है, जिस कारण यह दूध दूषित हो गया अर्थात् हाइरूपी आसक्ति पवित्र में पवित्र वस्तु को दूषित कर देती है। इसलिए आत्म निर्भर होने अर्थ मोक्ष के जिज्ञासू को सब प्रकार की आसक्तियें अपने अन्दर से निकाल कर बाहर फेंकनी होंगी। तब कहा है—

धन की जिसे नहीं चाह है, नहीं मित्र की परवाह है।
आसक्ति विषयों में नहीं, प्रारब्ध पर निरवाह है॥

जो विश्व को मिथ्या मेट कर, आप भी है मिट गया।
मिट कर हुआ फिर आप ही, संसार से सो छुट गया॥

वेदान्त कहता है आपको अहंकार की परीछिन्नता मिटाने के लिये कहीं दूर जाना नहीं है, सिर्फ ब्रह्मवेत्ताओं के इशारे की जरूरत है। जिस से मन इन्द्रियोंकी आसक्ति से मुक्त हो कर पूर्ण ब्रह्म स्वरूप से अपना अभेद अनुभव करना है, क्योंकि शरीर मन आदिकों की प्रवृत्ति की हद उन्हीं तक ही सीमंत है, उससे परे जो असंग आत्मा है वह तो बेहद ब्रह्म स्वरूप ही है।

प्रश्न : जब हमारा आत्मा आदि अन्त से रहित है, फिर उसमें जनम–मृत्यु आदि किस कारण प्रतीत हो रहे है?

उत्तर : जैसे स्वप्न अवस्था में हम अनेक अनहोते आश्चर्य में डालने वाली हलचलें देखते हैं, परन्तु जागने पर हम ज्यों के त्यों ही अपने को अनुभव करते हैं, अर्थात् न हम कहीं गए थे और न हम कहीं से आए। इस प्रकार यह अविद्या रूपी स्वप्न है, जिसमें हम अपने वास्तविक स्वरूप से सोए हुए हैं। इसी कारण अपने में जनम, मृत्यु, हर्ष, शोक आदि अनेक भ्रम देख रहे हैं। जब आत्म ज्ञानरूपी जाग्रती में आते हैं तो फिर अपना अजर अमरपना प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है तब कहा है—

जनन मरण सपने की भावना, जब जागा तब भागा है।
एकोही एक मिला अविनाशी जब उल्ट आप संग लगा है॥

जैसे वास्तविक कर महाकाश में आना जाना नहीं बनता क्योंकि वह पहले ही जहां तहां पूर्ण है, फिर भी कोई घटवाला घटाकाश को या मठाकाश के मटके को उठा कर इधर उधर ले जा कर कहे कि मैं आकाश को इधर उधर ले जा रहा हूँ, तो यह उनका भारी

भ्रम होगा। क्योंकि घड़े और मटके का आकाश तो पूर्ण रूपता कर पहिले ही भरा हुआ है। आकाश में तो आना जाना हुआ ही नहीं, बल्कि मटके का आना जाना वो आकाश में मान रहा है। ठीक इसी प्रकार ब्रह्म परमात्मा आकाशवत अन्दर बाहर सर्वत्र पूर्ण है जिसने यह स्थूल सूक्ष्म आदि शरीर मटके की नियाई लोक परलोक में आ जा रहे हैं। अगर कोई कहे कि आत्मा भी शरीरों को नियाई आ जा रहा है, तो आत्मा का परमात्मा से अलग मानने का भ्रम होगा। वास्तव में आत्मा का स्थूल सूक्ष्म शरीरों के उपाधी करके परमात्मा से भेद प्रतीत हो रहा है, बाकी कर्मों का फल भोगना चिदाभास सहित सूक्ष्म शरीर का धर्म है, कि जहां भी जावे उसे चेतनपना चिदाकाशरूप आत्मा से सहज मिलता रहता है। और स्थूल शरीर से जब तक सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध रहता है तब तक वो भी चलता फिरता प्रतीत होता है।

तात्पर्य यह कि जब तक इस जीव आभास को अपने आत्मा का यथार्थ ज्ञान नहीं होता तब तक वो परिछिन्न अन्तःकरण के साथ लोक परलोक में दर्पण की छाया वत भ्रमण करता है। वास्तविक स्वरूप आत्मा में न जनम है न मृत्यु है। तब कहा है—

असाँ ना कहीं दे जाए हूं, जाए कहि न निपाए हूं।
माई बाप न साडा कोई, इहा गालह हैंग्त बिच होई।
घट घट की तुम सैर सभोई, सुरत साफ समाए हूं॥

प्रश्न : जब एक ही ब्रह्म सबका अपना आप बेहद भरपूर हैं, फिर मनुष्य अपने को लोक परलोक में आता जाता क्यू मान रहा है?

उत्तर : वास्तव में आना जाना मन के संकल्प कर प्रतीत हो रहा है। जैसे कोई मनुष्य मैदान में फेरी पाकर खड़ा हो जाए

और कहने लगे कि यह सारा मैदान घूम रहा है, पर वास्तव में उसका सिर घूम रहा है। ठीक इस प्रकार मनुष्य का मन सारा दिन संकल्पों के चक्कर में फिर रहा है, पर भ्रमवश मनुष्य कहता है कि आत्मा फिर रहा है। पर वेदान्त कहता है कि तुम्हारा आत्मा तो निर्मल आकाशवत अचल–अडोल है, जिस में मनरूपी पक्षी जहां चाहे तहां स्वतन्त्र फिरता रहता है। जैसे आकाश में हवाई जहाज और राकेट आदि कितने भी ऊपर जाते हैं तो भी आकाश का अन्त नहीं पा सकते। तैसे मन जितना भी चेतन चिदाकाश में दौड़े तो भी उसकी पूर्णता का अन्त नहीं पा सकता। तब कहा है—

देह अभमाने गलिते, विज्ञाते परमात्माने।
यत्र यत्र मनो जाते, तत्र तत्र समाधे॥

अर्थात् जिसका देह अभिमान मिट गया है और जिसने परमात्मा को अपने आत्मा में साक्षात्कार किया है, ऐसे मुमुक्षु का जहां जहां मन जाता है वहां वहां उनकी समाधी होती है। क्योंकि अब उस मन को जहां तहां चेतन चिदाकाश का अनुभव हो रहा है, उसके अन्दर से नामरूप के संकल्प विकल्प मिट जाते है।

प्रश्न : जब हमारा आत्मा परमात्मा स्वरूप ही है, तो लोक परलोक में कौन जाता है?

उत्तर : लोक परलोक में आना जाना जीव आभास का होता है। आत्मा का नहीं। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जो जल के पात्र में पड़ता है, वो ही जल पात्र के साथ गमनागमन करता दिखाई देता है। परन्तु सूर्य तो सदा अपनी महिमा में स्थित रहता है। तैसे आत्मारूपी सूर्य का प्रतिबिम्ब जीवाभास जिस अन्तःकरणरूपी पात्र में पड़ता है तिस अन्तःकरण के साथ गमनागमन कर लोक परलोक का

भोगता बनता है। परन्तु चेतन आत्मा जो आकाशवत पूर्ण है उसका कभी भी गमनागमन नहीं होता। और जीव भी जब अपने आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है, तब वो भी गमनागमन से मुक्त हो जाता है। इस लिए कहा है—

तीन गुणों से सभु जगु बांधा, चोथा गाँव हमारा।
नाम शहर का बेगम नगरी, मारा प्रेम नगारा॥
साधो वहाँ घर खेल हमारा॥

उदाहरणार्थ : एक समय नारदमुनि ने भगवान कृष्ण से पूछा कि आपकी १६१०८ पटरानियां है, क्या उन सबको दर्शन मिलता है। भगवान ने कहा, क्यों नहीं। मैं सब जगह पहूँच जाता हूँ, अगर तुम्हें संशय हो तो परीक्षा कर देखो। फिर तो कल को प्रातःकाल होते ही नारद चल पड़ा। परन्तु जहां भी जावे वहाँ भगवान उससे पहले ही मौजूद था। नारद यह देखता हुआ आनन्दमगन हो गया, उसके सब संशय संदेह मिट गए और कुछ बोल न सका। ठीक इसी प्रकार मनरूपी नारद अज्ञान वश ऐसा समझ रहा है कि आत्मा सारे संसार में कैसे व्यापक होगा? परन्तु जब मन को जहां तहां एक चेतन आत्मा का अनुभव होने लगता है, तब बेहद ब्रह्मस्वरूप में उसकी सहज समाधि होती है। तब कहा है—

जिधर देखता हूँ उधर तूं ही तूं है।
हर शै में जलुवा तेरा हूँबहूँ है॥
गुलसतान में जा कर हर एक गुल को देखा।
तो तेरी ही रंगत और तेरी ही बू है॥

वेदान्त कहता है कि ऐसे हद से रहित बेहद ब्रह्म स्वरूप को अपना आत्मा अनुभव करने अर्थ इन परिछिन्न मन इन्द्रियां आदकों

की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जड़ बुद्धि आदिकों को भी वहां से ही चेतनता का ज्ञान मिल रहा है ।

प्रश्न : आजकल कितने साइन्सदान अपने बुद्धि ज्ञान को नेचर वा जड प्रकृति के आसरे किस कारण मानते है ?

उत्तर : उन्हें बुद्धि ज्ञान से परे बेहद ब्रह्मस्वरूप का ज्ञान नहीं हुवा है इसी कारण वो हद से परे शून्य प्रकृति को ही मानते हैं । संसार में आपको तीन प्रकार के लोग मिलेंगे, एक वह जो शरीर के हद जितना अपने को मानते हैं, दूसरे जो बुद्धि ज्ञान जितना अपने को मानते है, तीसरे ब्रह्मवेत्ता हैं जो हद से परे बेहद ज्ञान स्वरूप अपने को अनुभव करते हैं । तब कहा है—

हद हद करते सब गये बेहद गया न कोई ।
हद बेहद के बीच में, रहा कबीरा सोई ॥

कबीर साहब कहते हैं कि बहुत से लोग संसार में हदवाली कामनाओं को करते हुए यहां से निराश होकर चले गए । और किन्ही लोगों ने तो बेहद ब्रह्मस्वरूप को सुनते हुए भी भगवान को हदवाला ही माना परन्तु मैं तो हद बेहद के बीच में निश्चिन्त सोया हुआ हूँ । अर्थात् मन इन्द्रियों से सम्बन्ध कर के तो हद-वाले पदार्थों को जानता हूं और आत्मसाक्षात्कार होने पर हद से परे बेहद ब्रह्म स्वरूप भी अपने को अनुभव कर रहा हूँ । यानि वे हद के अन्दर प्रवृत्ति में दिखाई देते हुए भी बेहद में सदा निर्वि-कार निवृत्तिरूप में स्थित हैं । तात्पर्य यह है कि आत्मवेता इस हद-वाले देह में दिखाई देते हुए भी अपने को विदेह बेहद ब्रह्मस्वरूप में स्थित अनुभव करते है । इसी कारण वह शरीर त्यागने पर भी किसी लोक लोकान्तर में गमन नहीं करते, तब कहा है—

असंग वृत्ति निर्भय ज्ञान।
जीव भाव का भुलाओ ध्यान।
सर्वत्र देखो शुभ स्थान॥

अर्थात् असंग वृत्ति होने पर जब निज निवृत्ति स्वरूप का निर्भय ज्ञान होता है तब परिछिन्न अहंभाव मिट जाता है फिर सर्वत्र ब्रह्म धाम याने जहां तहां अपना ही बेहद स्वरूप निश्चय होने लगता है। यह अवस्था साधारण लोगों की व्यवहार काल में कभी कभी होने लगती है। परन्तु उन्हें विश्वास नहीं होता।

उदाहरणार्थ : एक समय किसी माल गोदाम में कोई मजदूर अनाज की बोरियां इतनी तेजी से सी रहा था। जो उसे अपना आप ही याद नहीं था। उसके हाथ सूए में सुतली डालते ही थे तो दूसरी बोरी उसके सामने आ जाती थी और आगे की बोरी उठा ली जाती थी। वह ऐसा तल्लीन होकर काम कर रहा था, जो उसे थकावट तो क्या पर उसे भूख—प्यास भी याद नहीं थी। जब दिन के दो बजने लगे तो उसका एक मित्र आ कर कहने लगा कि, आज तुमने अभी तक रोटी नहीं खाई, दिन के दो बज गए है। सबेरे से तुमने पानी भी नहीं पीया, तुम्हारा सारा शरीर थक गया होगा। मित्र के ऐसे स्नेहपूर्ण वचनों को सुन कर वह परिछिन्न अहंभाव में आ गया। तब उसे मित्र के कहे अनुसार भूख प्यास थकावट आदि सब अपने में भासने लगे फिर तो सारा काम काज छोड़कर कहने लगा मेरे को बड़ी भूख लगी है प्यास लगी है; और मैं आराम करना चाहता हूँ। इस प्रकार वो मैंपने के हद में आ गया, और पहले जब बड़ी तेजी से काम कर रहा था, तब उसे वह स्वतः शक्ति हद के बाहर बेहद स्वरूप से मिल रही थी। अब

वह हद के अहंभाव में आ गया, उसे आलस्य ने घेर लिया है। ज्यादा काम नहीं कर सकता। तात्पर्य क्या है कि मनुष्य के भीतर से हद और बेहद दोनों प्रकार के कार्य होते रहते है जिनका उन्हें पूरा ज्ञान नहीं। अगर किसी से पूछा जाए कि आज आपने जो स्वप्न देखा वह किन आंखों से देखा और सुषुप्ति अवस्था में जो तुम्हें सुख मिल रहा था वो कैसे अनुभव किया। चाहे इसका उनके पास उत्तर नहीं भी हो तो भी है, उनके भीतर बेहद ब्रह्मस्वरूप का चमत्कार जिसे वह हदवाली बुद्धि से निश्चय नहीं कर सकता। तब कहा है—

सुरत साफ अजूनी पाया, काया दाया दूर गंवाया,
हद कर चूर बेहद समाया, चिरया से फिर बाज हुआ।
श्री सतगुरु का समराज हुआ, दिलशाद आजाद हुआ॥

॥ ॐ तत्सत् ॥

॥ ऐक मेवा दुयं ब्रह्मा ॥

मुक्त अवस्था

पा लिया जो था कि पाना, काम क्या बाकी रहा।
जानना था सोई जाना, काम क्या बाकी रहा॥

प्रश्न : ऐसे बेहद ब्रह्मस्वरूप का ज्ञान हमारे हदवाले हृदय में किस प्रकार प्रगट होगा?

उत्तर : ब्रह्मवेत्ता महा पुरुषों के द्वारा वेदान्त का श्रवण मनन और निदिध्यासन करने पर श्रद्धावान जिज्ञासु शीघ्र ही परिछिन्नता से मुक्ति पा कर अन्त में विश्राम पाता है।

प्रश्न : परमात्मा को अपने से जुदा मानने का कारण क्या है?

उत्तर : अज्ञान से जो मनुष्य अपने आत्मा और परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को जाने बिना ही उसकी खोज अपने से अलग करने लगता है। जैसे किसी को कहा जावे कि देवदत्त को बुला लावो। वे देवदत्त को पहचाने विना उसकी खोज में दूर से दूर चला जाये। परन्तु देवदत्त तो उसी घर में ही मौजूद था और उसे न जानने के कारण देखते हुए भी नहीं देखो। ठीक इसी प्रकार हमें वेद शास्त्र कहते हैं कि ईश्वर को बुलाओ, वो शीघ्र मिल जाएगा, परन्तु हमें उसका ज्ञान न होने के कारण उसे दूर से दूर समझकर कहां से कहां को ढुंढ़ते हुए निराश हो जाते हैं। वास्तव में वो परमात्मा अपने आत्मारूपी घर में ही मौजूद है, परन्तु आत्मा के ज्ञान विना हम उसे देखते हुए भी नहीं देखते। तब कहा है—

दिल्बर पास वसदा है, ढूंढणा किथे जावणा।
गली ते बजार ढूंढो, शहर ते बाहर ढूंढो।
घर घर हजार ढूंढों, पता नहीं पावणा॥

प्रश्न : जब ज्ञानी–अज्ञानी का वास्तविक आत्मा एक ही परमात्मा है तो ज्ञानी अपने को मुक्त और अज्ञानी अपने को बंधायमान क्यूँ मानता है?

उत्तर : असल में ज्ञानी अज्ञानी दोनों का आत्मामुक्त स्वरूप है, पर भ्रमवश अज्ञानी शारीरिक शीत उष्ण धर्म, प्राणों के भूख, प्यास धर्म और मन के हर्ष शोक धर्मों को अपना मान कर बंधायमान रहता है, और ज्ञानी अपने निज साक्षी असंग धर्म बिषय स्थित रहकर जीवन मुक्ति विचरता है।

प्रश्न : धर्म और अधर्म का क्या स्वरूप है?

उत्तर : पराए धर्मों को अपना धर्म मानना अधर्म है, और अपने

वास्तविक स्वरूप में स्थित रहना परम धर्म है । जैसे शब्द स्पर्श रूप रस आदिक इन्द्रियों के धर्म है, हर्ष शोक मन का धर्म है, शरीर का जीवन चलाना प्राणों का धर्म है, और किसी विषय में निश्चय या अनिश्चय करना बुद्धि का धर्म है । इसी प्रकार अनेक धर्मों को अपने में मानने से मनुष्य भारी बन्धनों को पाता है । इसी कारण भगवान ने गीता में अर्जुन को साफ कह दिया कि तू सम्पूर्ण शरीर मन इन्द्रियों के धर्मों को त्याग कर मेरी शरण याने मेरे वास्तविक स्वरूप में अभेद हो कर निर्भय हो जाओ । तब कहा है—

अपना आपमें आप गंवाके, ब्रह्म स्वरूप कहावे कौन ।
देह धर्म दी दावा सुटिके, इस रस्ते पर आवे कौन ॥
तत्वमसि कह वेद पुकारिन, सत्गुरु सो तू साफु सुणावन ।
जीवण जादू डावे कौन ॥

प्रश्न : ज्ञानवान जब जीवभाव से मुक्त साक्षी आत्मा हो कर विचरता है, तब उनका व्यवहार किस प्रकार होता है ?

उत्तर : वेदान्त कहता है जैसे ज्ञानवान की प्रवृत्ति पहले त्रिपुटी द्वारा होती रहती थी, वैसे मुक्त अवस्था में भी होने लगती है ।

प्रश्न : त्रिपुटी किसे कहते हैं ?

उत्तर : ज्ञाता, ज्ञान ज्ञेय इन तीनों का नाम त्रिपुटी है । अर्थात् चेतन के प्रतिबिम्ब सहित बुद्धि का नाम ज्ञाता है । पांचों इन्द्रियों कर जो कुछ भी देखा सुना जाता है उसका नाम ज्ञान हैं और जिन स्थूल पदार्थों का ग्रहण त्याग होता है उसका नाम ज्ञेय हैं । इस प्रकार ज्ञानवान का ज्ञातापना अन्तःकरण में शब्द स्पर्श आदकों का ज्ञान इन्द्रियों में ज्यों का त्यों बना रहता है, इसी कारण जगत के ज्ञेय पदार्थों के ग्रहण त्याग का व्यवहार स्वभाविक होता रहता है ।

प्रश्न : जीवन मुक्त ज्ञानवान को किन लक्षणों कर जाना जाता है ?

उत्तर : ज्ञानवान के लक्षण स्वसंवेद हैं वह तीन गुणों से परे होते हुए भी प्रकृत्ति व्यवहार में विचरते दिखाई देते हैं । उनके लक्षणों को माननेवाला स्वयं भ्रम में पड़ जाता है । क्योंकि ज्ञानवान की प्रवृत्ति अन्तःकरण द्वारा होती है कभी उनके सात्वकी लक्षणों को देख लोक बड़ी स्तुति करने लगते है, कभी मन के रजोगुणी प्रवृत्ति को देख कर बड़े आश्चर्य में पड जाते हैं, और कभी तामसी गुणों को देख कर भारी संशय संदेह करने लगते हैं । परन्तु ज्ञानवान सदा अपने को तीनों गुणों से अतीत अनुभव करता हुआ अपनी महिमा में स्थित रहता है, इस गुह्य भेद को साधारण लोग नहीं जानते । तब कहा है—

कोई भूला भोगे भोग, सत्य जान संसार को ।
कोई जाने जूठ जगत को, साधे जप तप योग ।
पर ज्ञानी रहें अरोग, दोनों की दुबिधा से ।।

अर्थात् संसार में तीन प्रकार के लोग आपको दिखाई देंगे । एक भोगी, दूसरे योगी, तीसरे अरोगी । याने साधारण लोग जो दिन रात विषय वासनाओं में फसे रहते हैं, वह भोगी और जो भोगों को दीर्घ काल का रोग मान कर, जगत को झूठा जानकर, जप, तप साधनों में लगे रहते हैं, उनका नाम योगी और जो आत्म साक्षात्कार के प्रभाव से मन इन्द्रियों की प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों क्रियाओं से अपने को असंग अनुभव करते हैं वह अरोगी यानि जीवन मुक्त कहे जाते हैं । जैसे सूर्य सब पदार्थों को प्रकाशता है और उनके संयोग वियोग में समान रहता है, तैसे ही मुक्त आत्मा ज्ञानवान अन्तःकरण को अपने साक्षीभाव से प्रकाशता हुआ, उन के

ग्रहण त्याग से सदा असंग रहता है । तब कहा है—

समुझ लेओ मन मेरा, मैं असंग साहब हूं तेरा ।
चाहे तूं देव दानव बन जावे, चाहे तूं ब्रह्म लोक सुख लावे ।
ये सबु कलिपत काया, चाहे नरक दुख घेरा ॥

प्रश्न : मुक्त अवस्था में ज्ञानवान कैसे अपने को अन्तःकरण के गुण स्वभाव से शुद्ध, असंग अनुभव करता है ?

उत्तर : जैसे शुद्ध स्फटिक मणि अनेक रंगों वाले फूलों के बीच में रहती हुई और उनके लाल, पीले प्रतिबिम्बों को अपने में दिखाती भी आप शुद्ध साफ रहती है । तैसे ज्ञानवान अन्तःकरण के गुण स्वभावों को अपने शुद्ध साक्षी रूप से सिद्ध करता हुआ अन्दर बाहर सदा चेतन असंगभाव से रहता है । अर्थात् उसमें जो मनकर मनोमय और बुद्धि कर बुद्धि मयपना दिखाई देता है, सो केवल प्रतिबिम्ब मात्र हैं । वेद की श्रुति भी कहती है कि ब्रह्मवित ब्रह्मभवति अर्थात् ब्रह्मवेता ब्रह्मस्वरूप ही है । वह सदा अपने को सर्व दृष्टिरूप निश्चय कर, इस दृश्यरूप संसार में निरबंधन विचरता है ।

प्रश्न : दृष्टा और दृश्य का क्या स्वरूप हैं ?

उत्तर : जानने वाले को दृष्टा और जानने में आने वाला को दृश्य कहा है । वह दृष्टा एक है और दृश्य अनेक हैं, जब तक हमें अपने दृष्टारूप को नहीं पहचाना तब तक दृश्य के साथ तद्रूप रह कर अनेक दृष्टियों से कई सम्बन्धरूप सृष्टियें बनाते हैं । तब कहा है—

दृष्टा से दृष्टि भई, दृष्टि सृष्टि जान ।
दृष्टि भिन्न दृष्टा लखे, ये ही पूर्ण ज्ञान ॥

प्रश्न : जब दृष्टा चेतन और दृश्य जड़ है फिर दृष्टा दृश्य के साथ एक हो कर क्यूं भासता है ?

उत्तर : अविद्या के प्रभाव कर दृष्टा अपने को दृश्य से अलग जानने का यत्न नहीं करता । जब तक अविद्या की निवृत्ति नहीं होती तब तक दृष्टा देह अध्यास और कर्म फल भोगने में बंधाइमान रहता है । मानों दृष्टा दृश्य के अन्दर अपने को भूला बैठा है । इसी कारण सारा दिन जो भी दृश्य पदार्थ सामने आते हैं उनका ही मनन चिन्तवन करता रहता है । तब कहा है—

अविद्या के फंदे में हंस बंधाना, अमर लोक किमजासी ।
दृष्टा भूल दृश्य में आया, बन गया पांच पचासी ॥
वो ही घर अपना भूल गयो प्राणी. जहां घर को हंस वासी ।
उतों निरबन्ध आइ बंधाना, परो काल के फांसी ।
गुर पूरे बिन पार न पावे, गंगा नावे जाइ काशी ॥

वेदांत कहता है जैसे दृष्टा कर दृश्य सिद्धि होने लगता है, तैसे दृश्य कर भी दृष्टा सिद्ध होता है यह एक गोप्य रहस्य है ! जैसे दर्पण के सन्मुख देखने से दर्पण तो दिखाई देता है पर साथ में आपका प्रतिबिम्ब भी उसी दर्पणरूपी दृश्य में दिखाई देता है । इसी प्रकार संसार का जो भी दृश्य पदार्थ आप देखने लगते हैं तो उस वक्त आपका दृष्टा स्वरूप भी त्यों का त्यों अनुभव होता है । परन्तु हम दृश्य की आसक्ति में दृष्टा को भूला बैठे हैं फिर भी दृष्टा दृष्टा ही है और दृश्य दृश्य ही रहता है । तब कहा है—

दृष्टा दृश्य न होत है, दृश्यि न दृश्टा मीत ।
यह पक्का निश्चय धार कर, शोक न करणा चीत ॥

प्रश्न : ऐसे दृष्टा स्वरूप को दृश्य से नियारा जानने से क्या फल होता है ?

उत्तर : जब दृष्टा दृश्य के सम्पूर्ण सम्बन्धों से अपने को स्वतन्त्र अनुभव करता है, तब मुक्त अवस्था का परम फल आन उदय होता है। वेदांत कहता है कि दृष्टा और दृश्य दुनियारूपी तराजू के दो पलड़े हैं, अर्थात् दृष्टा बिना दृश्य सिद्ध नहीं होता, और दृश्य बिना दृष्टा भी अपनी महिमा को सिद्ध नहीं कर सकता। जैसे मन इन्द्रियों की प्रवृत्ति साक्षी कर सिद्ध होती है, तैसे साक्षी की असंगता मन इन्द्रियों के प्रवृत्ति कर सिद्ध होती है, यह एक अनुभव का विषय है। जिसमें बुद्धिमानों की बुद्धि दंग रह जाती है। तब कहा है—

यह बात है अटपटी, झट पट लखे न कोइ।
जब मनका खट पट मिटे, तब सहेजे दर्शन होइ॥

संवत् १९७२ की बात है जब हमारे पूज्यपाद श्री समर्थदेव जी उत्तराखण्ड से कराची सिन्ध में गोरख आमरी पर पधारे थे, तब उनके अमृतमय वचनों से यह सम्बोधन मिलता था कि जब तुम और कुछ भी न बनोगे, तब वास्तविक जो दृष्टारूप तुम्हारा है, वो ही होकर रहना होगा। वास्तव में सब कल्पित पदार्थ तुम्हारे से ही सिद्ध हो रहे हैं। सच्चा स्वतन्त्र जिज्ञासु वो ही है जो दृश्य के बोझ को अपने पर नहीं लादता। जैसे आपकी विशाल आँखे बड़े बड़े पर्वतों को देख कर उनके स्थूल आकारों को सिद्ध करती हैं, परन्तु अपने में उस पर्वत का राई जितना भी बोझ नहीं उठाती।

वैसे दृश्य जगत का सारा बोझ जगत पर रख कर आप अपने दृष्टारूप से सर्व व्यवहार स्वतन्त्रता से सिद्ध कर सकते हैं। तब कहा है—

जो कुछ देखो जगत में, सब अनुभव में ढांप।
करो चैन इस त्याग से, मोह लालच से कांप॥

प्रश्न : ज्ञानवान भी साधारण लोगों की तरह व्यवहार में प्रारब्ध अनुसार सुख दुःख को भोगता हुआ दिखाई देता है। फिर उसे मुक्त अवस्था में कैसे कहा जाए ?

उत्तर : ज्ञानी और अज्ञानी के व्यवहार में बाहर से कोई भेद दिखाई नहीं देता। जैसे अर्जुन और कौरवों के युद्ध में कोई भेद नहीं दिखाई देता था पर अन्तर करके अर्जुन मुक्त अवस्था में था और कौरव राग–द्वेष के भारी बंधनों में थे, तैसे ज्ञानवान व्यवहार में अन्तर कर सदा मुक्त अवस्था में रहता हुआ व्यवहार करता है। क्योंकि ज्ञानवान अपने को निज ज्ञानस्वरूप अनुभव करता है। सुख दुःख को संकल्परूप जान और स्थूल संसार को आकृतिमय जान निश्चय कर सदा अपने आप में ही क्रीड़ा कर रहा है और अज्ञानी अन्दर बाहर जगत के भेदभाव को मानता, हर्ष शोक करता बधाइमान होता है। तब कहा है—

अज्ञानी और प्रज्ञ के, नहीं कर्मों में भेद।
दोनों में गुह भेद है, जो करे मोक्ष और खेद ॥

उदाहरण : एक दफा किसी जौहरी ने अपने काम में साथी बनाने अर्थ वफादार नौकर को अपने पास रखा। जब काम करना शुरू किया तब दोनों के पास एक जैसे जवाहरों से भरी हुए तस्तरों हाथों में थी। दोनों उनमें से लाल, पीले जवाहर हीरे सब अलग अलग करते जाते थे, परन्तु मालिक से नौकर बड़ी तेजी से काम कर रहा था, और जौहरी जब एक एक जवाहर का दाना उठाता था तो किसी दाने को देख कर कि अभी इसका भाव बहुत गिर गया है जिसका उसके दिल में बड़ा शोक छा जाता था। और जो बाजार में बिकता ही नहीं था उसे बोझ सा देख कर बड़ा उदास

होता था अथवा किस दाने की कीमत बढ़ गई है, तो थोडा हर्ष होता था। इस प्रकार जौहरी के दिल में बड़ा संघर्ष हो रहा था। और नौकर के पास सिर्फ दो विकल्प थे। एक यह कि सायंकाल होते ही काम न करूँगा। दूसरी नौकरी में जो कुछ महेनत से मिलेगा, उससे गुजारा करूगा। ठीक इसी प्रकार ज्ञानी और अज्ञानी के निश्चय में बडा भेद है अर्थात् अज्ञानी प्रारब्ध भोग में मिले हुए पदार्थों का अपने को मालिक समझ कर हर एक पदार्थ के संयोग वियोग हानि, लाभ का हर्ष शोक कर व्याकुल रहता है, और ज्ञानवान अपने प्रारब्ध को एक पार्ट समझकर उसे पूरा करता हुआ यह निश्चय रखता है कि एक तो इस देह के छूटने पर हम विदेह मुक्त हो जायेंगे। और दूसरा जो भी कर्मों का भोग सामने आएगा उसे पूरा करेंगे। इस प्रकार शरीर मन इन्द्रियों की प्रवृत्ति के बीच में रहता हुआ ज्ञानवान सदा अपने को अभोक्ता निर्वृत्तिरूप में अनुभव करता है।

प्रश्न : कितने ज्ञानवान व्यवहारिक अवस्था में हर्ष–शोक करते हुए दिखाई देते हैं, वो क्यूँ ?

उत्तर : प्रारब्ध भोग ज्ञानवान में हर्ष शोक का आभास मात्र दिखाई देता है, पर इस कर ज्ञानवान की कोई हानि नहीं होती। जैसे बहरूपी को अनेक रूप धारण करने पर भी कोई हानी नहीं होती। जैसे दो आदमी अपने एक स्वर्गवासी सम्बन्धी के घर अपना शोक प्रकट करने अर्थ जा रहे थे, वो रास्ते में तो अनेक हास–विलास करते आ रहे थे। परन्तु जब उस घर में प्रवेश किया तो दोनों ने ऐसा शोकाग्र चेहरा बना लिया, मानो उन जैसा दुःख और किसी भी मित्र को न हुआ होगा, वास्तव में उन्ही को शोक का आभास

मात्र था। इसी प्रकार आत्मवेत्ता में हर्ष शोक का जो आभास मात्र दिखाई देता है, वो किसी बन्धन का कारण नहीं होता। तब कहा है—

न गम दुनिया का है उनको, न दुनियां से किनारा है।
न अपने से मुहब्बत है, न नफरत गैर से उनको।
सभी में जाता हक देखे, ये ही जिनका निजारा है।

प्रश्न : ज्ञानवान को मुक्त अवस्था में स्थिर रहने के लिये किसी प्रकार के ध्यान साधन की आवश्यकता होती होगी?

उत्तर : आत्म साक्षात्कार के प्रभाव से ज्ञानवान की जीवनमुक्त अवस्था दिनो दिन सहज ही बढ़ने लगती है। ऐसा आत्मवेत्ता चाहे अपने चित्त को एकान्त एकाग्र में रखे; चाहे शरीर निर्वाह अर्थ किसी कार्य को करे, अथवा अधिकारी जनों को ज्ञान का उपदेश करे, उनके लिये सब समान है।

प्रश्न : जीवन मुक्त को ऐसे निर्विकल्प अवस्था फिर कैसे प्राप्त होगी?

उत्तर : निर्विकल्प समाधि में जो योगी अन्तःकरण के ध्याता—ध्यान—ध्येयरूप त्रिपुटी को लयकर स्थिति होते है, उस अवस्था में ज्ञानवान चित्त के सम्पूर्ण प्रवृत्तियों के होते हुए भी सदा निर्विकल्प निवृत्तिरूप सहज समाधि में स्थित रहता है, उसे चित्तसमाधि या मनसमाधि की कोई आवश्यकता नहीं होती।

प्रश्न : फिर तो ज्ञानवान का चित्त अथवा मन सदा बाहर मुख हो जाएगा?

उत्तर : ज्ञानवान ऐसी अन्तरमुख अवस्था में स्थित है, जहां उसे चित्त वा मन की कोई भी प्रवृत्ति स्पर्श नहीं कर सकती, वेद की

श्रुति भी कहती है कि आत्मवेत्ता जिस पद में स्थित हुआ है वहां मन और बुद्धि नहीं पहुँच सकते, और न उस समरस अवस्था में कभी उत्थान ही होता है । तब कहा है—

जहां माहि समाधि उत्थान नहीं ।
जहां ज्ञान अज्ञान समान सही ।
जहां हम और तुम पुन ना मम है ।
सुख रूप चिदात्म सोंहम हैं ॥

प्रश्न : ऐसे निर्विकल्प स्वरूप में स्थित रहनेवाले ज्ञानवान की प्रवृत्ति फिर किस प्रकार होती होगी ?

उत्तर : वास्तव में ज्ञानवान में कोई भी प्रवृत्ति नहीं होती और प्रवृत्ति करने वाले जो मन बुद्धि इन्द्रिय आदिक हैं, वो आपो अपनी क्रियाओं को बड़ी सावधानी से करते रहते हैं, परन्तु आत्मवेत्ता सदा साक्षी निवृत्तिरूप में स्थित रहता है तब कहा है—

साभी सो सुल्तान जो बैठे अनुभव तखत पर ।
मेटे मन की कलपना, जीते सब जहान ॥
होका फेरे हक का, न्याय करे नृवान ।
सदा ही विद्यमान, देखे सार स्वरूप को ॥

अर्थात् सच्चा सुलतान चक्रवर्ती राजा वही है, जो अपने अनुभवरूपी तखत पर सदा विराजमान रहता है, जिसने अनुभव में आनेवाले पदार्थों पर विजय प्राप्त की है, याने जो कभी भी अनुभव होनेवाली नामरूपी की कल्पनाओं के आधीन नहीं होता । जो सारे संसार को जीव ब्रह्म के एकता का संदेश सुना कर सच्ची स्वतन्त्रता का अधिकार दिलाता है, फिर चाहे वही किसी भी वर्णाश्रम में क्यूँ

न हो, सो सदा अपने नित्य मुक्त निवृत्ति रूप में स्थित रहता है। तब कहा है—

भोगी थे यदुराइ जी, भूप जनक रघुनाथ।
त्यागी थे शुक वाम दत, मुक्ती में सब साथ॥

उदाहरण : योगवशिष्ट में महाराजा शखरध्वज और चूराला राणी का अद्‌भूत वृत्तान्त हैं, वह दोनों पति-पत्नी एक महापुरुष के समीप उपदेश श्रवण करने जाते थे। परन्तु चूरालाराणी को तो निजआत्मा का बोध हो गया और राजा शखरध्वज अभी तक वैराग अवस्था में ही था। वह एक समय अपने राज काज विषय भोगों को भारी बन्धनरूप जान कर रातों रात राज के सम्पूर्ण सुखों को त्याग कर किसी गहन बन में चला गया। वहां किसी नदी किनारे एकान्त में फूंस की कुटिया बना कर केदमूल खाकर जीवन बिताने लगा।

जब महल में रानी चुराला को ज्ञात हुआ कि राजा वैराग्य के कारण राज–पाट छोड़ कर बन में चला गया है, तब उसने सोचा कि अध्यात्म ज्ञान के बिना राजा को कहीं भी शान्ति या परम सुख की प्राप्ती होना असम्भव है। इसलिए रानी राज का पूरा प्रबन्ध रख कर आप अपने पति की खोज में निकल पड़ी। जब एक गहन बन में नदी के किनारे राजा शखरध्वज को दूर से उदास चित्त बैठा हुआ देखा, तब चूरालारानी ने सोचा कि मैं राजा के सामने किसी और रूप को धारण कर जाऊँ। नहीं तो मेरे स्त्रीरूप को देख कर राजा आश्रद्धा वश उस अध्यात्म ज्ञान को ग्रहण नहीं करेगा।

तब चुराला ने ब्रह्मवेत्ता कुम्भमुनि का रूप धारण कर जब राजा शखरध्वज के कुटिया पर आ पहुँची, तो राजा उसे बड़ा मुनीश्वर समझ कर उठखड़ा हुआ और बड़ी श्रद्धासे प्रणाम किया और एक आसन

पर बिठा कर कहने लगा कि आज मेरे बड़े भाग्य उदय हुए हैं, जो आप जैसे महापुरुषों का यहाँ शुभागमन हुआ है। अब कृपाकर मेरे को ऐसा उपदेश कीजिये जिसकर मेरा चित्तपरम शान्ति को प्राप्त हो। तब कुम्भमुनि ने उत्तर दिया कि अब तक तुमने पूर्ण त्याग नहीं किया, इस लिए चित्त अशान्त रहता है।

राजा शखरध्वज कहने लगा कि, मैं बड़े राज सुख—भोगों को दुःख रूप समझ कर छोड़ आया हूँ। जिस पर कुम्भमुनिने कहा कि वो राजा आदि स्थूल पदार्थ तो तुम्हारे थे ही नहीं, वो जैसे पहले थे तैसे अब भी प्रतिक्षण बदलते जा रहे हैं। इस लिए जो कुछ तुम्हारा है उसका त्याग करो। यह सुन कर राजा अपनी बनाई हुई त्रण कुटिया को आग लगा दी, और अपनी सोटी लंगोटी सब आग में स्वाह कर कहने लगा कि, हे भगवन! जो कुछ मेरा था वह भी सब त्यागकर दिया कृपा कर मुझे उपदेश करो। तब कुम्भमुनि कहने लगे कि, यह तो तुमने अपना त्याग नहीं किया क्योंकि कुटिया पत्तों के झार को, सोटी वृक्ष के जर पार की और कोपीन सूत के तार की, उनको आग में जला कर अपने को त्यागी कैसे मानते हो?

फिर तो राजा की बुद्धि दंग रह गई। वह त्याग के आवेश में आकर अपने शरीर को भी अग्नि में जा कर स्वाहा करने के लिए उठा खड़ा हुआ परन्तु कुम्भमुनि ने उसे रोक कर कहा कि ये शरीर भी तो पांच तत्त्व का है, जो समय पर तुम्हारे से अलग हो जाएगा। इसे व्यर्थ नष्ट करने से आपकी वह नित्य उपदेश निर्भय ज्ञान, कहां से प्राप्त होगा? राजा बड़े आश्चर्य में पड़ कर कुम्भमुनि को कहने लगा कि हे गुरुदेव! तब आप ही बताईए कि मैं किसका त्याग करू?

तब कुम्भमुनि ने उत्तर दिया कि, तुम इसी में का त्याग करो, जिसमें सब परीछिन्ता के स्वभाव भरे हुए हैं। जिसने तुम्हारे को नित्य असंग महा त्याग स्वरूप आत्मा से विमुख कर दिया है और तू अविद्यावश प्रकृति के एक एक पदार्थ को छोड़ने पर अपने को त्यागी वैरागी मान रहा है। इस प्रकार के त्याग की तो कहीं भी हद न आएगी। फिर चाहे बनवासी बनो, चाहे कंदराओं के विनासी बनो और चाहे तपस्या के घोर कष्टों को सहन करो। तब कहा है—

धर शीश जटा, मुख ऊर्ध्व भुजा, अंग भस्म लगावे।
गांव के भीतर पांव न देवत, जंगल में फल फूल चबावे॥
अम्बर त्याग दसंबर ओढत, मौन रहत बहु कष्ट सहावे।
पर एक निजात्म बोध बिना, भवसागर को भ्रम नाहीं मिटावे॥

कुम्भमुनि कहने लगे कि तुम्हारा आत्मा ग्रहण त्याग की प्रवृत्ति से परे निज निवृत्तिरूप में सदा स्थित रहता है। ऐसे असंग आत्मा का साक्षात्कार करो। इतने वचन सुनकर राजा शखरध्वज इसी परिछिन्न में से परे अपने लक्ष्य स्वरूप में स्थित हो गया। तत्पश्चात कुम्भमुनि के चरणों में गिर कर कहने लगा कि, हे प्रभु! ऐसे ज्ञान अमृतपान करने अर्थ मेरे को अपने समीप सेवा में रहने की आज्ञा दीजिए, जिस से मेरा उद्धार हो! क्योंकि जहां आप साथ हैं वह संताप कहां है। फिर तो आगे आगे चूरालारूपी कुम्भमुनि और पीछे से परम श्रद्धावान राजा शखरध्वज, शिष्य के रूप में चलने लगा।

जब गहन बन, पर्वत और तीर्थ स्थानों से विचरते हुए अपनी राजधानी के निकट आ पहुंचे तब शखरध्वज कहने लगा कि, हे भगवान! यह देश मेरा था और मैंने इसे त्याग किया था। अब इस में कैसे प्रवेश करूं। तब कुम्भमुनि ने सावधान कर कहा कि

जिस परिछिन्न मैं से तुम मुक्त हुए हो फिर उस मैं के आवेश में आकर ग्रहण त्याग के जाल में फंसना चाहते हो। शखरध्वज आत्म जागृती में आकर गुरु से क्षमा मांगने लगा कि, अब ऐसे मैं पने के अविद्यारूपी अंधकूप में फिर न गिरूगा। राजधानी में कुम्भमुनि के पीछे पीछे चलते हुए राजा शखरध्वज को रास्ते में अनेक अपने सुन्दर स्थान देखने को मिले, और प्रजा वासी लोग फूलों की वर्षा करने लगे, अन्त में कुम्भमुनि चुरालाने शखरध्वज को अपने राज दरबार में छोड़े हुए राज सिंहासन पर जाकर बिराजमान किया, परन्तु राजा शखरध्वज किंचित मात्र भी चलायमान नहीं हुआ। अपने निजनिवृत्तिरूप आत्मअनुभव में स्थित होकर राज के प्रवृत्ति रूप कार्य कर्म को आगे से भी सावधान हो कर चलाने लगा।

जब महल में आकर कुम्भमुनि को चुराला अपनी रानी के रूप में देखा तो उसको अपने पर महान उपकार मानता हुआ कहने लगा कि, मेरे में अनेक जनमों से जो विपरीत भावना भरी हुई थी, जिस कर मैं अपने नित्य निवृत्ति स्वरूप में भ्रम वश मन इन्द्रियों की प्रवृत्ति मान कर, भारी कष्टों को सहन कर रहा था। अब तुम्हारे ज्ञानप्रसाद को पाकर नित्य तृप्त स्वरूप को प्राप्त भया हूँ। जो इस राज प्रवृत्ति में रहते हुए भी हर एक कार्य में अपने को मुक्त अवस्था में आकाशवत अनुभव कर रहा हूँ। अर्थात् जो कुछ भी मुझमें प्रतीत हो रहा है, मैं उनके जाननेहारा इनसे नियारा हूँ। तब कहा है—

बहता है पानी झर झर, चलती है हवा सर सर।
उडते हैं पक्षी फर फर, लडती है फौज मर मर॥
फिरते है जोगी दर दर, होती हैं पूजा हर हर॥
मुझमें मुझमें मुझमें॥

जैसे आकाश में बादल गरजते हैं, पानी बरसता है, वायु के तूफान लगते हैं, पर्वतों से झरने बहते हैं, चारों तरफ पक्षी उड़ते हैं, कहीं फौजें लड़ती हैं। कहीं योगी समाधी करते दर दर फिरते है। इन सम्पूर्ण प्रवृत्तियों के होते हुए भी जैसे आकाश ज्यों का त्यों स्थित रहता है। वैसे जीवन मुक्त ज्ञानवान के चेतन चिदाकाशरूप में चाहे शरीर सारा दिन कर्म करता रहे; मनरूपी पक्षी संकल्प-विकल्प से उडता रहे, बुद्धि विचार बल से कई प्रकार के सुवाल हल करते रहे, चाहे संसार के सुख दुःखरूपी बादल गरजते रहे, तो भी ज्ञानवान अपने को निर्मल आकाशवत अभोक्ता मुक्त अवस्था में अनुभव करता है, यही इस प्रवृत्ति में निवृत्ति नामा पुस्तक के विचारने का परम फल है। तब कहा है—

जो हो रहा सो होने देओ, कुछ किसी को मत कहो।
स्वप्न की तलवार से, तुम जाग्रत निर्भय रहो॥
घोर निद्रा से जगाया, सद्गुरु ने बांह पकड।
अन्दर परम आनन्द पाकर, बाहर का सब ही सहो॥

ॐ तत्सत्! आनन्द!! जय सच्चिदानंद!!!

ज्ञानी का घर

ज्ञानी को जग नन्दन बन हैं, विचरत आनन्द धार।
कल्पतरू हैं तर तंहि सभही, गंगा जल सब वार॥
सर्व क्रिया तांहि पुण्यरूप है, जो जो करे विहार।
वाणी तांकी वेद श्रोमणि, अद्वैत अमृत सार॥
सर्व काल 'परमानन्द' भासत, पंच कोश से पार।

भजन नं० १

ज्ञानी का घर दूर है हद से परे निज नूर है ।
जोगी, जती, साधक, तपी, वो मुन्नियों में मशहूर है ।।
१ जमानत जम की नहीं, चित्त का खफा सब चूर है ।
कर्म किंचित फल–विफल का कल्पना काफूर है ।
२ करना अमल वेदान्त का गीता में दस्तूर है ।
अर्जुन को आया समझ वो ज्ञानयोगी शूर है ।।
३ निष्कामता के शान का, भारत को ही गरूर है ।
निर्लेपता, निर्पेखता, निज हर्षता में पूर है ।।
४ कलयुग में आत्म कला का लाभ पाना जरूर है ।
'परमानन्द' गुरुदेव का कहना हमें मन्जूर है ।।

ज्ञानी भी मैं हूँ

भजन नं० २

ज्ञानी भी मैं हूं, ध्यान भी मैं हूं, हृदे अन्दर भान भी मैं हूँ ! !
१ दाता मैं हूं, मंगता मैं हूं, देवणवाला दान भी मैं हूं !
२ चेतन मैं हूं चिन्तन मैं हूं, स्थिर और घमसान भी मैं हूं ।
३ देव भी मैं हूं सेवक भी मैं हूं, पूजा का सामान भी मैं हूं !
४ साजन मैं हूँ शत्रु मैं हूं, हर सूरत सैलान भी मैं हूं !
५ जाग्रत मैं हूं स्वप्न भी मैं हूं, दोनों का दर्मियान भी मैं हूँ !
६ आदि भी मैं हूँ अन्त भी मैं हूँ, दो दिनका महिमान भी मैं हूं !
७ श्रोता मैं हूं वक्ता मैं हूँ, "परमानन्द" परमान भी मैं हूँ !

प्रश्न—उत्तर

प्रश्न—१ प्रवृत्ति में निवृत्ति का निश्चय कैसे स्थिर हो ?

उत्तर—प्रातःकाल को उठते ही मैं शरीर नहीं हूँ, मैं मन इन्द्रियों से परे दृष्टा स्वरूप हूँ ऐसा समझ कर वर्ताव करो ।

प्रश्न—२ अगर ऐसा असंग भाव व्यवहार में न रह सके तो क्या करना चाहिए ?

उत्तर—कुछ काल एकान्त में ज्ञानयोग के निर्विकल्प अवस्था का अभ्यास करो ।

प्रश्न—३ वास्तविक निर्भयता किसे कहे हैं ?

उत्तर—जैसे शेर की गर्जना शेर को नहीं डरा सकती, लोहे की तलवार लोहे की मूर्ति को नहीं काट सकती, और अग्नि की ज्वाला अग्नि को नहीं जला सकती । वैसे आत्मवेत्ता को मृत्युरूपी शेर की गरजना कर्मरूपी तलवार की चिन्ता और रागद्वेषरूपी अग्नि तपायमान नहीं कर सकती ।

प्रश्न—४ आत्मवेत्ता देह त्यागने पर किस अवस्था में रहता है ?

उत्तर—विदेह मुक्त ज्ञानवान अपने को पूर्ण ब्रह्मस्वरूप अनुभव करता हुआ परिछिन्नता के सब बन्धनों से स्वतन्त्र हो जाता है ।

॥ ॐ ॥

भूमिका

जो जो दुनियां में दुःख होता है, मोह करके होता है। मोहरूपी दुःख की निवृत्ति और किसी उपाय से नहीं होती। एक वैराग्य से ही मोह नाश होता है क्योंकि मोह से ही तृष्णा लोभ आदि आसुरी गुणों की अनन्त शाखें हृदयरूपी वृक्ष में फैल जाती हैं और आत्म आनन्द भी राग वासना से ढका रहता है।

राग से रहित हृदय उज्ज्वल प्रकाशमान होता है। मोह करके ही अति दीन कङ्गाल जीव संसार में दुःख भोगता हुआ छूट नहीं सकता, पूर्ण सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती और पुनः पुनः मृत्यु के दुःखो से भी नहीं छूट सकता। जब तक पूर्ण सुख निरावर्ण न होवे तब तक सर्व दुःखों की निवृत्ति रूप असल शांति नहीं हो सकती। पूर्ण सुख की प्राप्ति में अज्ञान के सहित राग अर्थात् मोह ही प्रतिबन्धक है। राग की निवृत्ति वैराग्य के बिना नहीं होती। वैराग्य तब होता है जब वैराग्यवान पुरुषों की संगत और अभ्यास करे अथवा वैराग्यवान पुरुषों की कथा सुने जैसे लड़ाई में कायर पुरुष भी सूरमाओं के दर्श और बहादुरी को देखकर अथवा सूरमाओं की बातें सुनकर कायर भी सूरमा होकर युद्ध करने लग पडता है और शत्रु को मारकर जय को प्राप्त होता है, वैसे ही अनादि कालका जीव मोह करके ज्ञान साधना से कायर हुआ तृष्णा आदि दुःखो से कृपण कङ्गाल हुआ अपने स्वरूप के अज्ञान से संसार के दुःखों से दुखी पुनः पुनः मृत्यु को अनुभव करता हुआ यह कायर जीव भी जब सत्सङ्गरूपी रण में जाता है तब जागता है। जैसे घोड़ा रण में जाकर सोया हुआ जागता है तैसे ही अज्ञानरूपी नींद से सोया हुआ जीव भी सतसंगरूपी रण में जाता है तब जागता है, और धर्मी पुरुषों की कथा सुनकर धर्म में तत्पर हो जाता है, वैराग्यवानों के दर्शन से अथवा वैराग्यवानों की कथा सुनकर हृदय में वैराग्य अवश्य पैदा हो जाता है और ज्ञान के साधन में तत्पर हो जाता है, दुखों का मूल अज्ञान के सहित मोह को नाश करता है और सत्संग रूपी रण में जिज्ञासु रूपी सूरमा वैराग्य रूपी शस्त्र से राग का नाश करता है। मोह शत्रु के नाश होने से काम क्रोध आदि आसुरी संस्कार सब नाश हो जाते हैं। इससे इस मोहजीत राजा की कथा सुनकर अभ्यास से राग रहित हुआ जीव ज्ञान से मोक्ष सुख को पाता है सइ से जिज्ञासु जन मोह शत्रु को जीतने के लिये श्रद्धा सहित मोहजीत राजा की कथा को श्रवण करें।

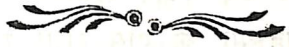
—सन्त हरनामदास

॥ ॐ ॥

साखी प्रमाण

अर्थात्

निर्मोह राजा की कथा



दोहा—सर्व शुद्ध सो आत्मा, सर्व कल्पनातीत ।
सत आत्मानन्द को, नमो होय नित चीत ॥१॥
मनुष्य पशु सब सत्ता के, सत्ता वृक्ष पषाण ।
देव दैत सत्ता सभी, सर्प कीट होय भान ॥२॥
सत्ता के सब शहर हैं, सत्ता जगत तमाम ।
सत्ता पूरण अचल है, कल्पित जिसमें नाम ॥३॥
सत्ता ही निराकार है, होय सफुर्ण अकार ।
फुरना नासे ज्ञान से, सत्ता शेष अपार ॥४॥
नमस्कार सतगुरु को, चरण कमल सुख खान ।
चेतन शुद्ध स्वरूप से, व्यापक मध्य जहान ॥५॥

प्रथम निर्मोहराजा ब्रह्मवेत्ता महात्मा के पास जाता था । एक दिन राजा ने महात्मा से प्रार्थना कि, हे भगवन् इस दुःख रूप संसार से किस प्रकार कल्याण होवे सो उपाय बतलाये । तब महात्मा ने मन में विचार किया । ये राजा है इसके अन्तःकरण में मल विक्षेप आदि दोष हैं, इसलिये इस को अभी निगुण सरूप का उपदेश करना योग्य नहीं इस वास्ते महात्मा राजा को कहते भये कि व्यवहारों से उदासीन होकर बारह वर्ष अभ्यास करो ।

तब निर्मोहराजा ने बारह वर्ष अभ्यास किया । और फिर ज्ञान के वास्ते उन्हीं ब्रह्मवेत्ता महात्मा गुरुजी के पास राजा जाता भया । तब महात्मा ने परीक्षा के वास्ते ताड़ना कि । तब राजा उठकर चला आया, मगर रातभर राजा के मन में क्षोभ होता रहा । सुबह विचार करने लगा—हे मन तेरे ही में दोष है, सन्त तो सब पर कृपा करते हैं । इस प्रकार राजा ने अपना चित्त शान्त किया । फिर दूसरे दिन महात्मा के पास राजा गया, तब महात्मा ने पूछा चित्त कैसे रहा । तब राजा ने कहा जी आप की ताड़ना का सारी रात क्षोभ मन में होता रहा, प्रातःकाल चित्त शान्त हुआ तब हाथ जोड़ कर कहने लगा, हे भगवन् इस दुखरूप संसार की निवृत्ति के कारण - ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति करो, मैं आपका दास हूँ जी, आप दया के समुद्र हो जी, दास पर कृपा कीजिये तब महात्मा ने कहा अभी तेरा चित्त मलीन है बारह वर्ष और अभ्यास कर । तब राजा ने बारह वर्ष ब्रह्मचर्य के सहित और अभ्यास किया । तब महात्मा ने एक भक्त को कहा, राजा की परीक्षा करनी है । जब राजा बाज़ार में जावे तब राजा के ऊपर एक टोकरा राख का डाल देना।

जब राजा बाजार में जा रहा था, उस भक्त ने चौबारे से राजा के ऊपर राख का टोकरा डाल दिया । तब राजा को बहुत क्षोभ हुआ, जब जाकर स्नान किया और बैठ कर विचार करने लगा कि शरीर भी राख है, राख के ऊपर राख पड़ गई तब क्या हुआ ? इस प्रकार मन को शान्त करता हुआ राजा महात्मा के पास गया, दण्डवत प्रणाम कर के बैठ गया ।

महात्मा ने पूछा—राजा चित्त कैसा रहा । तब राजा ने कहा महाराजजी स्नान करते तक क्षोभ रहा फिर विचार से चित शांत हुआ

तब महात्माजी कहने लगे अभी तुम्हारे चित्त में मलीनता है, बारह वर्ष और अभ्यास करो। तब राजा ब्रह्मचर्य को धारण कर के इन्द्रियों का संयम करता हुआ बारह वर्ष और अभ्यास करने लगा। जब छत्तीस वर्ष विधिपूर्वक अभ्यास सम्पूर्ण हुआ तब राजा का चित्त अत्यन्त शुद्ध हुआ।

तब महात्मा जी ने परीक्षा करने के लिये लड़कों से कहा कि जब राजा जाता हो तब उसके ऊपर मिट्टी डाल देना। तब लड़कों ने राजा के ऊपर बहुत सी मिट्टी डाली परन्तु राजा को कुछ भी क्रोध अथवा क्षोभ न हुआ। तब राजा स्नान करके शांत चित्त से विचार करने लगा, अपने मन से कहने लगा कि—'हे मन! शरीर भी मिट्टी है मिट्टी के ऊपर मिट्टी पड़गई तो क्या हुआ? हे मन तेरा अभी कसूर है तेरे साधन में अभी देर है। ऐसे विचार करता हुआ शांत चित्त से राजा महात्माजी के पास जाकर दंडवत प्रणाम करके बैठ गया। तब महात्माजी ने राजा का चित्त अत्यन्त शुद्ध देख कर राजा को ज्ञान का प्रकाश कर दिया। राजा को अपने पूर्णस्वरूप का अपरोक्ष निश्चय और जगत का अत्यन्त अभाव निश्चय हुआ तब महात्मा की आज्ञा से राजा राज करने लगा। निर्मोह राजा ने अपने सर्व कुटुम्ब को ज्ञान कर दिया क्योंकि सर्व कुटुम्ब के साधन पूर्वजन्म के परिपक्व थे इसलिये सर्व सम्बन्धी ज्ञानवान होते भये।

तब राजा का लड़का एक दिन बाहर जंगल में एक तपस्वी की कुटी पर गया। नमस्कार करके तपस्वीजी के पास बैठ गया तब तपस्वी ने पूछा, 'तुम किस के बेटे हो।' तब लड़के ने कहा कि, 'मैं निर्मोह राजा का बेटा हूँ जी।' तब तपस्वी कहने लगा कि,

'तुम झूंठ बोलते हो, गृहस्थ में राजा होकर कैसे निर्मोह हो सकता है।' तब लड़के ने कहा, 'हमारा सारा कुटुम्ब ही निर्मोही है। हे तपस्वीजी! आप जाकर सबकी परीक्षा कर लो। तब आप को निश्चय हो जावेगा।' तब तपस्वी निर्मोह राजा के कुटुम्ब की परीक्षा लेने के लिये शहर को गये। राजा का लड़का कुटी पर बैठ गया। जब तपस्वी महल के दर्वाज़े पर पहुँचा तब राजा की बांदी मिली। उसको शेर के ज़रिये से लड़के के मरने की खबर सुनाई।

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—सुन तू चेरी श्याम की, बात बतावें तोहि।
कुंवर बिनास्यो सिंह ने, आसन पड़ियो मोहि॥

अर्थ—हे बांदी राजकुमार को शेर ने मार डाला है, और लोथ कुटी पर पड़ी है।

॥ बांदी का वचन ॥

दोहा—ना मैं चेरी श्याम की, ना कोई मेरा श्याम।
चार दिना के वास्ते, सुनो ऋषि अभिराम॥

'हे तपस्वीजी! न मैं किसी की टहलन हूँ न कोई मेरा स्वामी है चार दिन का मेला झूठा स्वप्न के समान हैं। जन्म—मरण, संयोग—वियोग इन्द्रजाल की तरह सब झूठा हैं।'

हे तपस्वीजी! मैंने इस संसार के बड़े बड़े दुख देखे हैं आपको सक्षेप कर सुनाती हूँ आप सुनिये! इस दुःखरूप ससार के पदार्थ देखते २ नाश हो जाते हैं, मैं स्वप्न की तरह जानती हूँ इसी से मेरे को किंचितमात्र भी शोक नहीं हुआ।

मैं पहिले एक सौदागर की स्त्री थी, मेरा पति परदेश चला गया, मैं एक दिन नदी पर स्नान कर रही थी तो एक राजा घोड़े

पर सवार हुआ जा रहा था, उस कामी राजा की नज़र मेरे ऊपर पड़ गई, वह कामी राजा मुझ को घोड़े पर चढ़ा कर अपने शहर को ले गया, मैं पतिव्रत धर्म पालन करने के लिये एक वर्ष का संकेत कर के अलग महल में रहने लगी, पीछे मेरा लड़का रुदन करता हुआ परदेश को चला गया मेरे पति के माता पिता भी मर गये, जब मेरा पति घर में आया तो घर को बरबाद देख कर रुदन करता हुआ लोगों से पूछने लगा। लोगों ने कहा तुम्हारी स्त्री को एक राजा जबरदस्ती से ले गया है, तुम्हारे माता–पिता मर गये हैं और तुम्हारा लड़का कहीं परदेश चला गया है तब ऐसी हालत सुनते ही मेरे पति बहुत दुखी होकर रोने लगे और मेरी तलाश करते हुये मुझ को महलों में आ मिले और बहुत रोने लगे।

तब अपने पति से मैंने कहा कि मैं आप के धर्म में हूँ, आप श्मशान भूमि में जा बैठिये मैं रात को आपके पास आजाऊंगी। तब मेरा पति श्मशान में जा बैठा, उसी वक्त उसको सांप ने डस लिया और वह मर गया। और जब मैं रात को श्मशान भूमि में गई; वहां जाकर देखा कि मेरा पति मरा हुआ पड़ा है मैं बहुत दुखी होकर रोती हुई जंगल को चली, तब हमारे को चोर मिले, वह मेरे जेवर छीन ले गये! और मै निराश होकर भगवान् के आगे बारम्बार पुकार करती भई। हे भगवन्! हमारा कष्ट निवारण कीजिये! मैं अनाथ आप की शरण हूँ! इस प्रकार भगवान् का चिन्तन करती हुई चली जाती को दो रोज हो गये। तब एक शहर में जा पहुँची, दो रोज़ की भूखी कुछ खाने को मिला नहीं। तब लोगों ने कहा शहर से बाहर नदी किनारे अन्न का क्षेत्र है, वहां तुम को भोजन मिल जावेगा। तब मैं वहां जाकर क्षेत्र से भोजन लेती भई। भोजन किनारे पर रखकर नदी में स्नान करने

लगी तो पानी जोर से चला रहा था, हमारा शरीर निर्बल था, नदी में बह गई। तब आगे एक गूजर ने मेरे को निकास कर बहिन भावना से घर ले गया। तब गूजर के घर मैं दूध बेचती रही, हे तपस्वी जी! अब मैं निर्मोह राजा की बांदी हूँ। मैंने ऐसे अनेक दुःख देखे हैं, अब राजकुमार का क्या शोक करू। ज्ञान के प्रताप से मोह नहीं रहा, सब ससार झूंठा है। हे तपस्वीजी! ऐसा विचार करके मेरे को मोह नहीं हुआ। तब तपस्वी अपने मन में कहने लगा यह तो बांदी है इस को क्या मोह होगा, लड़के की स्त्री को ज़रूर मोह होगा। उस की परीक्षा करने के लिये तपस्वी स्त्री के महल में जाता भया।

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—सुन तू बाला सुन्दरी, अबला जोबन बान।
देवी बाहन बलि मल्यो, तुम्हारो श्री भगवान॥

अर्थ—'हे सुन्दरी तुम्हारा पति को शेर ने मार दिया है।'

॥ स्त्री का वचन ॥

दोहा—तपिया पूर्व जन्म की, क्या जानत यह लोग।
मिले कर्मवश आन हम, अब विधि कियो वियोग॥

अर्थ—'हे तपस्वी पूर्वजन्म के कर्मों को लोग नहीं जानते क्योंकि पिछले कर्म से मेरा पति के साथ मेल हुआ था, अब लेना देना भुगत चुका है। अब ब्रह्मा ने वियोग कर दिया तो इस में क्या अफसोस है, कल्पित शरीरों के कर्मों के अनुसार अवश्य संयोग से वियोग होना ही था।'

॥ तपस्वी का वचन ॥

हे सुन्दरी! तैने पति के मरने का कुछ भी शोक नहीं किया। तेरा चित्त बड़ा कठोर है, पतिव्रता धर्म तेरा वृथा है।

दोहा—बेमुख नारी पति से, बानी कटु अलाय ।
दुख पावे इस लोक में, अन्त नर्क में जाय ॥
आज्ञा पाले पति की नारी शील सुभाय ।
सुख पावे इस लोक में, अन्त मुक्ति को पाय ॥
रोगी वृद्ध जड़ अंध जो, तृष्णा क्रोध महान ।
पति ऐसा जिस होय जो, करत नारि अपमान ॥
पावे दुःख अनन्त सो, जम पकड़े जब आन ।
निश्चय नर्कसो भोगती, कभी न हो कल्यान ॥
पतिव्रता जग चार हैं, भाषे वेद पुरान ।
उत्तम मध्य कनिष्ट जो, चौथी अधम पिछान ॥
उत्तम नारि पतिव्रत सो, जिसके मन बस होय ॥
व्रत नेम सब धर्म जो, प्रेम चरण में सोय ॥
मन वाणी काया सभी, प्रेम पती में मान ।
दूजा पुरुष न देखती, सुपने में भी आन ।
जग में मध्यम नार जो, पर पति ऐसे जान ।
बड़ा बाप सम छोटा सुत, भाई आप समान ॥
विचारे धर्म कनिष्ठ तिय, मत कुल लागे दाग ।
अधमनार पर पति बचे, बिन अवसर भय लाग ॥
छल करती जो पति से, परपुरुषों में प्रीति ।
रहे कल्प शत नर्क में, तुच्छ बिषय में चीत ॥
बिन साधन से पाइ है, पति सेवा से मोक्ष ।
पति धर्म को छोड़ के, कभी न होवे तोश ॥
दुखपावे सौकोटि जन्म, होइ जो पति प्रतिकूल ।
विधवा होवे तरुन में, कहते वेद मूसल ॥

अति अपावन नार जो, करे पति की सेव ।
चार वेद यश गावते, परम गति को लेव ॥

अर्थ—जो स्त्रियां पति की आज्ञा नहीं मानतीं हैं और पति से लड़ाई करती हैं वह नर्क में दुःख भोग भोगती हैं और इस लोक में बुराई होती है, जो नारियां पर पुरुष से व्यभिचार करती हैं वह तपे हुये लोहे के थम्बों (खम्बों) से लगाकर जलाई जाती हैं, जो स्त्रियां पति की आज्ञाकारी हैं, वह अपने घर के अन्दर ही बैठकर समय गुज़ारती हैं, बाहर नहीं निकलतीं, आंखों से भी परपुरुष को नहीं देखतीं, चलते समय सदा जमीन की तरफ ध्यानर खती हैं, पति को ईश्वररूप समझ कर हर रोज प्रातःकाल उठ कर नमस्कार-करती हैं, पति के पवित्र चर्णामृत का आचमन करती हैं और सदा भगवान भावना से सेवा पूजन करती हैं, उन पतिव्रता स्त्रियों का इस लोक में यश होता है और बैकुण्ठ लोक में सुख भोगती हैं ! जो स्त्री पति के साथ सती हो जाती है उसको साठ करोड़ वर्ष सूर्य्यलोक में सुख मिलता है । जब यह विचार तपस्वी ने सुन्दरी को सुनाया तब सुन्दरी कहने लगी :—

॥ सुन्दरी का वचन ॥

'हे तपस्वीजी ! आपने पतिव्रता स्त्री के धर्म कहे हैं सो शास्त्र के अनुसार सब ठीक हैं परन्तु जो स्त्री अपने पति भगवान को उत्पति नाशवाला परिछिन्न जानकर के सेवा करती है और उत्तम-लोक आदि स्वर्ग सुख की इच्छावान है उसको पति की प्रेम से सेवा श्रद्धापूर्वक करने से उत्तम लोक के सुख मिलते हैं । और जो निष्काम भावना से पतिव्रता स्त्री मुक्ति पद के पावने के वास्ते पति की सेवा श्रद्धा प्रेम से करती है, उसको पूर्ण ब्रह्मस्वरूप का

ज्ञान हो जाता है । हे तपस्वी जी मैं तो अपने पति को पूर्णब्रह्म जानकर निष्काम भाव से मुक्तिपद के लिये श्रद्धा प्रेम से सेवा करती रहती हूँ और हमारा पति ज्ञानवान था, उस ने हमारे को ज्ञान कर दिया है ! अब हमारे को पति परिपूर्ण उत्पत्ति नाश से रहित चेतनरूप से दिखाई देता है, ऐसी ज्ञान भावना से मन करके मैं पति भगवान की सदा सेवा करती हूँ और बाहर शरीर करके स्नान कराना, चरण धोने, भोजन खिलाना इत्यादि पति भगवान के शरीर की सेवा भी मैं दासी होकर शरीर करके करती रही हूँ परन्तु वास्तव से पति भगवान मेरा स्वरूप है, मैं पति का स्वरूप हूँ एक चेतन सर्व आत्मा निश्चय होने से । इस लिए ज्ञान अग्नि कर के यह देह आदि जगत भस्म हुआ है ! ज्ञान से शरीर की निवृत्ति, यही शरीर का सती होना फलरूप है मेरे को उत्तम लोक के सुख आत्म सुख–रूपी समुद्र में तरङ्गों के समान दिखाई देते हैं । इस लिए हमारे को उत्तम लोक की इच्छा नहीं है । हमारा मन पूर्ण-ब्रह्म सुख–रूप आत्मा में लीन हुआ है, हमारा पति देह से भिन्न चेतन स्वरूप हमारा आत्मा है, अजर अमर है, सर्व शरीररूपी तरङ्ग कल्पित निश्चय होने से इस कारण हमारे को शोक नहीं हुआ । हे तपस्वीजी ! जिन स्त्री को ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ वह स्त्रीयां अपने को और पति को देह मात्र ही जानती हुई मोह के वश में पति के वियोग से इस प्रकार विलाप करती हैं ।

दोहा—जम पकड़ कर लेगये, घरकी रोवत नार ।
पति मुसाफिर हो गया, कौन लेवेगा सार ॥
लघु सुख संजोग में, बिछड़े दुखि हज़ार ।
बेटा बेटी मित्र जो, रोवत जार बेजार ॥

हे तपस्वीजी ! जिन स्त्रियों को देह अभिमान है वह पति के शरीर के वियोग से रुदन करती हैं, जो पति की सेवा करती है वह सदा सुख भोगती हैं, जो पति को दुख देती हैं वह सदा नरक भोगती हैं ।

दोहा—अनेक योनियां पावते, स्वर्ग नर्क बहु रङ्ग ।
बारबार दुख भोगते, देह अभिमान जो सङ्ग ।।

अर्थ—जो अज्ञानी जीव देह का अभिमान करते हैं वह अनेक योनियां पावते हैं और मेरा देह अभिमान निवृत हुआ है इस विचार से पति के शरीर की मृत्यु का शोक नहीं किया । यह तो पूर्व के कर्म से कल्पित शरीरों का संयोग होता है। जब पिछला लेना देना खतम हो जाता है तब वियोग हो जाता है । इस पर मैं आप को एक उदाहरण सुनाती हूँ जिस के सुनते ही सर्व मोह शोक नाश होते हैं ।

एक कर्मलम्ब ब्राह्मण था उसके घर में बेटा पैदा हुआ । कर्मलम्ब ने पत्री देखी तो यह मालूम हुआ कि इस ने हमारा क़र्ज़ा देना है । तब कर्मलम्ब ने बेटे का नाम ऋणदत्त रख दिया । परन्तु कर्मलम्ब को यह चिन्ता हो गई, कि जब कर्जा उतर जायेगा तब यह बेटा मृत्यु हो जावेगा । जब लड़का बड़ा हुआ तब सर्व विद्या पढ़ गया और कर्मलम्ब को यह भय था कि जब किसी सभा से या किसी राजा से धन ले आया तब उसी वक्त लड़का मृत्यु हो जावेगा तब अपने बेटे को कहता भया, किसी सभा या किसी राजा से धन कभी मत लेना ।' एक दिन कर्मलम्ब दूसरे शहर की सभा में चला गया तब पीछे से एक ब्राह्मण विदेशी राजा के पास आ गया तब ब्राह्मणों की सभा लगी, शास्त्रार्थ होने लगे और ऋणदत्त भी सभा में चला गया । शहर के ब्राह्मण तो हार गये और कर्मलम्ब

के बेटे ऋणदत्त ने उस ब्राह्मण को जय कर लिया तब ऋणदत्त के ऊपर शहर के ब्राह्मण प्रसन्न हुये और राजा भी बड़ा प्रसन्न हुआ। ऋणदत्त को राजा ने पास बैठा लिया तब राजा ने दो थाली मोहरों की ऋणदत्त के आगे भेंट रखीं। ऋणदत्त ने एक थाली तो विदेशी ब्राह्मण को दी जो हार गया था और दूसरी थाली मोहरों की शहर के ब्राह्मणों को बांट दी। तब राजा ऋणदत्त के ऊपर बहुत खुश हुआ। ऋणदत्त ने कुछ भी अङ्गीकार नहीं किया, भोजन भी अपने घर आन कर खाया। तब राजा अपने घर जाकर ऋणदत्त लड़के का जयजयकार का समाचार अपनी रानी को सुनावते भये और ऋणदत्त की बहुत उपमा करी। तब रानीने राजा को कहा कि 'अपनी सुन्दर कन्या ऋणदत्त लड़के को दान दीजिये, हमारी सुन्दर कन्या सुख पावेगी।' तब राजा रानी की बात स्वीकार कर के उसी वक्त सगाई का सामान तैयार कर के कर्मलम्ब ब्राह्मण के घर भेजता भया। बारह गांव का पट्टा कर दिया और चार हीरे, पांचसौ मौहरें और वस्त्राभूषण इतना धन राजा भेजता भया। ऋणदत्त को सगाई का सामान मिला, तब ऋणदत्त अपनी माता को देता भया तब उसी वक्त ऋणदत्त मृत्यु को प्राप्त होता भया। माता बेटे की मृत्यु को देखकर बहुत रोने लगी और ऋणदत्त का पिता कर्मलम्ब भी बाहर से आ गया। धन की प्राप्ति और बेटे की मृत्यु देख कर रोने लगा और कहता भया। 'शास्त्र की बात आज दिन सफल हो गई कि बेटा हमारा कर्ज देकर परलोक को चलागया और लोग भी कर्मलम्ब ब्राह्मण के पास जाकर अफसोस करने लगे। उधर राजा की कन्या पति की मृत्यु सुन कर विचार करने लगी, जिसका पति मृत्यु होगया उस स्त्री का दुनियां में जीना वृथा है इसलिये मृत्यु ही हो जाना श्रेष्ठ है। ऐसा विचार

कर उस राजा की कन्या ने भी प्राण त्याग दिये । तब कर्मलम्ब ब्राह्मण और उस की स्त्री दोनों अपने सुन्दर बेटे के वियोग से संसार को दुःखरूप जान कर सर्व धन का दान करके भजन करने के वास्ते वन को जाते भये इस प्रकार स्त्री उदाहरण सुन कर तपस्वी को कहती भई । हे तपस्वी जी, ऐसे ही जब परस्पर लेना देना खतम हो जाता है तभ उसीवक्त जीवों का वियोग हो जाता है ।

विचार से देखिये तो आत्मा का कभी वियोग नहीं होता । जन्म मृत्यु शरीरों के धर्म हैं, आत्मा सब का एक है और परिपूर्ण है । हमारे पति ने इस प्रकार हमारे को ज्ञान सिखाया हुआ है । आत्मा जन्म–मरण से रहित है, सर्व का स्वरूप है, अजर–अमर–अखन्ड है, कर्म वायु से कल्पित शरीररूपी तरङ्गों के जन्म–मृत्यु होते रहते हैं, कल्पित झूठे जड़ शरीरों के संयोग–वियोग से शोक करना वृथा है, आत्मस्वरूप हमारा और पति का एक है सो अमर है, उसका कभी जन्म–मृत्यु नहीं होता है । हे तपस्वी जी इस विचार से पति के शरीर की मृत्यु सुन कर हमारे को मोह शोक नहीं हुआ । अब तपस्वी कहता भया 'हे देवी ! पिछले जन्म ऋणदत्त और कर्मलम्ब कौन थे और कैसे कर्ज़ा लिया था यह सब समाचार हमारे को सुनाइये ।' तब स्त्री कहती भई 'हे तपस्वीजी ! उन सभावाले ब्राह्मणों का राजा वा रानी का, राजा की कन्या का और कर्मलम्ब व ऋणदत्त का इन सब शरीरों का पिछले जन्म का वृतान्त मैं तुम्हारे को सुनाती हूँ तुम सुनो–'एक वैश्य था वह अपने कुटुम्ब सहित तीर्थयात्रा करता २ मथुरा के पास आया तब जंगल में एक तपस्वी की कुटिया के पास रात को निवास करता भया । सुबह हुई तो अपनी स्त्री को कहने लगा कि आपां बनारस को जाना है, रास्ते में चोरों का डर है, ठग चोर रास्ते में बहुत हैं इसलिये कुछ धन

इस तपस्वी के पास अमानत रख दीजिये । तब स्त्री ने कहा—'सत वचन, हे भगवन् आपने बहुत अच्छा विचार किया है । तब उस वैश्य ने चार हीरे, पांचसौ मौहरें और बारह गांव का पट्टा इत्यादि धन तपस्वी जी के पास अमानत रख दिया और कहता भया कि मैं बनारस की यात्रा करके यह धन आप से लेता जाऊँगा । तब तपस्वी ने केवल परोपकार समझकर धन को रख लिया और अपनी चेली को कहा इस धन को अपनी कुटिया में रख लीजिये । तब दासी अपनी कुटिया के अन्दर वैश्य का धन रखती भई और वैश्य बनारस को चला गया । तब एक महीने बाद तपस्वी बीमार होता भया, तब तपस्वी अपने विद्यार्थीयों से पूछता भया, वैश्य का धन कहाँ रखना चाहिये । हमारा काल नजदीक आगया है । तब विद्यार्थीयों ने कहा आप के पास जो ऋषि बैठा है इसको दे दीजिये, यह ऋषि मथुरा में सेठ के पास रख देवेगा । तब तपस्वी ने सब धन दासी से लेकर ऋषि को दे दिया । ऋषि ने मथुरा के सेठ के पास धन को अनामत रखदिया तब तपस्वी मृत्यु होता भया और इधर से वैश्य यात्रा करता हुआ उसी तरफ कुटुम्ब सहित काल के वश होता भया और मथुरा का शेठ और शेठानी भी कुछ काल पाकर मृत्यु होते भये और तपस्वी की दासी और विद्यार्थी और ऋषि वह सभी कुछ काल पाकर अपने २ समय पर सब मृत्यु को प्राप्त होते भये । हे तपस्वीजी वह वैश्य जो बनारस का यात्री था सो मर कर कर्मलम्ब ब्राह्मण होता भया, तपस्वी कर्मलम्ब ब्राह्मण का बेटा ऋणदत्त होता भया और मथुरा का शेठ सेठानी राजा रानी होते भये और दासी मरकर राजा की कन्या हुई और विद्यार्थी मरकर शहर के ब्राह्मण बने और ऋषि मरकर विदेश का ब्राह्मण हुआ जो हार गया था । हे तपस्वीजी इस प्रकार अपने २ कर्म के अनुसार

सबका संयोग होकर फिर वियोग हो जाता है, कर्मों की आश्चर्य गति है लखी नहीं जाती । तब तपस्वी ने पूछा हे देवी, वह राजा की कन्या मरकर कहां गई और ऋणदत्त मरकर कहां गया । तब स्त्री कहती भई, वह राजा की कन्या मैं हूं और ऋणदत्त हमारा पति है अब हम दोनों को ज्ञान हुआ है अगाड़ी हम दोनों का जन्म नहीं होगा, दोनों ब्रह्मस्वरूप में अभेद हुये हैं निस्संशय पूर्णस्वरूप का अपरोक्ष हुआ है । तब तपस्वी धन धन करता हुआ लड़के की बहन के पास जाता भया और मन में विचारा कि बहन को भाई की मृत्यु सुनकर मोह जरूर होगा, तिसकी परीक्षा के लिये बहन को कहता भया ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—राजसुता सुन बात मम, करे जो दिलको शोर ।
वीर बिनास्यो बने में, सिंह शूर में तोर ॥

अर्थ—हे राजा की बेटी एक बात सुन जिस के सुनते ही तेरे दिल को बड़ा शोक होजावेगा, तेरे भाई को बन के बीच शेर ने मार डाला ।

॥ बहन का उत्तर ॥

दोहा—बन में मरते जीव बहु, रचे जो ईश अनन्त ।
शोक करूं मैं कौन का, जाओ कुटी तुम संत ॥

अर्थ—हे तपस्वीजी, इस संसार बन में ईश्वर के रचे हुये जीव अनेक ही मरते जन्मते हैं मैं कौन का शोक करूं, तुम अपनी कुटी में जाकर भजन करो ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

तपस्वी कहता भया बहनों को वीर प्यारे होते हैं, हे देवी तुमने भाई की मृत्यु का किस विचार से शोक नहीं किया, कोई दृष्टान्त कहो ।

॥ बहन का वचन ॥

हे तपस्वी जी इस संसाररूपी बन में ईश्वर रचित जीवों का जन्म—मरण प्रवाह चला आता है, अथवा हे तपस्वीजी जैसें समुद्र में वायु से अनन्त तरङ्ग उत्पत्ति, लय होते हैं, तैसे परमात्मारूपी समुद्र में माया वायु से अनन्त जीवरूपी तरङ्ग, उदय, लय होते रहते हैं सो सब झूठ हैं, शोक करना वृथा है। हे तपस्वीजी ! अब दृष्टान्त सुनो जिसके सुनते ही मोह शोक नाश होवे है ।

जैसे किसान खेती बीज करके फिर उसकी पालना करके छोटी बड़ी को काट लेता है, जैसे उसके काटने से अफसोस कोई नहीं करता ही ईश्वररूपी किसान अनन्त जीवरूपी खेती पैदा करके फिर पालना तैसे करता है, फिर अपनी मर्जी से कालरूपी दरांती से काट लेता है, छोटे बड़े जीव कालरूपी दरांती से काटे जाते हैं याने परमात्मा सब का मालिक है जीव का अफ़सोस करना वृथा है । हे तपस्वीजी ऐसे विचार से हमारे को भाई के मरने का शोक नहीं हुआ अथवा हे तपस्वीजी ! और उदाहरण सुनो जिसके सुनते ही मोह शोक निवृत्ति होवे हैं।

एक माई शील स्वभाव से अपने पति की सेवा करके पति को प्रसन्न रखती थी। वह अपने पति को कहती भई, 'हे भगवन् ! भजन करने से ही कल्याण होता है, और भजन करने की युक्ति महात्मा से मिलती है, आपकी आज्ञा होवे तो महात्मा के पास चली जाऊँ' तो पति ने कहा, 'एक वृद्ध महात्मा बाहर कुटी में रहते हैं उनके पास जाकर दर्शन भी कर और भजन करने की युक्ति और भजन भी श्रद्धा से पूछ ।' तब माई अपने पति की आज्ञा से प्रसाद भेंट लेकर शील स्वभाव से महात्मा के पास जाती भई। दर्शन

करके नम्रता से हाथ जोड़ कर विनती करती भई, 'हे भगवन् ! कल्याण कैसे होवे ।' तब महात्मा बोलते भये 'हे देवि ! अपने पति की आज्ञा में रहना और सदा भगवान् का भजन करना ये तुम्हारे लिये कल्याण का मार्ग है ।' तब माई कहती भई, हे भगवन् ! आप कृपा कर के भजन भी बताइये, और भजन करने की युक्ति भी बताइये । तब महात्मा जी ने दया करके माई को भजन बतादिया और युक्ति कहते भये, पिछली रात एक पहर अर्थात् चार-बजे स्नान करके नीचे आसन लगाकर सुबह के आठ बजे तक एक आसन पर अचल बैठकर भजन करना चाहिये और एक पहर अथवा तीन घण्टा शाम को एक आसन पर समाधान होकर भजन करना और भजन का समय सम्पूर्ण किये बिना किसी के साथ बात नहीं करनी आसन से उठना भी नहीं, और निष्काम भावना से केवल भगवान की प्रसन्नता अर्पण भजन करना । तब माई श्रद्धापूर्वक महात्माजी की आज्ञा से रोज ऐसे ही विधिपूर्वक अभ्यास करती भई । जब बहुत काल भजन करते होगया तब पाप नाश होने से चित्त अत्यन्त समाहित होता भया । तब माई को पूर्व के जन्मों की खबर होती भई, तब एक रोज उसका दो वर्ष का बेटा उस माई के सामने खेल रहा था, माई भजन में तत्पर थी उस लड़के के पास काला सर्प आता भया, उस सर्प ने लड़के को काटलिया तब लड़का मृत्यु होता भया । परन्तु उस माई ने सर्प को देखा भी, मगर अपने नियम पालन के कारण अपना आसन और भजन को छोड़ा नहीं तब एक पड़ौसिन उस के घर में आई, सर्प तो भाग गया उस पड़ौसिन ने निश्चय किया कि सर्प के काटने से ही लड़का का मृत्यु हुआ है । तब वह पड़ौसिन मोह वश होकर रोने लगी तब तक लड़के की माई भी भजन सम्पूर्ण करके लड़के के पास आती

भई ! तब पड़ौसिन ने कहा हे बहिनजी ! तुम्हारा यह एक ही सुन्दर बेटा था जिसको तुम्हारे सामने सर्प ने काटा तुमने बेटेकी मृत्यु से रक्षा क्यों नहीं करी, तुमको मोह क्यों नहीं हुआ, तब लड़के की माता कहती भई, इस लड़के के और हमारे परस्पर सम्बन्ध होते हुए सात जन्म होचुके हैं कभी ये माता बनजाता है मैं बेटा बन-जाती हूँ, कभी मैं माता बनती हूं ये बेटा बनजाता है, कभी ये पहिले परलोक चला जाता है कभी मैं इससे पहिले परलोक चली जाती हूँ । इस प्रकार अब इसका मृत्यु पहिले हुआ है । समय पर हमारी भी मृत्यु होजावेगी, मुसाफिरोंवाला मेल है इस वास्ते हे बहिनजी ! भजन करने से ही जीव चौरासी के चक्कर से छूटता है याते उत्पत्ति नाशवाले शरीरों के वियोग से मोह करना वृथा है अथवा परमात्मा का हुकम ऐसे ही था इस क्षण में सर्प की मौत से लड़का मरना ही था । इस विचार से हमारे को मोह शोक नहीं हुआ । तब माई का विचार सुनकर पड़ौसिन शान्ति को प्राप्त होती भई—तब बहिन कहती भई हे तपस्वीजी ! जैसे उस माई को भजन के प्रताप से बेटे की मृत्यु का मोह शोक नहीं हुआ तैसे हमारे को ज्ञानके प्रताप से भाई की मृत्यु सुनकर मोह शोक नहीं हुआ । काहेते जैसे वृक्ष के नीचे मुसाफिर एकत्र होकर बिछुड़ जाते हैं तैसे भाई, पिता बेटा, पति, आदि सम्बन्धी मुसाफिरों की तरह इकट्ठे होकर बिछुड़ जाते हैं । याते सम्बन्धियों के वियोग का शोक त्याग कर भगवान का भजन और धर्म ही दिन रात करना चाहिये और विषय भोगों से उपराम होना चाहिये । भोगों से बुद्धि मलीन हो जाती है सात्विक पुरुष तो विषय भोग त्याग कर के भजन में ही सुखी होते हैं । काहेते जिसके मन में विषय की तृष्णा अधिक है वह ही दुखी परम कङ्गाल है, और जिसके मन में सन्तोष है वह ही परम सुखी धनवान है ।

दोहा—कामधेनु मन शांत जो, नन्दन बन सन्तोष ।
अमृत सङ्गत सन्त की, होय ज्ञान से मोक्ष ॥

भाव ये है :—जब सन्तोषरूपी सूर्य उदय होता है तब इच्छारूपी रात्रि का अभाव हो जाता है । और त्रिलोकी के राजा की इच्छा निवृत्त ना भई तो वह भी दरिद्री है और जो निर्धन है और सन्तोषवान है वह सबका ईश्वर है जो अप्राप्य वस्तु की इच्छा न करे और अनइच्छित प्राप्त हुये इष्ट अनिष्टमें राग द्वेष से रहित शास्त्रानुसार वर्तना इसका नाम सन्तोष है, अथवा तृष्णा का अभाव ही सन्तोष है । सन्तोष ही परमपद है, सन्तोषवान सदा आनन्दमय है जो सन्तोष से रहित है, तिसके हृदय में दुःख चिन्ता उत्पन्न होते रहते हैं जैसा आनन्द सन्तोषवान को होता है ऐसा आनन्द अष्ट सिद्धि के ऐश्वर्य करके भी नहीं होता और अमृत के पान किये से भी ऐसा आनन्द नहीं होता जैसा आनन्द सन्तोषवान को होता है । सदा शान्त रहता हैं, जैसे पक्का आम सुन्दर होता है सबको प्यारा लगता है तैसे सन्तोषवान पुरुष सबको प्यारा लगता है, और स्तुति करने योग्य है । जिस पुरुष को संतोष प्राप्त हुआ है तिस को परम-लाभ भया है जहां संतोष है तहां इच्छा नहीं रहती और संतोष-वान भोग में दीन नहीं होता वह उदार आत्मा है सर्वदा आनंद कर तृप्त रहता है । संतोष से परम शोभा होती है, जो संतोषवान पुरुष है तिसको देवता, मनुष्य सब नमस्कार करते हैं और धन्य धन्य कहते हैं । और सत्सङ्ग से सर्व दुःख नाश होते हैं, बुद्धि उज्ज्वल होती है और संतों के दर्शन से पाप नाश हो जाते हैं, संतों के उपदेश को धारण करने से अज्ञान मोह निवृत होजाता है, संतों की सेवा करने से चार पदार्थ प्राप्त होजाते हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, याते सन्तों की सङ्गत, सेवा, दर्शन, श्रद्धा प्रेम से

सदा करनी चाहिये । याते हे तपस्वीजी ! और विचार सुनो अज्ञान रूपी मोह से ही पाप पुण्य कर्म बनते हैं जिस मोह के प्रताप से ऊँट, बैल, गदहे भार उठाये फिरते हैं और दुःख पाते हैं । सर्प कीट, पतङ्ग आदि कनिष्ठ योनियों में बारम्बार मोह करके ही भ्रमते हैं और वृक्ष आदि जीव कुल्हाड़े से काटे जाते हैं, ये सब मोह का ही प्रताप है । जो अज्ञानी जीव देखने में आते हैं सब मोहरूपी जाल में फंसे हुये हैं इस मोहरूपी दलदल से निकल नहीं सकते । देवता, दानव, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जीव मोह करके तीनों लोकों में कर्म वश भ्रमते हुए बारम्बार जन्म मरण को प्राप्त होते हैं, जैसे समुद्र में नदियाँ स्वाभाविक ही प्राप्त होती हैं तैसे ही अज्ञानी जीवों को मोह और तृष्णा करके स्वाभाविक ही कष्ट प्राप्त होते रहते हैं । जो स्वर्ग में कल्पवृक्ष है वह तो इच्छा करने से अनेक प्रकार के पदार्थ देता है परन्तु ये रागरूपी ऐसा कल्पवृक्ष है कि बिना इच्छा से ही अनेक प्रकार के कष्ट जीवों को देता ही रहता है, जो जीव भजन भक्ति नहीं करते, राग से सदा ही विषय, भोगों का यत्न करते रहते हैं, वह नर्क की अग्नि में लकड़ी की तरह जलेंगे । मोह करके अनन्त कष्ट पावेंगे और जो सात्विकी पुरुष निराश होकर भजन भक्ति प्रेम से करेंगे वह सर्व दुखों से छूट कर दोनों लोक में सुखी होवेंगे और जो मोह से चोरी, जूआ, हिन्सा, झूठ, निन्दा, लोभ आदि पाप करने वाले जीव हैं वह बड़े भयानक कष्ट पावेंगे जैसे सर्प के काटे से, शस्त्र के घायल से, कोल्हू में पेले जाने से, अन्ध कूप में गिरने से, पाषाण की वर्षा कर चूर्ण होने इत्यादि जो बड़े बड़े भयानक कष्ट हैं सो पापी पुरुष भोगते हैं, याते पापी पुरुष का सग कभी ना करना चाहिये ।

पापी के पाप का निरूपण करने से वोही पाप निरूपण करने वाले को प्राप्त हो जाता है याते पापी पुरुष की निन्दा ना करे और पापी पुरुष का त्याग करदेना चाहिये । अपने शरीर पर कष्ट सहन करे परन्तु खोटे पुरुष की सङ्गत कभी ना करे । यद्यपि बड़ा बुद्धिमान भी होवे परन्तु विषयों में राग करने से लघुता को प्राप्त होजाता है और बिषयों के उपराम होने से लघु पुरुष भी पूजने योग्य बड़ा होजाता है और जैसे कीट आदि अपवित्र मूत्र आदि मैले स्थान में प्रीतिपूर्वक प्रसन्न रहते हैं तैसे सकामी पुरुष भोगी जीव भी अपवित्र मैले जो विषय भोग हैं तिन में प्रीति करते हुये प्रसन्न रहते हैं । किसी पुण्य में मिला जो मनुष्य शरीर वा अमूल्य समय सो नाशवान भोगों में निष्फल कर देते हैं । मूर्ख तृष्णावान् भोगी पुरुषों को अन्त समय पश्चात्ताप करना पड़ेगा । सकामी पुरुषों की इच्छा के बल से ईश्वर उन को स्त्री आदि अपवित्र भोग देता है जिन के मोह से जीवों को दुःख ही होवे और जो मोक्ष की इच्छावान निष्काम पुरुष हैं तिनको भगवान पवित्र वस्तु भजन और विचार में लगा देता है तिस करके परमानन्द की प्राति होवे है । हे तपस्वीजी ! जो सात्विकी निष्काम पुरुष हैं भगवान की भक्ति में लगे हुये हैं उनके लिये यह पवित्र विचार मैं तुम्हारे को सुना रही हूँ यह पुण्यरूप विचार है जिसके सुनते ही जीवों के पाप नाश होवें हैं ।

और विचार यह है कि दुपहर का सूर्य प्रकाश ना करे तो ना करे परन्तु जो सब से उदासीन होके अभ्यास करेगा तो उस की जड़ चेतन माया दासी अवश्य होवेगी । और विचार यह हैं:— कि दुखियों पर दया करनी, क्षमा धीरज आदि से चित्त शुद्ध होवे है चित्त की शुद्धता से उपरतीरूप पुण्य बढ़े है अथवा यम नियम आदि साधनों से परम सुख की प्राप्ति होवे है । और इस जगत में सुखी

दुखी सर्व जीवों को धर्म ही करना चाहिये सुखी पुरुष धर्म करेगा तो उसका सुख बढ़जावेगा । दुखी पुरुष जो धर्म करेगा तो उसका दुख नाश हो जावेगा । याते धर्म ही परम तीर्थ है धर्म ही परम तप है धर्म ही जीव का परम मित्र है धर्मी पुरुष ही परमानन्द को प्राप्त होवेंगे । जो धनको धर्म में नहीं लगाते उनका धन अग्नि से नाश हो जावेगा । राजा भी उनका धन छीन लेगा और चोर डाकू लूट लेजावेंगे । और जो पुरुष दशवां अंश धन का धर्म में लगाते रहते हैं उन के पाप नाश होने से धर्म के प्रताप से राजा दण्ड नहीं लगावेगा, अग्नि उसके धन को नहीं जलावेगी, चोर डाकू भी उस का धन नहीं लूटेंगे । जिन धर्मी पुरुषों का धन धर्म में लगता रहता है वह उत्तम पुरुष हैं धर्म में धन लग जाने से पुण्य ही शेष धन की रक्षा करता है । याते समाधान होकर धन को धर्म में लगाना चाहिये और सदा मानरहित रहना चाहिये ।

काहेते मान बड़ाई एसा गुप्त दोष है कि भगवान् की प्राप्ति में बाधा डालता है । याते मान बड़ाई का हृदय में आवेश ना होने देना चाहिये । नाशरूप पदार्थों की मान बड़ाई करना वृथा है । मान और मोह से तप का नाश होता है और अपमान से और शारीरिक कष्ट से तप की वृद्धि होती है और क्षणभङ्गुर विषय भोगों से मन की तृप्ति होवे नहीं । जैसे अग्नि में घी पाने से अग्नि और प्रज्ज्वलित होवे है तैसे विषय की प्राप्ति से मन की तृष्णा बढ़े है । जब ज्ञान से मन को ब्रह्म सुख मिल जाता है तब तृप्त हो जाता है । जैसे हाथी की खुराक एक मन अन्न है यदि उसको एक सेर खुराक दीजावे तो वह तृप्त होवे नहीं । तैसे मनरूपी हाथी भी एक सेर खुराक की तरह चौदह लोकों के भोग से तृप्त होवे नहीं, जब पूरी

खूराक ब्रह्म सुख मिलजावे तब मन तृप्त हो जावे है फिर विषय सुख की ईच्छा करे नहीं, परन्तु मन जीव का ऐसा बैरी है जो भजन से खाली छोड़ देने से भोगों की तरफ ही दौड़ता है याते मन से उल्टा चलना चाहिये मन खोटे कर्म में गेर देता है याते मन को शीत, उष्ण, तृषा, क्षुधा, आदि सहन करना चाहिये और सदा जप, तप विचार में लगाना चाहिये ।

मन अहंकार को मित्र बनाकर अनेक अनर्थ करता है और स्त्री बिषय के सम्बन्ध से बल, वीर्य्य, तेज, कीर्ति, पुण्य, आयु का नाश तत्काल ही हो जाता है । याते विषय भोग से बचना चाहिये और ब्रह्मचिन्तन के बिना एक क्षण भी वृथा न जाने देवे जिस क्षण में मन ब्रह्मचिन्तन नहीं करता उस क्षण में अपने आप को मृत्यु के मुख में गेरता है । याते समाधान हो कर अनात्म चिन्तन नहीं होने देवे याते श्रद्धा से विवधानरहित सदा ब्रह्मअभ्यास करना चाहिये । कालरूपी सर्प ने जीवरूपी मेंडक को मुख में पकड़ रक्खा है जीवरूपी मेंडक भोगरूपी मच्छर की इच्छा करता है यह बड़ा आश्चर्य है ।

अज्ञानी जीवों को दुःखरूप विषयों में सुख की भ्रांति है जैसे उल्लू को रात में दिन की और दिन में रात की भ्रांति है और जैसे पतङ्गे साक्षात मृत्युरूप दीप की शिखा और लालटेन आदि को सुखरूप मान कर जल मरते हैं, वैसे ही अज्ञानी जीव विषय भोगों को सुख-रूप मान कर स्त्री आदि विषय के मोह वश होकर बारम्बार मृत्यु के मुख में पड़ते हैं । उनको परलोक का ज्ञान नहीं है यही लोक उनको दीखता है भजन धर्म से शून्य होने से परमार्थ की बुद्धि नष्ट हुई रहती है जैसे पतङ्गे को सब जगह में अन्धकार ही दीखे है जहां दीपक आदि रोशनी होवे है वहाँ ही प्रकाश को सुखरूप

जानकर अग्नि में जले हैं तैसे ही बहिर्मुख अज्ञानी जीव भी सर्व स्थानों में दुख ही दुख देखे है और स्त्री, धन आदि विषय में ही सुख देखे है याते बारम्बार अज्ञानी जीव पतङ्गों की तरह क्षणभङ्गुर स्वप्न मात्र मिथ्या भोगों में प्रीति करते हुये मोह से राग-द्वेषरूपी अग्नि में दिन रात जले हैं शान्त कभी नहीं होवें है और जैसे कोई दयालु पुरुष पतङ्गों को मोह वश मृत्यु की तरफ जाने को देख कर उनको दुख से बचाने के हित से दीपक लालटेन आदि रोशनी कम कर देता है अथवा रोशनी बन्द करदेता हैं। परन्तु इस तात्पर्य को ना जानते हुये पतङ्गे उलटे दुखी होते हैं कि हमारी मनोकामना पूरी ना हुई तो भी रोशनी के कम करने अथवा बुझा देने वाले पुरुषों की तो उन पर बड़ी भारी दया ही समझी जाती है।

तैसे कञ्चन कामिनी आदि विषय भोग के मोह से राग द्वेषरूपी अग्नि में अज्ञानी जीवरूपी पतङ्गे जल रहे हैं तिन के कञ्चन कामिनी आदि विषय भोग प्रारब्धवश ईश्वर की आज्ञा से कम हो जाने अथवा नाश हो जाने से जीवरूपी पतङ्गे तात्पर्य को ना जानते हुये दुखी होते हैं कि हमारी मनोकामना पूरी ना हुई। परन्तु उनके ऊपर दयालु परमात्मा की तो अत्यन्त दयाही है। काहेते विषय सुख के अभाव होने से राग द्वेष से रहित हुये सात्विकी पुरुष अधिक ईश्वर की भक्ति व भजन करते हुये परमानन्द को प्राप्त हो जाते हैं। और जैसे कोई पुरुष महान धूप कर तपा हुआ सर्प के फन की छाया में बैठ कर सुखी हुआ चाहे तो कभी नहीं होगा कष्ट ही पावेगा तैसे इन्द्रियों के विषय से कोई सुखी हुआ चाहे तो कभी नहीं होगा कष्ट ही पावेगा।

आत्मज्ञान अथवा भगवान के भजनरूपी वृक्ष की छाया में

निवास करने से तत्काल ही सुखी होजावेगा जिन पुरुषों ने विषय की सेवना करी है सो परम दुख को प्राप्त होते हैं। मूर्ख का मन तृष्णा करके विषय की तरफ ही धावता है शान्त कभी नहीं होता जिससे अनेक जन्म दुखों को प्राप्त होता है, चाहे आकाश में तारे गिने जायें तो गिने जायें परन्तु तृष्णावान पुरुष के जन्म और दुखों का अन्त नहीं आयेगा।

जहां जहां तृष्णा है तहां तहां ही दुख है। वैराग्य और सन्तोष से तृष्णा इच्छा आदि का अभाव होवे है और तृष्णा इच्छा आदि ही दुखों का मूल है और आत्मा को आवरण करे है (अर्थात् ढके है) याते तृष्णा इच्छा आदि दुख की निवृत्ति के लिये वैराग्य और सन्तोष का सदा सेवन करना चाहिये।

जिज्ञासु उपवास आदि से इन्द्रिय निर्बल करते हैं, काहेते इन्द्रिय निर्बल होने से विचार का बल हो जाता है, परन्तु सात्विकी पुरुषों को शारीरिक कष्ट से पूर्व कृत पाप भुगत जाने से बुद्धि शुद्ध होवे है विचार और निर्माणता आदि दैवी गुण बढ़े हैं याते शरीर का कष्ट भी सात्विकी पुरुषों को तप के समान है, काहेते जितने तप हैं सभी कल्याणकारी हैं, परतु अनशनव्रत सबसे अधिक तप है, और जैसे रात से दिन आजाता है और दिन से रात आजाती है जैसे ये चक्र बिना यत्न से चलता रहता है तैसे दुख से सुख आ जाता है। सुख से दुख आ जाता है। यह चक्र भी दिन रात की तरह बिना यत्न से चलता ही रहता है परन्तु विचार करके देखिये तो विषय सुख से दुख श्रेष्ठ है, जीव का परम मित्र है जिसके आने से नम्रता, वैराग्य, नाम जपना, दान करना आदि शुभ गुण स्वाभाविक ही आ जाते हैं और विषय सुख शत्रु है जिसके आने से काम,

क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि आसुरी गुण हृदय में प्रवेश कर जाते हैं और यहां अत्यन्त कष्ट देते हैं परलोक में नर्क में गेर देते हैं, याते इन्द्रियों के विषयों की इच्छा करनेवाले जीव सदा दीन रहते हैं, शान्त नहीं होते । याते भोग इच्छा बन्धन का कारण है, और विषय भोगों की इच्छा का त्याग करना ही जीव का मुख्य कर्तव्य है क्यों कि विषय भोग तो सब योनियों में भोगता ही आया है मनुष्य जन्म को पाकर तो विषयों का त्याग करके भजन ही करना चाहिये ।

दुख जीव का परम मित्र है जिसके आते साथ ही काम, क्रोध, अहकार आदि सब शत्रु भाग जाते हैं याते जीव का दुखरूपी मित्र बड़ा बलवान है जो नर्क में गेरनेवाली खोटी विषय वासनाओं को भगा देता है और सुखरूप शुभ वासना को प्राप्त करता है और इंद्रियों के विषय सुख तो बड़े यत्न से प्राप्त होवें हैं और जीव का दुखरूपी मित्र ऐसा परोपकारी है कि बिना यत्न से बिना इच्छा के अपने आप आजावे है और दोनों लोक के सुख देनेवाले शुभ गुण साथ ही लावे हैं याते दुख बड़ा परोपकारी जीव का परम मित्र है जो नर्क से बचालेता है और वैराग्य द्वारा परमानंद की प्राप्ति करा देता है ।

दोहा

सुख के मांथे सिल पड़े, जो नाम हृदय से जाय ।
बलिहारी जाइये दुखसे, जो पल २ नाम जपाय ॥१॥
सुख में सौ सौ दुःख हैं, दुख में सौ आनन्द ।
दुख से जब ये हित करें, छूटें सगले बन्ध ॥२॥
दुख की निन्दा मत करो, दुखिया स्वर्ग में जाय ।
दुख ना होते जगत में, जाते नर्क सबाय ॥३॥

दुख में सुमरण सब करें, सुख में करे न कोय ।
जो सुख में सुमरण करें, तो दुख काहे को होय ॥४॥
दुख क्लेश और आपदा, परमानन्द निधान ।
भक्ति अरु निर्मणता, इन के अन्तर जान ॥५॥

(अर्थ स्पष्ट है)

किसी समय में भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजी ने कुंती को कहा वर मांग, तब कुंती बोलती भई, हे भगवन् ! दुखों की वर्षा होती रहे काहेते आपका नाम नहीं भूलेगा सदा यादगीरी बनी रहेगी । तब भगवान ने ऐसा ही वर दिया । और सुभद्रा को श्री भगवान कहते भये, वर मांग तब सुभद्रा बोली कि, हे भगवान ! एक समय भोजन खाने को मिले सो भी पूर्ती का ना मिले, भूख ही रहे काहेते आपका नाम सदा स्मरण रहेगा, काहे ते भूख से काम क्रोध आदि बिकार मनमें प्रवेश नहीं करते और भूख से प्राण सूक्ष्म होने से मनस तो प्रधान होवे है । अर्थात् अनशन व्रत से निद्रा, आलस, जड़ता दोष भी निवृत्त हो जाते है और कामदोष का हृदय से अभाव ही हो जाता है और भूख से मन अंतरमुख होने से विचार में ही लगा रहता है ।

हे भगवान इसलिये मैं भूख ही चाहती हूँ, तब भगवान ने ऐसा ही वर दिया । विचार करना चाहिये सात्विकी पुरुषों को दुख और गरीबी ही सुख समान प्यारी है जिससे परमात्मा की भक्ति होवे है जिस भक्ति से परमानंद की प्राप्ति होवे है । राज के मद से, और धन के मद से तथा मन के मद से भक्ति होवे नहीं, उलटा आसुरी गुण काम, क्रोध आदि बढ़ने से पाप ही होवे है गरीबी से ही कल्याण होवे है ।

बाहर अंदर संग्रह से रहित और नम्रता और भक्ति भजन में प्रेम होना ये सात्विकी गरीबी है अथवा ईश्वर की कृपा से हृदय में गरीबी का निवास होना ही सात्विकी गरीबी है । ऐसी गरीबी से सर्व विरोध मिट जाते हैं और परमानन्द की प्राप्ति होवे है, और तीन वस्तु प्राप्त होजावें तो सात्विकी पुरुष को ऐसा सुख होवे हैं जो ऋद्धि सिद्धि से भी ऐसा सुख होवे नहीं । (१) अज्ञात देश की प्राप्ति (२) गरीबी होनी (३) मनुष्यों से अपमान होना, इन तीनों से भगवान का बारम्बार सुमरण होवे है और गरीबी रूपी तप से काम, क्रोध, अहंकार आदि विकार ऐसे भाग जाते हैं जैसे गुलेल से कौवा भाग जाता है । तब रजो, तमो से रहित सतो प्रधान होने से भजन विचार में मन तत्पर लगा रहता है ।

शास्त्र में तो गरीबी की महिमा कही है और शील स्वभाव के प्रभाव से इन्द्र को इन्द्र पदवी मिली है । नम्रता के बिना रावण आदि अहंकारी राजाओं के राज्य नष्ट हो गये और नम्रता के प्रताप से विभीषण और प्रथु आदि राजाओं को राज्य प्राप्त हुये हैं । नम्रता से जप, तप, दान आदि सर्व साधन सफल होवें हैं नम्रता से ही जै जैकार होवे हैं याते नम्रता के ही बढ़ाने का साधन करना चाहिये, काहेंते कटुवाक्य बोलनेवाले के पुन्य कटुवाक्य सहन करनेवाले के पास चले जाते हैं याते हितकारक मधुर और सत्य वाक्य बोलना चाहिये । काहेंते मधुर वाक्य के तुल्य करामात भी नहीं हैं याते हे तपस्वी जी ! ईश्वर की आज्ञा से प्राप्त हुई गरीबी और दुख तिसको सात्विकी पुरुष परम सुखरूप जानकर प्रसन्न होते हैं और जैसे शरीर के रोग की निवृत्ति के लिये और आरोग्यता की प्राप्ति के लिये कड़वी दवाई का सब लोग सेवन करते हैं, तैसे सात्विकी पुरुष भी

पूर्व के पापों की निवृत्ति के लिये और भजन विचार की प्राप्ति के लिये ग़रीबी और शरीरिक कष्ट को अमृतरूप जानकर ग्रहण करते हैं। और भजन विचार में तिन को अति प्रेम है उनके हृदय में सदा सुख ही सुख रहता है, चिन्ता, शोक उनको कभी होता ही नहीं और परमानन्द को प्राप्त हो जाते हैं। बहन कहती भई, हे तपस्वीजी! भगवान् को भक्ति ही प्यारी है और भक्ति ग़रीबी से होवे है याते ग़रीब का ही दान और भजन फलीभूत होवे है।

॥ तपस्वी का वचन ॥

ग़रीब का दान किस प्रकार फलीभूत होवे है इसमें कोई उदाहरण कहिये।

॥ बहन का वचन ॥

हे तपस्वी जी! उदाहरण सुनो:—किसी समय श्री गङ्गा जी का पर्व था तब एक शहर के सब लोग स्नान करने गये और शहर का राजा भी जाता भया। तब सब लोगों ने श्री गङ्गाजी के तट पर दान किया। राजा ने तो लाखों रुपये का दान किया और सेठ लोगों ने हजारों रुपये का दान किया, उसी शहर का एक ग़रीब घास बेचकर गुजरान करता था तिसके पास कुल चार आने थे और कुछ नहीं था उसने चार आने ही दान करदिये तब सब लोग वापिस शहर को जाते भये। तब भगवान की कृपा से सब के ऊपर बादल की छाया साथ जा रही थी, तब लोग कहने लगे राजा ने और सेठों ने बहुत दान किया है इस कारण ऊपर छाया होगई है और वह ग़रीब जिसने चार आने दान किये थे, वह थोड़ी दूर कूये से जाकर पानी पीने लगा, तब छाया तो उस के ऊपर हो गई, लोगों के ऊपर धूप रह गई, तब लोगों को यह निश्चय हुआ कि इस ग़रीब का दान

फलीभूत हुआ है और किसी के दान का पुण्य इतना फलीभूत नहीं हुआ ।

जब वह ग़रीब पानी पीकर लोगों के पास आया तो छाया उसके ऊपर चली आई तब राजा आदि सब लोगों ने उस ग़रीब को नमस्कार करी कहते कि उस दान के पुण्य का उसके मुख पर प्रकाश चमक रहा था तब सब लोग कहने लगे हे भगत जी ! तुमने क्या दान किया है जो भगवान् तुम्हारे ऊपर बड़ा प्रसन्न हुआ है ? तब गरीब ने कहा कि हमारे पास चार आने थे और कुछ नहीं था भगवान् की प्रेरणा से सोई दान कर दिये । हमारे में तो दान करने की कुछ भी शक्ति नहीं है, तब राजा ने कहा—हे भगत जी ! तुम धन्य हो जो मजदूरी करके तुमने सर्वस्व दान किया है । इस कारण तुम्हारे ऊपर भगवान्जी ने प्रसन्न हो कर बादल की छाया करी है । तब बहन कहती भई । हे तपस्वी जी ! इस प्रकार उस गरीब पर राजा और सब लोग प्रसन्न होते भये ।

इसलिये गरीब का दान अति ही सफल होवे है । याते भजन भी सात्विकी गरीबों का ही फलीभूत होता है प्रत्यक्ष देखिये संतोषी महात्मा भिक्षा वृत्ति से शरीर का निर्वाह सुख से करते हुये भजन विचार से परमानन्द को प्राप्त होगये याते हे तपस्वीजी ! भजन और दान सात्विकी पुरुषों का ही सफल होवे है और ये सर्व जगत स्वप्न समान हमारे को मिथ्या निश्चय होने से भाई की मृत्यु सुनकर मोह शोक नहीं हुआ । तब तपस्वी धन २ करता हुआ लड़के की माता के पास जाता भया क्यों कि मन में विचारा कि माता को पुत्र बहुत प्यारा होता है । इसलिये माता को जरूर मोह होगा याते माता की परीक्षा करनी चाहिये ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—माता तुमको विपत अति, सुत खायो मृगराज ।
हमने भोजन ना किया, तिस मृतक के काज ॥

अर्थ—हे माताजी तुम्हारे को बहुत विपता पड़ी है । तेरे बेटे को मृगों का राजा जो शेर है तिस ने जगल में मारडाला है हमने इसी कारण से आज भोजन भी नहीं पाया ।

॥ माता का उत्तर ॥

दोहा—एक वृक्ष डाली घने, पक्षी बैठे आय ।
पोह फाटी पीली भई, उड़ २ चौदिश जाय ॥

अर्थ—हे तपस्वीजी ! जैसे एक वृक्ष पर पक्षी बैठ कर रात काट कर चले जाते हैं, तैसे ही यह घर एक वृक्ष है तिस में पक्षी-रूपी सम्बन्धी इकट्ठे होकर अपनी २ आयु कर्म भोगकर अपने अपने कर्म के अनुसार बिछुड़ जाते हैं, इस से मोह करना वृथा है ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

माता जी ! ऐसे सुन्दर बेटे के मरने का कुछ भी शोक नहीं करा, शोक के न होने में कोई विचार कहो ।

॥ माता का उत्तर ॥

हे तपस्वीजी ! अब विचार सुनो, जो बात अवश्य होनेवाली है और वह हो जाय, तो उसका शोक करना वृथा है—इस जगत में जो जन्मा है, वह अवश्य मरेगा ही । जो फूलता है वह झड़ेगा ही—इसमें आश्चर्य क्या है, यह सब ईश्वर की आज्ञा से पदार्थ भ्रमते रहते है—यह संसार विनाशी है—अब कहो कौन किस का शोक करे—सब जगत काल के मुख में है, हज़ारों लाखों वर्ष की उम्र

भोग कर मरते ही हैं—कौन किस को रोवे—अंत में सब की यही गति है । याते मिथ्या शोक का त्याग करना ही योग्य है ।

हे तपस्वीजी ! अब एक उदाहरण सुनो जिसके सुनते ही मोह शोक निवृत्त हो जावे हैं ।

हे तपस्वीजी ! एक राजा था उसका सुन्दर लड़का युवा अवस्था में मृत्यु होता भया । तब राजा कचहरी बंद करके शोक मंदिर में जा बैठा, और लोग तारीखोंवाले वापिस जाने लगे । तब एक माई ने लोगों से कहा कि मैं अभी राजा से कचहरी लगवाती हूँ। तब वह माई राजा के पास शोक मंदिर में गई और कहने लगी, हे राजन् ! हमारी एक अर्ज़ सुनिये । मैं अपने भतीजे की शादी पर जाते वक्त पड़ौसिन से ज़ेबर (गहना) मांग कर अमानत लेगई थी, जब मैं शादी से घर में आई तो वह पड़ौसिन अपना सब ज़ेबर मेरे से लेगई ! अब मेरे को बहुत शोक हो रहा है, मेरे से क्यों ले गई ? ऐसी चिंता से मेरा मन दुखी रहता है । तब राजाने कहा—अपनी अमानत उसे लेनी थी, तेरे को शोक चिंता कभी नहीं करनी चाहिये । तेरे को ज़ेबर दे देने की खुशी करनी चाहिये । तब राजा को माई कहती भई, तुम्हारे को बेटा परमात्मा ने अमानत दिया था, अब उसने अपनी अमानत तेरे से वापिस ले ली है । हे राजा ! अब तू बेटे की मृत्यु का शोक करके कचहरी बंद क्यों करे बैठा है ।

तब राजा को विचार हुआ कि यह सच्ची बात है कि सर्व राज आदि समाज परमात्मा की अमानत है जब चाहे अपनी अमानत ले सकता है, हमारा तो दुनियां में कुछ भी नहीं है । ऐसे वृथा ही मैं राज और बेटे का अहंकार करता था । ऐसे विचार करता

हुआ राजा ममतारूप शोक से रहित होता भया क्योंकि ममता ही शोक का स्वरूप है । तब राजा ने गम से रहित होकर खुशी आनद से कचहरी लगाई और राजा ने सब कुछ भगवान् का समझ कर धर्म अर्पण अन्न का लङ्गर लगा दिया और श्रद्धा से निष्काम होके रोज़ ही भगवान का भजन करता भया । तब माता तपस्वी को कहती भई कि हमारे पास बेटा परमात्मा की अमानत था उसने लेलिया है ।

हे तपस्वी जी ! इस उदाहरण के विचार से हमारे को शोक नहीं हुआ । अथवा हे तपस्वीजी ! इस प्रकार का एक और प्रसंग सुनो जिसके सुनते ही मोह निवृत्त होवे है । एक पण्डित था, लोगों को रोज ही कथा सुनाया करता था तिसका एक ही बेटा था, विद्या पढ़ा हुआ, बुद्धिमान, युवा अवस्था था । प्रारब्ध–वश वह मृत्यु होता भया तब पंडित बेटे के वियोग से चिन्ता करता हुआ निशदिन दुखी रहता था और कथा करनी भी बन्द करदी । तब भगवान्की प्रेरणा से स्वर्ग से दो देवता उस पण्डित की चिन्तारूपी दुख की निवृत्ति के लिये, इस मृत्यु लोक में आवते भये । एक देवता ने किसान का स्वांग धार लिया, दूसरे देवता ने मुसाफिर का स्वांग धार लिया तो पण्डित के पास दोनों आवते भये । तब किसान पण्डितजी को कहने लगा कि–हे पण्डितजी ! हमने रास्ते में खेती बोई थी इस मुसाफिर ने चले आते हुये पांव से दबाकर खेती का नाश कर दिया है, हमारे को बहुत दुख हो रहा है । इस का आप न्याय कीजिये । तब पण्डितजी कहते भये, तुमने खेती रास्ते में क्यों बोई ? जो रास्ते में खेती होती है तिसका तो मुसाफिरों के पांवों से नाश होता ही है । तुमको दुख नहीं होना चाहिये, मुसाफिर को तो रास्ते में चलना ही था । तब किसान ने कहा–पण्डितजी ! तुम्हारा बेटा भी

तो मौत के रास्ते में ही था उसकी भी मृत्यु होनी ही थी, आपने कथा क्यों बन्द करदी ? तुमको भी बेटे की मृत्यु से दुखी नहीं होना चाहिये काहेते, यावत् देवता, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जीव मौत के रास्ते में हैं, सबको मौत मारती चली आती है । बालक, युवा, वृद्ध जो जीव दीखते हैं सबको मौत नाश करेगी किसीको भी नहीं छोड़ेगी । याते पण्डितजी ! तुमको बेटे के वियोग की चिन्ता त्याग के ईश्वर शरण होकर निशदिन भगवान का भजन करना चाहिये जिस करके उस लड़के का भी कल्याण होवे और तुम भी सुखी हो जाओगे ।

हे पण्डितजी ! तुम्हारे को उपदेश करने के लिये हम दोनों देवता स्वर्ग लोक से आये हैं । तब पण्डितजी ने प्रसन्न हो कर दोनों देवताओं का पूजन किया, और दोनों देवता स्वर्गलोक को चले गये । तब माता तपस्वी को कहती भई, इस प्रकार देवताओं के उपदेश को पण्डित मन में विचार करता भया कि यह सच्ची बात हैं । बड़े २ राजे आदि सर्व प्राणधारी मौत के रास्ते में हैं कोई भी मौत से नहीं बचेगा, सब जीव अपने २ कर्म के अनुसार मृत्यु हो जावेंगे । और हमारी भी मृत्यु अवश्य होगी । इसलिये लड़के की मृत्यु का शोक करना वृथा है क्योंकि मौत के आगे किसीका भी जोर नहीं चल सकता याते दिन रात भजन ही करना चाहिये । जन्म, मरण, सुख, दुख, लाभ, अलाभ सर्व व्योवहार ईश्वर की आज्ञा से होते हैं याते ईश्वर का हुक्म मानकर प्रसन्न रहना चाहिये । इस प्रकार पण्डितजी मन में विचार करते हुये शांति को प्राप्त हुये और सबसे उदासीन होकर मोह का त्याग करके सर्व व्योहार को छोड़ कर ईश्वर परायण होते भये, और लोगों को भी वैराग्य विषय में कथा सुनावते भये कि हे प्यारे ! सब का मुसाफिरोंवाला मेल है एक दिन सबका परस्पर वियोग अवश्य होगा । याते हे मुसाफिरो ! भगवान का

भजन ही दिन रात करना चाहिये यह अमूल्य समय जा रहा है धन भी एक रोज़ नहीं रहेगा। स्त्री, पुत्र आदि सबका वियोग अवश्य होगा, अपने शरीर का भी मोह छोड़ कर भगवान् में ही प्रेम बढ़ाना चाहिये, कोई भी वस्तु साथ नहीं जावेगी। पुण्य, पाप ही जीव के साथ जावेंगे, जिससे परलोक में सुख, दुख भोगेगा। इस लिये भजन से ही दोनों लोक में जीव सुखी होवेगा और कोई सुख का उपाय नहीं है। याते हे तपस्वीजी! इस प्रकार वैराग्य का लोगों को पण्डितजी उपदेश करते भये। जैसे पंडित अपने बेटे को मौत के रास्ते में समझकर शांति को प्राप्त हुआ तैसे हमारा बेटा भी मौत के रास्ते में था, उसकी भी मृत्यु होनी ही थी। हम और तुम ये सब जगत मौत के रास्ते में ही हैं याते सब को मौत नष्ट कर देवेगी किसी को भी नहीं छोड़ेगी काहेते यह मृत्युलोक है। जैसे मिट्टी का कोट मिट्टी का ही स्वरूप है तैसे सम्पूर्ण मृत्युलोक मृत्यु का ही स्वरूप है। काहेते क्षण क्षण में देखते देखते पदार्थों का नाश होता चला जारहा है तो भी नाशवान पदार्थों में जीव राग द्वेष से परस्पर पाप करते हुये जल रहे हैं, यह सब मोह का ही प्रताप है और कुएँ में गिरने से चोट ना लगे तो ना लगे परंतु राग से व्योहार में प्रवृत्त होने से क्लेश अवश्य होगा याते राग ही दुखों का कारण है। हे तपस्वीजी! एक और उदाहरण सुनो :—एक सन्त नदी के किनारे पर भजन करता था तब एक भगत ने कहा स्वामीजी जिस स्थान में आप कहो आपके लिये कुटी बनवादी जावेगी, तब सन्त ने एक पत्थर नदी में फेंका कि यहां कुटी बनाओ। तब भगत ने कहा यहां तो बड़े वेग से जल का प्रवाह चल रहा है यहां कैसे कुटिया ठहरेगी? तब सन्त ने कहा काल का प्रवाह तो इससे भी अधिक ज़ोर से चलरहा है और स्थान में कुटिया कैसे ठहरेगी अर्थात् जहां

कुटिया बनाओंगे वहां ही काल से नाश होजावेगी, याते हम कुटिया नहीं बनवाते । तब माता कहती भई कि हे तपस्वी जी ! विचार करना चाहिये, सात्विकी पुरुषों को प्रत्यक्ष काल ही वैराग्य को प्राप्त कर रहा है याते सब जगत काल के मुख में होने से काल का ही स्वरूप है । इस विचार से हमको बेटे की मृत्यु सुनकर मोह शोक नहीं हुआ । अथवा हे तपस्वीजी ! और विचार सुनो । असङ्गरूपी शस्त्र से मोहरूपी संसार वृक्ष मूल सहित काटा जावे है ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

हे माताजी ! असङ्गता का क्या स्वरूप है जिससे मोहरूपी संसार वृक्ष काटा जावे है ।

॥ माता का वचन ॥

हे तपस्वीजी ! असङ्गता दो प्रकार की है, एक साधनरूप, दूसरी फलरूप । सर्व व्यवहार को ईश्वर का हुक्म जानना, जन्म मरण, सुख, दुख, सब ईश्वर की आज्ञा में होते हैं, याते अहङ्कार से रहित होकर विषय और विषयी पुरुषों के संग का त्याग करके निष्काम अभ्यास करना ये तो साधनरूप असङ्गता है और आप सहित सर्व जगत को ब्रह्मस्वरूप निश्चय करना और नाम, रूप, प्रपञ्च का अत्यन्त अभाव निश्चय करना ऐसी समता अन्दर की फलरूप असङ्गता है अथवा बारम्बार ब्रह्मविचार करना ही अन्दर की असङ्गता है, दृष्टा होके सर्व दृष्य को प्रकाशे है याही ते आत्मा असङ्ग है अथवा कल्पित की निवृत्ति अधिष्ठान का रूप ही होवे है । याते अद्वैत आत्मा असङ्ग है । और विचार यह है :—

जैसे पानी के घड़े में सूर्य्य का आभास होवे है घड़े का पानी निकासने से वह आभास सूर्य्य में ही लय होवे है तैसे भजन

विचार से अनात्म चिन्तन बन्द हो जाने से आभास ब्रह्म साक्षी में अभेद होवे है याते अनात्म चिन्तन बन्द कहिये चित्त का निरोध ही समाधि है इस लिए वैराग्य और विचार से चित को सदा समाहित करना चाहिये। और विचार ये है जैसे सफेद कागज पर अनन्त काली पीली लकीरें होवे हैं यद्यपि कागज की सफेदी सर्व लकीरों का आधार होने से अपरछिन्न हैं परन्तु लकीरों के सम्बन्ध से कागज की सफेदी भी लकीरों की तरह नाना परिछिन्न रूप होके दीखे है। लकीरों की दृष्टि त्यागने से शेष अपरछिन्न कागज की सफेदी ही रहे है तैसे सर्व नाम रूप कल्पित का अधिष्ठान आत्मसत्ता है परन्तु नाम रूप अनंत लकीरों का सम्बन्ध होने से अपरछिन्न अखण्ड सत्ता भी नाना परिछिन्न की तरह होकर दिखाई देवे है नाम रूप दृष्टि त्यागने से शेष केवल अपरछिन्न अद्वैत अखण्ड सत्ता ही परिपूर्ण रहे है और कुछ नहीं।

याते हे तपस्वीजी! इस प्रकार का अद्वैत आत्मा असङ्ग है। याने आत्मा की असङ्गता का दृढ़ निश्चयरूपी शस्त्र से मोहरूपी संसार वृक्ष मूल सहित नाश होजावे है। अर्थात् आत्म समतारूपी असङ्गता के दृढ़ अपरोक्ष होने से अज्ञानसहित अहंकार और संचित आदि कर्म और जन्म मरण मोह आदि सर्व क्लेशों का स्वप्न से जागृतवत् अत्यंत अभाव हो जावे है। तब माता कहती भई, हे तपस्वीजी! इस प्रकार हमारे को आत्मा की असङ्गता का दृढ़ निश्चय होने से कल्पित नामरूप ससार संग का अत्यंत अभाव हुआ है इस लिये हमारे को बेटे की मृत्यु सुनकर, मोह शोक नहीं हुआ। तब तपस्वी धन धन करता हुआ राजा के पास जाता भया और मनमें सोचा की राजा को जरूर मोह होगा, राजा की परीक्षा करनी चाहिये। तब तपस्वी राजा के पास जाकर राजा को कहने लगा—

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—राजा मुख से राम कहो, पल २ घड़ी घड़ी ।
सुत खायो मृगराज ने, कुटिया लोथ पड़ी ॥

अर्थ—तपस्वी राजा को कहता भया, हे राजा ! पल पल घड़ी घड़ी में राम का स्मरण कर क्योंकि तुम्हारे बेटे को शेर ने मार डाला है, हमारी कुटिया के पास मुर्दा पड़ा है ।

॥ राजा का वचन ॥

दोहा—तपिया तप क्यों छोड़िया, यहां पलक नहीं सोग ।
बासा जगत सराय का, सभी मुसाफ़िर लोग ॥

अर्थ—हे तपस्वीजी ! आपने तप क्यों छोड़ दिया हमारे को तो किंचित भी शोक नहीं है, क्योंकि शरीर नाश होनेवाला है—आज या कल अथवा कोट वर्षों में भी नाश अवश्य होगा—ऐसे विनाशी शरीर के मृत्यु से जो शोक करता है—क्या वह मूढ़ नहीं है—जैसे जल के बुदबुदे देखते २ मिट जाते हैं—ऐसे ही दुनियां के पदार्थ मिटते जाते हैं—याते शरीर के मृत्यु का शोक करना वृथा हैं—क्योंकि यह जगत सराय की तरह है । सर्व जगत के लोग मुसाफिर हैं मुसाफिरों की सरायवाला मेला है । हे तपस्वीजी ! सुपने की तरह सम्बन्धियों का संयोग है इस पर तेरे को एक उदाहरण सुनाता हूँ जिसके सुनते ही मोह शोक नष्ट होजाते हैं ।

हे तपस्वीजी ! एक सराय में तीसरे पहर एक ब्रह्मचारी आगया पीछे और मुसाफिर धीरे २ आने लगे, सराय भर गई और सुबहको जाने लगे तब पहरदिन तक सब चलेगये, तब वह ब्रह्मचारी जो पहिले आया था वह अकेला ही रहगया तब सराय खाली देखकर शोक करने लगा । जैसे उसका शोक करना वृथा है, तैसे ही यह सराय

की तरह गृहस्थियों के घर हैं। सम्बन्धीरूपी मुसाफिर इकट्ठे होते हैं पहिले एक दो सम्बन्धीरूपी मुसाफिर इकट्ठे होते हैं, फिर पुत्र पौत्र मुसाफिरों से घर भर जाता है। फिर माता पिता मुसाफिर जाने लगते हैं, ऐसे सम्बन्धीरूपी मुसाफिरों का संयोग वियोग होता रहता है, याते मुसाफिरों की तरह बेटे का वियोग हुआ है, शोक करना वृथा है क्योंकि स्वप्न इन्द्रजाल की तरह यह सब संसार के व्यौहार हैं। अपना पूर्णस्वरूप ब्रह्म, अजर, अमर, अखण्ड, नित्य, चेतन, स्वयम् प्रकाश है। नामरूप सब कल्पित हैं, इसी विचार से हे तपस्वीजी हमारे को शोक नहीं हुआ।

राजा कहता है, हे तपस्वीजी! मोह के त्याग के लिये और विचार सुनो।

दोहा—बड़ा जाल यह मोह है, फसे जीव अनजान।
जिसके पुत्र निष्काम हैं, निकसे संत सुजान॥

भाव यह है—कि मोह करके सर्व जीव कष्ट पा रहे हैं। स्त्री पुत्र के मोह करके दूसरे के धन की चोरी करता है और कैद भोगता है मोह करके दूसरों की हिंसा करता है। स्त्री पुत्र धन के मोह करने से जीव अनेक पाप करता है और परलोक में नर्क भोगता है और कनिष्ठ योनियों को प्राप्त होता है और जिन्होंने पिछले जन्म में भजन नहीं किया और मोह आदि आसुरी गुणों से पाप कर्म करते हुयेअब वही जीव पशु, पक्षी, कीट बनकर दीख रहे हैं। पाप के फल से सर्प कीट आदि निकृष्ट योनियां पाता है मोह से धन की तृष्णा के प्रताप से मृत्यु भी याद नहीं रही और भगवान को भी भूल गया। मोह के प्रताप से धर्म से विमुख हुआ जीव कोई शुभ कर्म नहीं कर सकता। राग ही जीवों की मृत्यु है राग से रहित होना ही जीवन है

और मोहरूपी तेल का कढ़ाह तपा हुआ है, जिस में संसारी जीव मनुष्य, पशु, पक्षी आदि पड़े हुये दुख पारहे हैं अथवा स्त्री, पुत्र, धन के रागरूपी अग्नि में जल रहे हैं। इसलिये मोह से जीव छूट नहीं सकते कोई सन्त महात्मा ज्ञान से मोह का नाश करके मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं। मोह महा अन्धकाररूप है। विचार के नाश करनेहारा है। जिनके विवेक नहीं है सो पुरुष मोहे गये उनको परमार्थ भूल गया है जन्म भी दुखरूप है और वृद्ध अवस्था भी दुखरूप है पुनः पुनः मृत्यु भी दुखरूप है संसार सब दुखरूप है परन्तु आश्चर्य है मोह के वश होकर अज्ञानी जीव फिर भी संसार से प्रीति करते हैं। बारम्बार जन्म का दुख भोगते हैं और निकस नहीं सकते परन्तु कोई उत्तम पुरुष वैराग्य का अभ्यास करते हुये संसार की तृष्णा से रहित होकर बारम्बार सन्तोष को बढ़ाते हुये मोक्ष पद को प्राप्त हो जाते है।

दोहा—सार वस्तु इक धर्म है, धारे पुरुष सुजान।
सुख पावे इस लोक में, होय दूर अज्ञान॥

जैसे हरिश्चन्द्रराजा ने पापरूप मोह का त्याग किया है केवल धर्मपरायण होकर राज को धर्म में देदिया। और काशी में जाकर आप स्वयं धर्मार्थ बिकगया। स्त्री पुत्र को भी बेच दिया अपने शरीर की और अपने स्त्री, पुत्र और राज्य आदि सबकी प्रीति छोड़ दी परन्तु धर्म से प्रीति नहीं छोड़ी। केवल धर्म में प्रेम होने से हरिश्चन्द्र का कुल कुटुम्ब परिवारसहित स्वर्ग में सुख भोग रहा है इसलिये संसार से प्रीति छोड़ कर धर्म में प्रीति करनेवाले दोनों लोकों में सुख भोगते हैं और ज्ञान से मोक्ष पाते हैं।

जो पुरुष अपनी शक्ति से रोज ही अन्न का दान करते रहते हैं, और भगवान के नाम का जाप जपते रहते हैं वह सदा सुखी

रहते हैं क्योंकि अन्न का दान यज्ञ और जप यज्ञ जो भक्त रोज ही करते रहते हैं । उनके पाप नाश होने से दुख नाश हो जाते हैं, दुख नाश होने से सदा सुख की प्राप्ति बनी रहती है ।

दोहा—दुख देवे जो और को, भोगे दुःख जरूर ।
औरन को सुख देत जो, सुख भोगे भरपूर ॥

भाव यह है कि जो दूसरों को सुख देता है उसको स्वयं सुख मिलता है । जो दूसरे जीवों को दुख देता हैं वह स्वयम् दुख भोगता है इसलिये अपनी शक्ति के अनुसार दूसरों को सुख ही सुख देना चाहिये ।

दो०—बुरे वचन को त्याग के, धारे मधुर स्वभाव ।
रामनाम मन्त्र जपे, सहज मुक्ति हो जाय ॥

मन वाणी शरीर से किसी की हिंसा न करनी चाहिये । ये परम धर्म है । जैसे कि अग्नि में पैर रखने से भय होता है उसी तरह पाप से डरते हुये जो पाप नहीं करते वह पुण्यात्मा पुरुष कहे जाते है, पापकर्म के हृदय में दो संस्कार होते है । एक दुख होना, और दूसरा पापकर्म करने की वासना उदय होनी । जो पुरुष दुख को कर्म का फल जानकर भोगते हैं और पाप वासना को सत्सङ्ग अभ्यास से निवृत्त करते हैं उन पुरुषों के पाप तो नाश होते जाते हैं और वह पुण्यकर्म का फल सुख भोगते हैं । और जो पुण्य करने की वासना पैदा होने से पुण्यकर्म सत्सङ्ग द्वारा शीघ्र करलेते हैं उनके पुण्य पर्वत के समान बढ़जाते हैं तब उत्तमलोक में सुख भोगते हैं अथवा मोक्षपद को प्राप्त होते हैं ।

जो संसारी पुरुष सत्सङ्ग नहीं करते हैं उनके कुसङ्ग के प्रताप से पुण्यवासना नाश होती जाती हैं पाप वासना से पाप कर्म बढ़जाते

हैं जन्म २ के पिछले पाप की प्रेरणा से उसी पाप में लगे रहते हैं, जब पाप पर्वत के समान बढ़ जाते हैं, तब सर्प कीट आदि निकृष्ट योनियों को प्राप्त होते हैं अथवा नर्क भोगते हैं। तीर्थ यात्रा से, दान करने से, नाम जपने से सर्व पाप नाश होजाते हैं परन्तु मित्र-द्रोही का पाप नाश नहीं होता और जो पुरुष दूसरों को अपना मित्र बनाकर फिर उसका बुरा करता है ऐसा मित्रद्रोही पुरुष एक हज़ार चौकड़ी युगों तक नर्क भोगेगा। इसलिये उत्तम पुरुष पापों से भय करते हुये सत्सङ्ग द्वारा ऐसे पापों से बचजाते हैं इसलिये सत्सङ्ग भजन धर्म करते हुये उत्तम पुरुष मोह जन्य पापों से छूटकर दोनों लोकों में सुखी होते हैं। अथवा जो पुरुष दूसरे के कटुवाक्य सहन करता है और आप कटुवाक्य किसी को नहीं बोलता, और सत्य बचन मधुर बोलता है, और निष्काम राम का भजन करता है वह सहज ही मोक्ष हो जाता है अर्थात् वह सहज ही सर्व दुखों से छूट जाता है।

दोहा—अनेक पिछले पुण्य से, पाया मनुष्य शरीर।
याते पुण्य कमाय जो, सुख पावे सो धीर॥

भाव यह है—सेवा करके माता पिता को प्रसन्न करना चाहिये। बड़ो का कभी अपमान नहीं करना चाहिये। क्योंकि माता पिता तीर्थ के समान हैं इसलिये माता पिता की सेवा का महान पुण्य है। और गुरु सब से अधिक हैं, और गुरु की सेवा पूजन करने से ज्ञान द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होवे है। याते मन, वाणी, शरीर करके गुरु की सेवा करनी चाहिये और गुरु, शास्त्र की सदा आज्ञा में रहना चाहिये और विचार करके देखिये तो यह मनुष्य शरीर इन्द्रियां आदि से लेकर सब समाज इस जीव को पिछले बड़े पुण्य से मिला

है इसलिये मन आदि इन्द्रियों से पुण्य ही करना चाहिये जैसे बुद्धि पुण्य से मिली है, सदा ब्रह्म विचार ही करना चाहिये । अथवा धर्म का ही विचार करना चाहिये । बुद्धि से अधर्म का चिंतन कभी नहीं करना चाहिये, बोलने की शक्ति पुण्य से मिली है इसलिये सच बोलना, मधुर बचन बोलना, नाम जपना चाहिये । वाणी से झूठ, निन्दा, कटुवाक्य कभी नहीं बोलना चाहिये और देखने की शक्ति पुण्य से मिली है, नेत्रों से सन्तों के और मन्दिरों के दर्शन करने चाहिये और पर स्त्री को माता बहन के समान देखना चाहिये । कानों से शास्त्र का श्रवण करना और हरिकीर्तन का श्रवण करना चाहिये । किसी की निन्दा श्रवण नहीं करनी चाहिये । हाथों से दान करना, सेवा करके दूसरों को सुख देना चाहिये, हाथों से किसी को दुख न देना चाहिये । भगवानपरायण होकर पांव से तीर्थयात्रा करनी चाहिये और पांवों से चलकर खोटा कर्म नहीं करना चाहिये ।

धन भी पिछले पुण्य से मिला है धन को धर्म में लगाना चाहिये, धन को खोटी तरफ अधर्म में नहीं लगाना चाहिये क्यों कि जो सुख जीव को मिलता है पिछले पुण्य से मिलता है । जो जो दुख होता है पाप से होता है । इसलिये हे तपस्वीजी ! जो उत्तम पुरुष है वह शरीर इन्द्रियों से पापकर्म से बचकर पुण्य कर्म ही दिन रात संग्रह करते रहते हैं वह उत्तम पुरुष ज्ञान को पाकर मोह जाल से छूटकर परमपद को प्राप्त होते हैं । राजा कहता भया— हे तपस्वीजी ! ये संसार मिथ्या है ।

दोहा— मिथ्या सब संसार है, तीन ताप से ग्रास ।
निश्चय त्यागन योग है, जिज्ञासु रहे उदास ॥

भाव यह है :—कि यह कल्पित जगत तीनों तापों से ग्रसा

हुआ है सर्व प्रकार से त्यागने योग्य है, इसलिये उत्तम पुरुष संसार से उदासीन रहते हैं ।

दोहा—जब विचार कर देखिये, दुःख मूल अध्यास ।
नाशे ब्रह्मज्ञान से, पाये मोक्ष पद ख़ास ॥

भाव यह है—कि वास्तव में विचार कर देखिये तो शरीर का सम्बन्ध ही दुखों का कारण है । क्योंकि जैसे स्वप्न के शरीर के साथ जब सम्बन्ध होता है तब स्वप्न के सम्बन्धियों के साथ मोह खड़ा हो जाता है तब यह जीव शरीर आदि स्वप्न के सम्बन्धियों से मोह करके सम्बन्धियों के दुखों से दुखी होता है और क्षणमात्र में स्वप्न के संचित आदि कर्म खड़े हो जाते हैं और अनेक पाप पुण्य कर्मों का फल सुख दुख पाता है और अकस्मात से जागृत का बोध होता है तब स्वप्न शरीर के अभिमान निवृत्त होने से स्वप्न के शरीर आदि सम्बन्धियों के कल्पित दुखों से छूटजाता है तैसे ही अद्वैत स्वरूप सत्ता से सोया हुआ ये जीव देह में अभिमान करता हुआ देह के सम्बन्धी देखता है और देह सहित सम्बन्धियों का दुख ग्रहण करता है और स्वप्न की तरह क्षणमात्र में संचित क्रियमान आदि कर्म भी साथ भान होते हैं और मोह से पाप कर्म करता हुआ अनेक योनियों में दुखों को अनुभव करता है जब ब्रह्मरूपी जागृत का बोध होवे है तब अज्ञान की निवृत्ति से स्वप्न से जाग्रत की नाईं सर्व दुखों से छूट कर परमपद को प्राप्त होवे है । राजा कहता भया इसलिये अज्ञान कृत देह अध्यास ही दुखों का कारण है जैसे अग्नि के सम्बन्ध से शीतल जल भी तपायमान होजाता है । तैसे शरीर के सम्बन्ध से देह के तापों कर जीव तपायमान होता है और जैसे अचल लोहा भी चुम्बक पत्थर के सम्बन्ध से चञ्चल होजाता है, तैसे

अचल आत्मा में भी देह के सम्बन्ध से अज्ञान से दुखों का भान होने लगता है ।

देह जड़ है, आत्मा चेतन है, देह परछिन्न दुखरूप है आत्मा व्यापक सुखरूप है, देह विकारी है, आत्मा विकारों से रहित है, तो भी देह के सम्बन्ध से जीव अपने स्वरूप में दुखों का आरोप करके दुखी होवे है, वास्तव में देह और आत्मा का कुछ भी सम्बन्ध नहीं, परन्तु स्वप्न के दुखों की तरह अज्ञान कृत देह का अभिमान ही दुखों का कारण हैं, देह अध्यास की निवृत्ति अज्ञान की निवृत्ति से होवे है । अज्ञान की निवृत्ति स्वरूप के ज्ञान से होवे है स्वरूप का ज्ञान ब्रह्म विचार से होवे है ब्रह्म विचार ज्ञानवान की और सत शास्त्र की सङ्गत से होवे है । इस प्रकार ज्ञान से देह अध्यास की निवृत्ति से जीव मोक्ष होजाता है ।

दोहा—जागे जैसे स्वप्न से, त्यों स्वरूप का ज्ञान ।
सर्व दुखों से छूट के, पावे पद निर्वान ।।

भाव यह है—जब अद्वैत स्वरूप का बोध होवे है तब उसी क्षण में स्वप्न से जागे की तरह सर्व देह आदि कल्पित बन्धनों से और तापों से छूट जावे है । ना मेरी देह है, ना मैं देह हूँ, मैं बोध स्वरूप दृष्टा पूर्ण चेतन हूँ, ऐसे विचार होने से ग्रंथी की निवृत्ति होवे है तब अन्तःकरण मोह, शोक, धर्मों के सहित निवृत्त होवे है ना अपनी देह है ना और की देह है, देह आदि जगत साक्षी दृष्टा में कल्पित होने से आत्मा का ही स्वरूप है इसलिये आत्मा ही अपनी महिमा में स्थित है और कुछ नहीं ऐसा विचार जिस क्षण में होवे है उसी क्षण में प्रछिन्न अहङ्कार की निवृत्ति से कल्पित संचित आदि कर्म भी निवृत्त होवें हैं और जन्म मरण आदि के भय

से रहित होकर निर्भय होवे है इसलिये अनेक युक्तियों से विचार ही सदा करना चाहिये । ब्रह्मविचार करने से शीघ्र पाप नाश होते हैं जैसे सूर्य के उदय से अन्धकार नाश हो जाता है ।

विचार से ही अद्वैत स्वरूप अपरोक्ष होवे है और द्वैत का अत्यन्त अभाव होवे है फिर दुखरूप संसार खड़ा होवे नहीं इसलिये हे तपस्वीजी ! समता का बारम्बार अभ्यास करने से अधिष्ठान में जगत का मिथ्या निश्चय रूप बाध होने से ज्ञान के प्रताप से वासना से रहित होकर सर्व आशा को पीठ देकर निरासता से सन्मुख होना ही योग का और ज्ञान का फल है । ऐसी परम शान्ति को पाकर देह आदि सम्बन्धियों के तापरूप दुखों से हम तपायमान होते नहीं । क्योंकि पदार्थों में मिथ्या भावना करने से मोह होवे नहीं, मोह के न होने से इष्ट पदार्थों के और सम्बन्धियों के वियोग से तपायमान होवे नहीं इस प्रकार तपस्वी से राजा कहता है, हमारे को बेटे की मृत्यु सुनकर विचार से मोह शोक हुआ नहीं, जैसे स्वप्न से जागे पुरुष को स्वप्न के इष्ट अनिष्ट पदार्थों में राग द्वेष होवे नहीं, तैसे हमारे को अद्वैत स्वरूप के बोधरूप जागृत से हर्ष शोक हुआ नहीं । इस प्रकार राजा का विचार सुन कर तपस्वी बड़ा प्रसन्न होता भया । तब तपस्वी धन धन करता हुआ लड़के के भाई के पास जाता भया । तपस्वी मन में विचारता हुआ कि भाई की मृत्यु सुनकर भाई को अवश्य मोह शोक होता है, इससे भाई की परीक्षा करनी चाहिये तब भाई के पास आकर कहने लगा ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—सुनो राजकुमार तुम, अचरज की एक बात ।
टूटो भुज तुम आज एक, हते सिंह बन भ्रात ॥

अर्थ—हे राजपुत्र ! अचरज की बात तेरे को सुनाता हूँ, तुम्हारी आज दिन एक भुजा टूट गई क्योंकि बन के बीच शेर ने तुम्हारे भाई को मार डाला है ।

॥ भाई का वचन ॥

दोहा—भाई भये अनन्त मम, कितने पीछे तात ।
शोक करूं मैं कौन का, स्वप्ने सम जग जात ॥

अर्थ—हे तपस्वीजी ! पिछले जन्म में कितने ही भाई छोड़ कर आया हूँ काहेते सुपने के समान सब जगत नाश हो जाता है मिथ्या शरीरों का संयोग वियोग अवश्य होता है, हे तपस्वीजी ! इस पर उदाहरण सुनो जिसके सुनते ही मोह शोक नाश होवे है । एक आम का वृक्ष फलों से भरा हुआ था, जो आंधी ज़ोर की चली तब आधे फल गिर पड़े और आधे खड़े रहे । तब उन गिरे हुये फलों में से एक फल वियोग से बोलता भया ।

दोहा—फल गिरंता यह कहे, सुन तरूवर बन राय ।
अबके बिछुड़े कब मिलें, करे न कोई सहाय ॥

अर्थ—फल वृक्ष को कहता भया, हे पिता तेरे से बिछुड़ा हुआ काल के मुख में अपने को देखता हूँ । पशु मनुष्य, पक्षी, जो कोई मेरे पास आवेगा मेरा नाश ही करेगा । मनुष्य तो चूस चूस कर ही खतम करेंगे, पक्षी टूंक टूंक कर मेरे को खतम करेंगे । और पशु तो एक बार ही मेरे को मुख में रख कर नाश करेंगे । इससे मैं काल के मुख में अपने को देख कर रुदन करता हूँ ।

दोहा—आगे तरुवर बोलता, यह सब जगत सराय ।
संयोग बिछोड़ा होत है, कर्म न मेंटा जाय ॥

अर्थ—वृक्ष कहता भया हे बेटा ! यह जगत मुसाफिरों की तरह सराय है, जहां २ संयोग होता है वहां वहां बिछोड़ा भी अवश्य होता है । बाप बेटे का, स्त्री पुरुष का, भाई भाई का, अवश्य एक दिन बिछोड़ा होता है । इसी प्रकार परमात्मा पिता से बिछुड़े हुये यह जीव सभी काल के मुख में हैं । जो भजन कर के परमात्मा के साथ मिल जाता है वह काल से बच जाता है । जो जीव परमात्मा से बिछुड़े हुये दीखते हैं सभी काल के मुख में हैं । वृक्ष फल को कहता भया—हे प्यारे पिछले जन्म भी हम तुम दोनों का मनुष्य के शरीर में बाप बेटे का संयोग था मगर वहां भी काल के वश से हम दोनों का वियोग होता भया । परन्तु मनुष्य जन्म दुर्लभ, मिला भी मगर व्यौवहार की तृष्णा के प्रताप से सारी आयु पापकर्म ही करते रहे और सोने, खाने में ही लगे रहे, झूठे कुटुम्ब के मोह से पाप बढ़ गये, पुण्य, धर्म कुछ भी न हुआ । इससे हम तुम दोनों वृक्ष योनि में प्राप्त हुये हैं । और पूर्व संस्कारों के बल से हमारा संयोग होके अब फिर वियोग हुआ है । अब हम तुम दोनों को याद रखना चाहिये जब फिर मनुष्य जन्म मिले तो सावधान हो कर भगवान का ही भजन करना चाहिये । जिस कर काल से बचकर परमानन्द की प्राप्ति होवे और सर्प, कीट, वृक्ष, पशु इत्यादि खोटी योनियों से अपने दोनों का कल्याण होवे ।

परमात्मा का भजन करना और सन्तों की सङ्गत से ही दुख योनियों से जीव छूटता है, और कोई उपाय छूटने का नहीं है सत्संग ही सुख का मूल है और जो मूर्ख जीव भजन, सत्संग और धर्म से विमुख हैं वह इस लोक में भी दुख पाते हैं और परलोक में नर्क भोगते हैं । पापकर्म करनेवाले को खोटी योनियां मिलती हैं, और

जो उत्तम पुरुष हैं वह तृष्णा से रहित सन्तोषवान हैं और धर्म-परायण रहते हैं। वह ज्ञान को पाकर मुक्त होजावेंगे, खोटी योनियों से उनका कल्याण होवेगा। ऐसे पुरुष जगत में धन्य हैं। ऐसा विचार आम का वृक्ष अपने बेटे फल को कहता भया तब फल सुनकर धीरज को पाकर शांति को प्राप्त हुआ।

भाई कहता भया हे तपस्वीजी! इतनी देर में वृक्ष के नीचे एक मुसाफिर आगया वह फलों के वियोग की हालत देख कर बहुत अफसोस करता हुआ कहने लगा कि जितने गिरे हुये फल हैं यह दूसरे भाईयों से बिछुड़ गये हैं अब इनका मेल नहीं होगा। गिरे हुये फलों को जीव खालेवेंगे। ऐसे मोह करता हुआ वह मुसाफिर शोक को प्राप्त हुआ।

हे तपस्वीजी! जैसे मुसाफिर का शोक करना वृथा है, तैसे मेरे को भाई का शोक करना वृथा है। मायारूपी वृक्ष के साथ अनन्त शरीररूपी फल लगे हुये हैं, कर्मरूपी वायु से कई शरीर गिर जाते हैं। कहीं कर्मरूपी वायु से पृथ्वी पर शरीर भ्रमते दीखते हैं। हे तपस्वीजी! विचार कर के देखिये तो अहंकार ही सब जीवों को जन्म मरणरूपी क्लेश को प्राप्त कर रहा है सो अहंकार की निवृत्ति भजन और विचार से होवे है सो विचार यह है इस जगत में जीव को जो २ दुख होवे हैं सो अपने पाप का फल है, और जो २ सुख होवे हैं सो अपने पुण्य का फल है। पाप पुण्य से भिन्न कोई भी पदार्थ जीव को सुख देनेवाला नहीं है। याते पुण्य पापकर्म के अनुसार ईश्वर ही फल देवे है। जो कुछ लाभ अलाभ, मान अपमान, सुख दुख सब व्यवहार ईश्वर की आज्ञा से होते हैं। कोई भी जीव अपने आप व्यवहार नहीं कर सकता। वाणी का

बोलना और चुप करना भी हुक्म बिना होवे नहीं, तो और व्यवहार जीव अपने आप कैसे कर सकता है ?

दोहा—जीव काठ की पुतलियाँ, करमों रूपी तार ।
ईश्वर खूब नचावता, प्रारब्ध के अनुसार ॥

भाव यह है—जैसे काठ की पुतलियां तार से चेष्टा करती हैं, तैसे सब ईश्वर के हुक्म से चेष्टा करते हैं और जैसे मिट्टी के पिंड से घड़े बनते हैं तैसे पुन्न पाप कर्मों के पिंडरूपी मिट्टी से शरीर बनते हैं । याते जन्म मरण चौरासी के चक्कर में जीव भ्रमते फिरते हैं । इसलिये मनुष्य सब प्राणधारी देवता, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि सब प्राणी ईश्वर के हुक्म से भ्रमण करते हैं—हे तपस्वीजी ! इस प्रकार भजन और विचार जब जीव करते हैं तब अहंकार की निवृत्ति से दोनों लोकों में सुखी होवें हैं । क्योंकि काम क्रोध आदि विकारों के अभाव होने से राग-द्वेष, जन्म-मरण आदि दुखों की निवृत्ति होवे है ।

अर्थात् ज्ञान द्वारा मुक्तिपद को प्राप्त होते हैं, और जो देह अभिमानी जीव हैं वह पापों को ही कमाते रहते हैं, जैसे चूहा मिट्टी खोदकर ढेर लगा देता है तब साथ के साथ बिल बनती जाती है, तैसे जो जीव पापरूपी मिट्टी जमा करते हैं तब साथ के साथ दुखरूपी बिल भी बनती जाती हैं । और जो विषय भोगों की तृष्णा है वही पाप है और धन की अधिक तृष्णा करने से प्रारब्ध कम ज्यादा होवे नहीं धन के दान करने से धन बढ़े है जैसे नौका में पानी पड़ने से मल्लाह जल्दी दोनों हाथों से पानी निकालता है, कि नौका डूब न जाय, तैसे ही चतुर पुरुष जब धन बढ़ता देखते हैं, तब शीघ्र ही दोनों हाथों से धन को धर्म में लगाते हैं, कि धन नष्ट न हो जाय !

याते हरएक पुरुष को धन धर्म में लगाते रहना चाहिये । अथवा जैसे जिस कोठे में पतनाला न हो, वो कोठा गिर जाता है । तैसे ही धन के संग्रह में दान करना पतनाला है। जैसे कूप का पानी निकालने से निर्मल होवे है, और साथ ही साथ कूप में पानी भी बढ़े है ।

तैसे ही दान करने से धन बढ़े है याते धनी पुरुषों को धन का दान करना चाहिये । और जैसे लोहे का तवा तपा हुआ चूल्हे से उतार कर अलग रखने से ठण्डा होवे है, तैसे ही मन व्यौहार की अग्नि कर तपा हुआ एकान्त में बैठकर भजन करने से शान्त और सात्विक होवे है । अथवा जैसे ही गँदली नदी से जल का घड़ा भरकर अलग रखने से वह जल निर्मल होवे है तैसे ही मन भी व्यौहारों से अलग होकर एकान्त में भजन करने से शीघ्र ही रजो तमो से रहित होकर सतो गुणी और निर्मल होवे हैं । और सच बोलने से धर्म उत्पन्न होता है और दया करने से धर्म बढ़ता है और क्षमा से धर्म की रक्षा होती है, और क्रोध से धर्म का नाश हो जाता है। याते क्रोध नहीं करना चाहिये, सच दया क्षमा का ही सेवन करना चाहिये ।

जो किसी के ऊपर उपकार करता है, तिसको सौ यज्ञों का पुण्य मिलता है जैसे हज़ार गऊओं में बछड़ा अपनी माता के पास ही जाता है, तैसे जिसने पुण्य किया है, उसको ही उसका फल सुख प्राप्त होता है और को सुख नहीं मिलता । और विचार यह है कि जो कोई कुटिया बनवावे उसको दस हज़ार वर्ष स्वर्ग सुख मिलता है याते भाई कहता भया, हे तपस्वीजी ! इस प्रकार उपकार करने के अनेक तरह के पुण्य के फल शास्त्र में लिखे हैं सो सब ठीक हैं। इसलिये शरीर से, धन से, बुद्धि से, परोपकार ही करना चाहिये ।

काहे ते जीव को शरीर की धन की बुद्धि की शक्ति ईश्वर ने परोपकार करने के लिये दी है । याते सदा परोपकार ही करना चाहिये । और जैसे नदी अपने जल को आप भक्षण नहीं करती औरों को ही अपने जल से सुख देवे है । और जैसे वृक्ष अपने फल को आप भक्षण नहीं करते, औरों को ही अपने फल से तृप्ति करे हैं। तैसे ही उत्तम पुरुष अपने धन से औरों को सुख देवें हैं। याते हे तपस्वीजी ! किंचित परोपकार भी पुरुष से हो जावे तो वह पुरुष महान फल को प्राप्त होवे है ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

हे राजपुत्र :—किंचित परोपकार हो जाने से महान फल होवे है । इसमें कोई उदाहरण कहो ।

॥ भाई का वचन ॥

हे तपस्वीजी :—एक पुरुष रास्ते में जा रहा था—उसको आगे रास्ते में कीचड़ की नाली आगई—तब उस पुरुष ने एक पत्थर नाली पर धर दीया । उस पत्थर पर पाँव रख कर नाली से पार होकर चला गया। तब और लोग भी उस रास्ते के जाने वाले उस पत्थर पर पाँव धर कर नाली से पार सुखपूर्वक जाने लगे । लोगों को उस नाली से गुजरने का बड़ा सुख हो गया । तब जिस पुरुष ने कीच की नाली पर पत्थर धरा था, वह मृत्यु होता भया । तब धर्मराज के पास उसको यमदूत ले गये । धर्मराज ने उसका हिसाब देखा तो उस पुरुष ने सारी उम्र में कोई पुण्य नहीं किया । मगर उस कीच की नाली में पत्थर धरने के उपकार का पुण्य इतना महान फैला हुआ था कि धर्म राजने यह हुक्म दिया कि इस पुरुष से जो किंचित मात्र परोपकार हुआ है उस पुण्य का

फल इस पुरुष को पांच हजार वर्ष स्वर्ग में ले जाओ । तब भाई कहता भया । हे तपस्वीजी ! इस प्रकार किंचित परोपकार करने के पुण्य का फल उस पुरुष को पांच हजार वर्ष का स्वर्ग सुख मिला। इसलिये हर एक पुरुष को परोपकार ही करना चाहिये ।

हे तपस्वीजी ! सेवा करके प्राणधारियों को सुख देना महान फल को प्राप्त होवे है । प्रारब्ध उपाधी के निवृत्त होने से धन आदि ऐश्वर्य नहीं रहे । याते अज्ञान बस संसारी जीव धन को सत जान कर अभिमान करके बंधायमान होते हैं । और पुण्य क्षीण होने से धन नाश हो जावे है याते धन आदि ऐश्वर्य सब मिथ्या है और ज्ञान–वान धन आदि ऐश्वर्य को स्वप्न की नाई मिथ्या जान कर अभिमान नहीं करते । याते ज्ञान–वान बन्धन से रहित मोक्ष हो जाते हैं । और जानते हैं कि जो कुछ कर्म की रेखा है, उसको तो ब्रह्मा भी नहीं मिटा सकता । यदि चन्द्रमा तप्त होजावे तो हो जावे, और अग्नि शीतल हो जावे तो हो जावे और सुमेरु पर्वत भी चलायमान हो जावे, परन्तु जीवों के कर्म की रेखा कभी भी चलायमान नहीं हो सकती । याते जीव के अधीन कुछ नहीं, कर्म का चक्कर चलता ही रहता है । इसलिये व्यवहारों को प्रारब्ध पर छोड़कर पुण्य ही इकट्ठे करने चाहिये ।

व्यासजी कथन करते है–कि राजा नल युधिष्ठिर रामचन्द्रजी कर्म के फल को भोगते भये तो और जीवों की क्या शक्ति है जो कर्मों को निवारण कर सके याते कर्म के भुगत जाने से शोक नहीं करना चाहिये ! शोक से पापों की वृद्धि होती है अर्थात् पाप बढ़ते हैं—और मृत्यु के समय जो रोते हैं, उनके नेत्रों से, मुख से जो जल की बूँदें गिरती हैं उन गिरी हुई बूँदों को जो मृत्यु

हुआ है उसका प्रेत बन कर ग्रहण करनी पड़ती हैं याते रोना नहीं चाहिये शोक त्याग करके उसकी क्रिया कर्म करना और उसके निमित्त दान पाठ भजन करना चाहिये जिसकर उसका कल्याण होवे ! और पिछले सम्बन्धियों को भी शान्ति मिले मन वाणी शरीर करके किसी की हिंसा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि अहिंसा ही भारी तप है और अहिंसा ही परम तीर्थ है । और दूसरे का दुख दिया हुआ सहन करना, ऐसी परम शांतिरूप क्षमा को धारण करना चाहिये । ये क्षमा ही परम यज्ञ है और क्षमा ही परम तेज है । इस प्रकार जब काम क्रोध आदि के वेग को सहन करता है तब महान सुख की प्राप्ति होवे है । क्षमा से ही समाधि विचार की वृद्धि होवे है, क्षमा से क्रोध नाश होवे है । क्षमा से धर्म की रक्षा होवे है, क्षमा ही तपस्वियों का तप है, क्षमा से परब्रह्म की प्राप्ति होवे है । और शास्त्र में ऐसा लिखा है, जो किसी को सुख देवे है सो तिसके सुख को लेवे है और जो किसी को दुख देवे है सो तिसके दुख को लेवे है और जो पुरुष धर्म का नाश करता है उस पुण्य का वही धर्म उसकी रक्षा करता है । याते सम्बन्धियों का मोह छोड़कर धर्म ही करना चाहिये । क्योंकि धन, पुत्र आदि कोई भी परलोक में सहायता नहीं करेंगे । याते अपने कल्याण के वास्ते निष्काम भजन, धर्म आदि करने चाहिये ! अपने अमूल्य स्वांसरूपी रत्नों को वृथा विषयों में नहीं खोना चाहिये क्योंकि—

दोहा—जीव को घाटा रोज़ का, चोबीस हज़ार स्वास ।
सो बनजारा रोवता, पैदल कुछ ना पास ॥

भाव ये है—जिस जीवरूपी व्यौपारी के चौबीस हजार स्वांस नाम से खाली जाते हैं, अर्थात् नाम से भूलकर धन की तृष्णा से

रात दिन व्यवहारों में लगा रहता है ऐसे झूठे व्यौपार में लगे हुये व्यापारी को अन्त में पश्चात्ताप करके रोना पड़ेगा ।

दोहा—जो बनजारा रातदिन, जपे हरी का नाम ।
इतनी पैदा रोज़ की, नासे दुःख तमाम ॥

भाव यह है—जो जीवरूपी व्यौपारी दिन रात नाम जपता है तिस व्यापारी को इतना नफ़ा रोज़ होने से वह सब दुखों से रहित होकर दोनों लोक में महान सुखी होवे है ।

भाई कहता भया—हे तपस्वीजी ! एक और उदाहरण सुनो । एक वृद्ध माई का एक ही जवान बेटा था, और वह मृत्यु हो गया, तब उसके वियोग से माई बड़ी दुखी रहे । एक समय बाहर कुटिया पर एक महात्मा आगये । तब उस माई ने शोक की निवृत्ति वास्ते महात्मा के पास जाकर प्रार्थना की । हे तपस्वीजी ! हे स्वामीजी ! मेरा एक ही जवान पुत्र था, वह मृत्यु हो गया है अब उस के वियोग से मैं दिन रात दुखी रहती हूँ कृपा करके मेरा शोक दूर कीजिये । तब महात्मा ने मन में युक्ति विचार कर उस माई को कहा कि जिस घर का कोई भी मृत्यु न हुआ हो उस घर से एक पाव भर जल लेआ । हम तुम्हारे लिये जल मन्त्र देंगे, तुम वह जल पीलेना, तब तुम्हारा शोक दूर हो जावेगा ।

तब माई कटोरा लेकर सभी घरों में फिरी, परन्तु ऐसा घर कोई न मिला जिस घर का कोई भी सम्बन्धी भाई, पुत्र आदि न मरा हो । अर्थात् किसी के दो सम्बन्धी, किसी के चार, किसी के दस भाई पुत्र आदि मृत्यु हुये हैं । तब माई सब घरों से कटोरा खाली लेकर वापिस आकर महात्मा से कहने लगी । महाराज ! ऐसा घर कोई नहीं जिस घर में कोई भी मृत्यु न हुआ हो । तब महात्मा

ने कहा तेरे को रात दिन भगवान का भजन करना चाहिये, जिस कर तेरे बेटे का भी कल्याण होवे और तुम्हारे को भी शान्ति की प्राप्ति होवे । जब सब घरों में ऐसी ही मृत्यु से जीवों के पिता, पुत्र, पति, स्त्री आदि सम्बन्धियों का वियोग होता ही रहता है । तो तेरे बेटे की भी मृत्यु होनी ही थी, तू भी पुत्र के वियोग में शोक मत कर, तब माई इस विचार से सब घरों में जीवों के भाई पिता पुत्र आदि की मृत्यु को जानती हुई शोक से रहित होकर अपने कल्याण की वास्ते भगवान् का भजन करने लगी ।

भजन के प्रताप से दुख चिन्ता से रहित होकर माई शान्ति को प्राप्त होती भई । हे तपस्वीजी ! ऐसे विचार से हमारे को मोह शोक नहीं हुआ । तब तपस्वी धन धन करता हुआ उसके मित्र के पास जाता भया और मन में विचार करता हुआ कि मित्र को मित्र की मृत्यु सुनकर ज़रुर मोह होगा, इससे मित्र की परीक्षा जरुर करनी चाहिये । तपस्वी मित्र के पास जाकर मित्र को कहता भया :—

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—मित्र तुम्हारा हत भया, सुत सिंहनी के हाथ ।
भया अनर्थ यह आज ही, कांपत है मम गात ॥

अर्थ—तपस्वी मित्र को कहता भया, जंगल में शेरनी के बेटे शेर ने तुम्हारे मित्र को मार डाला है, यह आज ही अनर्थ हुआ है । ऐसा आश्चर्य देखकर मेरा शरीर तो काँपता है ।

॥ मित्र का उत्तर ॥

दोहा—मित्र मुआ तो भला हुआ, गया स्वर्ग में खास ।
हम तुम सब ही जांयगे, सब जग काल ग्रास ॥

अर्थ— यह सब जंगत काल का ग्रास है, जो दीखते हैं सब काल के मुख में हैं, कोई काल से नहीं बचेगा, हमारा मित्र तो भक्त था मुक्त हुआ है अथवा वह खासकर के स्वर्ग में गया है। जैसे पुराना वस्त्र त्याग कर नया वस्त्र मिलजाने से खुशी होवे है। बहुत अच्छा हुआ हम भी उसको जा मिलेंगे हे तपस्वीजी! तुम शोक मत करो।

॥ तपस्वी का वचन ॥

तपस्वी कहता भया—ऐसे प्यारे मित्र की मृत्यु सुन कर तुमने शोक नहीं किया, तुम्हारा प्रेम झूठा है। मित्र कहता भया—'हे तपस्वीजी! आप एक उदाहरण सुनो जिसके सुनते ही मोह, शोक नष्ट होजावे हैं। जैसे रहट में बाल्टी होती हैं वह चक्कर लगाती रहती हैं, कभी नीचे कभी ऊपर। नीचे से जल भरकर आती हैं, ऊपर आकर खाली होजाती हैं और जिस बाल्टी की रस्सी टूट जाती है वह अगाध जल में लीन हो जाती है, और चक्कर से छूट जाती है तैसे ही यह जीवरूपी बाल्टी भी कर्मरूपी रस्सी से बंधा हुआ जन्म-मरणरूपी चौरासी के चक्कर में पड़ कर भ्रमता रहता है। जिस पुरुष को गुरु कृपा द्वारा ज्ञान होने से वासना नष्ट हो गई हैं वह कर्मरूपी रस्सी के टूटने से जीवरूपी बाल्टी अपने ब्रह्मरूपी अगाध जल में लीन होवे है अर्थात् जन्म, मरण चौरासी के चक्कर से छूट जावे है। और हे तपस्वीजी दूसरा उदाहरण सुनो।

एक सन्त शहर में भिक्षा लेने को गया, एक माई दाने पीस रही थी उसको देखकर सन्त रोनेलगा, और लोग इकट्ठे हो गये लोगों ने पूछा—'सन्तजी क्यों रोते हो?' तब सन्त कहता भया—'जैसे यह माई दाने पीस रही है, तैसे भगवान की कालरूपी चक्की बड़े ज़ोर से चलरही है तिसमें जीवरूपी दाने पीस २ कर नाश होते चले

जारहे हैं, कालरूपी चक्की मृत्यु को प्राप्त कर रही है सब जीवों को खतम कर लेवेगी किसी को भी नहीं छोड़ेगी इस कारण से मैं भयभीत होकर रोता हूँ,' तब इतने में सन्त का गुरु ऊपर से आ गया। उसने चेले की हालत देख कर कहा कि हे-'शिष्य! जैसे चक्की की कीली के आसपास जो दाने आ जाते हैं वह दाने बच जाते हैं, तैसे ही जो जीव भगवान की शरण में आ जाते हैं वह काल से बच जाते हैं, तैसे हे शिष्य! तू और भगवान् की शरण में आये हुये हैं अपना असल जो चेतनस्वरूप है तिसकी काल कुछ हानि नहीं कर सकता, तू रुदन मतकर।' तब उस सन्त का मन शांत हुआ और गुरु के साथ अपने आश्रम को चला गया।

मित्र कहता भया—'हे तपस्वीजी! जड़ शरीर के विनाश से आत्मा की कुछ भी हानि नहीं होती, जिन पुरुषों ने आत्म भगवान की शरण ली है वह अमर हो जाते हैं। हमारी मित्र की सदा आत्म भगवान् में स्थिति है, याते चेतनस्वरूप की काल से कभी हानि नहीं हो सकती, याते हमारा मित्र जीता है। हे तपस्वीजी! तुम शोक मत करो अथवा हे तपस्वीजी! भगवान् भक्तवत्सल हैं जो जीव भगवान् की शरण में आ जाता है उसकी भगवान् काल संकट से रक्षा कर लेते हैं। किसी समय एक मृगी को बन में कष्ट पड़ा तिसकी पुकार सुनकर तत्काल ही मृत्यु से भगवान ने उसकी रक्षा करी।

॥ तपस्वी का वचन ॥

हे मित्र! किस प्रकार मृगी को कष्ट पड़ा और कैसे भगवान ने मृगी की रक्षा करी सम्पूर्ण वृत्तान्त कहिये।

मित्र का वचन ॥

दोहा—मृगी देखी एक बन में, गर्भ दिनन परमान ।
हर्षित व्याध होइ है, साध्यो सारङ्ग बान ॥

चौपाई

पश्चिम दिशा जाल को लायो, उत्तरदिशा सो अनल लगायो ।
पूरब दिशा श्वान दृढ़ कीनो, दक्षिण दिशा खेंचि शर लीनो ॥
चारों दिशा मृगी फिर आई, कोई दिशा विहीन न पाई ।
पश्चिम गई जाल में फँसे, उत्तर जाय अग्नि में जले ॥
पूरब गमने श्वान पछारे, दक्षिण गई अधिक मोहि मारे ।
प्रसूतकाल भी निकटे आन्यो, उदर मांहि सो बिथा जान्यो ॥
कृष्ण हरे मृगी ये भाखे, दीनबन्धु बिन कोई ना राखे ।
तृण वन चरूं करूं जल पाना, अपनो मांस प्रिय सब जाना ॥
अहो कृष्ण ! सन्तन सुखकारी, दयासिन्धु मैं शरण तिहारी ।
अब तुम दया करो जगनायक, ये हि अवसर प्रभु होउ सहायक ॥

दोहा—घूमत है मन भँवर में, दुख की नदी अथाह ।
चहुँ ओर संकट पर्‌यो, प्रभु जी करो सहाय ॥

जब इस भांति मृगी अकुलानी, दीनबन्धु यह रचना ठानी ।
बन में मेघ घुमर कर आयौ, वर्षा नीर तब अनल बुझायो ॥
पवन ज़ोर से जाल उड़ायो, बाध झपट श्वान को खायो ।
ओले बरष व्याध सिर परियो, चहुं और प्रभु रक्षा करियो ॥

दोहा—बरषे ओले व्याध सिर, झट निकसे तिस प्रान ।
अनाथ नाथ रक्षा करी, आई शरण भगवान् ॥

भाव ये है—तपस्वी को मित्र कहता भया, एक मृगी हमने बन में देखी थी जिसका शरीर दुबला था और गर्भवती थी तिसके

मारने को व्याध ने चारों दिशा रोकलीनी । पच्छिम दिशा में जाल को लगा दिया, उत्तर दिशा में अग्नि लगादी, पूर्वदिशा में कुत्ता खड़ा कर दिया, दक्षिण दिशा में व्याध बान खैंच कर आप खड़ा हो गया । मृगी बेचारी चारों दिशा फिर आई कोई स्थान निकलने को नहीं मिला जहाँ से निकल जावे तब मृगी विचार करती भई, कि प्रसूतकाल भी निकट आगया है । पेट में पीडा होरही है, इस प्रकार मृगी अति दुखी होकर अपने को काल के मुख में देखती हुई, केवल भगवान की शरण होकर पुकार करती भई ।

हे कृष्ण भगवान्! मेरी रक्षा कीजिये मैं अनाथ आपकी शरण हूँ मेरा दुर्बल शरीर है । बन में घास खाकर जलपान करती हूँ सब लोग अपने शरीर को प्रिय जानकर हमारे मांस खाने की इच्छा करते हैं । हे जगत के स्वामी! मेरे ऊपर दया करो हमारा संकट निवृत्त करो । इस प्रकार मृगी दुख की नदी में डूबती हुई पुकार करती भई । तब दीनबन्धु भगवान् पूर्ण अविनाशी, घट घट बासी, ने ऐसी रचना रची, उसी समय वर्षा होने लगी, जिससे अग्नि शांत हो गई और वायु जोर से चली, तब जाल उड़गया और व्याध के सिर पर ओले बरसने लगे, व्याध मृत्यु हो गया और एक बघेरा आया वह कुत्ते को मार कर चला गया । इस प्रकार चारों तरफ से मृगी की भगवान ने काल संकट से रक्षा करी । तब मृगी भगवान का धन्यवाद करती हुई प्रसन्न होकर बन में रहने लगी ।

तब मित्र कहता भया—'हे तपस्वीजी! जो प्राणधारी जीव भगवान की शरण में आ जाता है, अनाथों के नाथ भगवान उनकी काल संकट से रक्षा करते हैं । याते हे तपस्वीजी! आर्त्तभक्त के प्रेम से सर्व पाप क्षणमात्र में नाश हो जाते हैं । जैसे गज की पुकार सुनकर

भगवान ने क्षणमात्र में सर्व पाप नाश कर दिये । और गज की ग्राह से रक्षा करी । याते हे तपस्वीजी ! जैसे अग्नि से ईंधन का ढेर क्षणमात्र में जलजावे है, तैसे प्रेमरूपी अग्नि से सर्व पाप नाश हो जावे हैं । जैसे साबुन से मैल नाश होवे है, तैसे प्रेम से पाप नाश होवें हैं। ज़ैसे जल के प्रवाह से पृथ्वी का कीच मैला साफ हो जावे हैं, तैसे प्रेम के प्रवाह से क्षणमात्र में सर्व पाप नाश होजावें हैं। और जैसे प्रकाश से अन्धकार का क्षणमात्र में नाश होजावे है, तैसे प्रेमरूपी प्रकाश से क्षणमात्र में पापरूपी अधकार निवृत्त हो जावे है। याते हे तपस्वीजी ! भगवान की शरण हो कर भगवान में प्रेम बढ़ाना चाहिये ।'

॥ तपस्वी का वचन ॥

हे मित्र ! कोई और उदाहरण सुनाइये, किस प्रकार ईश्वर शरण होकर 'प्रेम' से सर्व पाप क्षणमात्र में नाश हो जाते हैं।

॥ मित्र का वचन ॥

हे तपस्वीजी ! एक बड़ा भारी तपस्वी था । कैसा तप कर रहा था कि जिसके पांव ऊपर और सिर नीचे था । और वृक्ष के साथ बंधा हुआ था । एक रोज गोपियां भगवान कृष्णचन्द्रजी के दर्शन के लिये जा रही थीं। तपस्वी ने कहा कि—'हे देवियो।' हमारी भगवान के आगे विनती कर देना कि हमारी मुक्ति कब होवेगी ?' तब गोपियों ने भगवान का दर्शन कर पुनः तपस्वी की तरफ से भगवान के आगे बिनती करी, तब भगवान बोले कि—'बीस लाख वर्ष ऐसा ही तप करता रहेगा तब मुक्ति पद उस तपस्वी को मिलेगा तब वह गोपियां विचार करने लगींकि तपस्वी को भगवान का हुक्म सुना दिया तो तपस्वी मृत्यु हो जावेगा। ऐसा विचार कर तपस्वी से

थोडी दूर होकर जा रही थीं। तब तपस्वी ने उन्हें देखकर कहा कि–'हे देवियो ! हमारे वास्ते भगवान ने कैसे हुक्म दिया है तब गोपियां कहने लगीं। आपके वास्ते भगवान ने बड़ा सख्त हुक्म दिया है इस लिये आपको नहीं बताया। तब तपस्वी कहने लगा–'हे देवियो ! जो कुछ हमारे लिये हुक्म हुआ है सो बता दीजिये।' तब गोपियां कहने लगीं कि–बीस लाख वर्ष ऐसा ही तप करता रहेगा तब मुक्ति होवेगी। ऐसा भगवान का हुक्म हुआ है।' तब तपस्वी सुन कर अति प्रसन्न होने लगा। और शरीर में खुशी का जोश आजाने से तपस्वी के शरीर के सर्व बन्धन टूट गये और पृथ्वी पर कूदने लगा और भगवान के गुणानुवाद गायन करता हुआ महान प्रसन्नता से कहने लगा 'बड़ा आनन्द हुआ कि मुक्तिपद मिलने का हुक्म तो हो गया। और हमारे को करोड़ों कल्प कनिष्ठ योनियां सर्प आदि में और बड़े २ भयानक मृत्यु के दुखों को भोगते २ बीत गये। यह तो कुछ भी बात नहीं है, मैं बड़ी खुशी से ऐसा ही तप बीस लाख वर्ष भगवान की आज्ञा से ज़रूर करूंगा।' तब भगवान् तत्काल ही तपस्वी के पास आ गये। और तपस्वी भगवान् के चरणों पर दण्डवत् प्रणाम करके बड़ा प्रसन्न हो कर भगवान के गुणों की बारम्बार स्तुति करने लगा। तब भगवान तपस्वी पर प्रसन्न होकर तपस्वी को मुक्तिपद दे दिया, तब गोपियों ने भगवान की आश्चर्य महिमा को देखकर बिनती करी।

'हे भगवान् ! आपने अभी तो कहा था कि बीस लाख वर्ष तपस्वी तप करेगा, तब मुक्तिपद तपस्वी को मिलेगा। और आपने इसी वक्त तत्काल ही मुक्तिपद देदिया। भगवन् आपकी महिमा बड़ी विचित्र है, तब भगवान बोले कि जो बीस लाख वर्ष में तप करने

से इस तपस्वी के पाप नाश होने थे, वह इसके 'अति प्रेम' श्रद्धा से क्षणमात्र में सर्व पाप नाश हो गये। याते इस तपस्वी का हृदय पाप से रहित अति निर्मल हो गया है। इसलिये मुक्तिपद के योग्य होने से इसको तत्काल ही मुक्तिपद दे दिया है। तब मित्र तपस्वी को कहता भया—'हे तपस्वीजी! इस प्रकार 'प्रेमरूपी अग्नि से पाप ईंधन क्षणमात्र में सब जल जावे हैं। याते भगवान में 'प्रेम' बढ़ाना चाहिये। और हे तपस्वीजी! इसी प्रकार एक माई कीड़ी थी जो भगवान श्री रामचन्द्रजी का आठों पहर भजन करती थी। तिसको एक समय महान कष्ट पड़ा। और भगवान ने उसका कष्ट निवारण किया।

॥ तपस्वी का वचन ॥

हे मित्र! किस प्रकार माई कीड़ी को कष्ट पड़ा। और किस प्रकार भगवान ने उसका कष्ट निवारण किया। सब वृत्तांत सुनाइये।

॥ मित्र का वचन ॥

दोहा—माई कीड़ी राम का, मन से ध्यान लुगाय।
अनंत लाल तिसको दिये, प्रभुजी करी सहाय॥

मित्र तपस्वी को कहता भया भाव यह है एक माई 'श्रीरामजी' का भजन करती थी तिस माई का नाम कीड़ी था, तिसका एक बेटा था, वह भी भगवान का भक्त था, और भजन करता था। एक दिन ज्योतिषी ने माई कीड़ी के बेटे के हाथ की रेखा देखी, तब ज्योतिषी को मालुम हुआ कि इस लड़के का राजा की लड़की के साथ संयोग है। तब ज्योतिषी ने राजा को जाकर कहा कि कर्म की गति बड़ी विचित्र है, कि माई कड़ी अति गरीबनी हैं तिसके बेटे का आपकी लड़की के साथ संयोग हैं। तब राजा ज्योतिषी की बात सुनकर बड़ा शोकवान

हुआ और विचारने लगा कि ग़रीबनी माई के बेटे के साथ हमारी लड़की का संयोग हुआ तो हमारी बड़ी बदनामी होगी । याते कोई झूठ जुल्म लगाकर इन माँ बेटे को मर वादेना चाहिये ।

तब राजा ने माँ बेटे को बुलाकर यह हुक्म दिया कि सुबह एकलाल (हीरा) हमारे को ला दो । अगर सुबह लाल नहीं लावोगे तो तुम दोनों मां बेटे को फांसी दी जावेगी । तब ऐसा सख्त हुक्म सुनकर मां बेटे दोनों अपने घर आकर विचार करते भये । कि सुबह फांसी लगजाना हैं । एक रात की मौहल्त मिली है । याते भगवान का ध्यान ही करना चाहिये । तब दोनों मां बेटे भगवान के आगे अनेक प्रकार से प्रार्थना करते हुये और सर्व दुनियां से उदासीन होकर अपने को मृत्यु के मुख में देखते हुये, भगवान के ध्यान में निर्विकल्प होगये, सारी रात दोनों की अचल समाधि लगी रही । तब ब्रह्ममुहूर्त के समय भगवान ने उनको अति आर्त हुये ध्यान में मग्न देखकर उनके घर में अनन्त लालों का ढेर लगा दिया ।

इधर सुबह होते के साथ ही राजा बज़ीर को कहता भया तुम जाओ उन मां बेटे को पकड़ लाओ, कि अबतक लाल नहीं लाये, उनको जल्दी फाँसी देदो । तब बजीर उनके घर आया तो क्या देखा कि मां बेटे की तो समाधि लगी हुई है और उनके घर में लालों का ढेर लगा हुआ है । एक एक लाख करड़ों रुपये का है । तब यह समाचार बजीर ने राजा को जाकर सुनाया तो राजा भी माई कीड़ी के घर जाता भया, और अनन्त लाखों को देखकर भगवान और भगवान के भक्तों की महिमा गायन करने लगा । तब राजा मन में विचार करता भया । कि माई कीड़ी आठों पहर भजन में लगी रहती है, इसलिये माई कीड़ी को भगवानजी ने इतने लाल दिये हैं ।

जिसके समान हमारा सारा राज समाज भी नहीं हो सकता । ऐसा विचार करके राजा अपने अन्याय की माई कीड़ी से मांफी मांगता भया और उसी वक्त माई कीड़ी के बेटे के साथ अपनी बेटी का विवाह करता भया ।

मित्र कहता भया—'हे तपस्वीजी ! इस प्रकार भगवान भक्तों के प्रेम बस हुआ क्षणमात्र में भक्तों के पाप और कष्ट निवारण कर देता है । जैसे प्रकाश से अंधकार दूर होजाता है, तैसे प्रेमरूपी प्रकाश से क्षणमात्र में पाप निवृत्त हो जाते हैं । और जैसे भूल से अग्नि का स्पर्श होजाय तो जलादेती है, तैसे ही मलीन चित्त वाला भी भगवान का स्मरण करे तो उसके पाप भी शीघ्र ही नाश होजावें हैं । याते ईश्वर शरण होकर नम्रभाव को धारण करके भगवान में प्रेम बढ़ाना चाहिये । काहेते राज दुर्लभ नहीं हैं, प्रेम ही दुर्लभ है । काहेते संसार के पदार्थों में तो प्रेम सबका है परन्तु भगवान में प्रेम तो किसी भाग्यशाली पुण्यात्मा का ही होवे है, इसलिये प्रेम दुर्लभ है । याते हे तपस्वीजी ! जैसे पानी के बिना मछली दुखी होवे है, तैसे नाम के बिना सच्चे प्रेमी बेचैन हो जाते हैं । याते जो सच्चे प्रमी भक्त है, वह भगवान के भजन ध्यान में सदा मस्त रहते हैं । उनके हृदय में सदा सुख ही सुख रहता है और परमानन्द भगवान की उनको प्राप्ति हो जाती है । याते हे तपस्वीजी ! संसार से उदासीन होकर भगवान की शरण ही लेनी चाहिये ।

दोहा—बालक युवा और वृद्ध को, है सबको अधिकार ।
पचास वर्ष के बाद में, छोड़ सकल संसार ॥

भाव यह है—जो कोई भगवान की शरण में आ जाता है, भगवान उसकी रक्षा करते हैं । इसलिये बालक को, युवा को और

वृद्ध को, सब को ईश्वर शरण होना चाहिये । परन्तु पचास वर्ष के बाद में तो सर्व विहार को छोड़कर संसार से उदासीन होकर ईश्वर शरण ही होना चाहिये । काहेते ईश्वर शरण होने से जीव के पाप दुख सब नाश हो जाते हैं । हे तपस्वीजी ! और विचार यह है कि वास्तव में तो आनन्द स्वरूप जीव आत्मा में कभी दुख का सम्बन्ध हुआ ही नहीं ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

यदि दुख सम्बन्ध से रहित जीव आत्मा आनन्द स्वरूप होवे तो सर्वदा काल सुख ही होना चाहिये । सो सर्वदा काल सुख होवे नहीं ।

॥ मित्र का उत्तर ॥

हे तपस्वीजी ! विचार दृष्टि से जीव सर्वदा काल सुख स्वरूप ही है । दुख का सम्बन्ध कभी हुआ ही नहीं । परन्तु जैसे ज्वर दोषवाले पुरुष को मीठा गुड़ भी कटु भान होवे है यद्यपि गुड़ स्वरूप से ही मीठा है, परन्तु ज्वर के दोष से कल्पित कटु भावना मधुरता को अच्छाद लिया ! यह गुड़ है ऐसा तो भान होवे है, परन्तु मीठा भान होवे नहीं उल्टा यह गुड़ कटु है ऐसा भान होवे है । और ज्वर का दोष निवृत्त होने के साथ ही वही गुड़ मीठे का मीठा ही भान होवे है ।

तैसे जीव स्वाभाविक ही सुख स्वरूप है परन्तु जिस हृदय में चिन्ता आदि विशेष दोष होवें हैं तिस हृदय में 'मैं दुखी हूं' ऐसा भान होवे है यद्यपि विक्षेप काल में भी सुख का अभाव नहीं हुआ, परन्तु कल्पित दुख की भावना से सुख (छिपा) आच्छादिया गया यद्यपि विक्षेप समय भी 'मैं हूँ' ऐसा स्वरूप का भान तो होवे है परन्तु सुख भान होवे नहीं, मैं दुखी हूं, ऐसा भान होवे है

जब वांछित विषय की प्राप्ति से अथवा अभ्यास से विक्षेप दोष निवृत्त होवे है तब चित्त समाहित काल में स्वरूप सुख का भान होवे है। मैं सुखी हूं ऐसी प्रतीति से कल्पित दुख की भावना निवृत्त होवे है तब स्वरूप का सुख निरावर्ण होवे है परन्तु अज्ञानी को भ्रम से, अपने से, भिन्न विषय से, सुख की प्राप्ति का अनुभव होवे है और ज्ञानवान को विचार से सर्वदा काल सुख स्वरूप का अनुभव होवे है अथवा हे तपस्वीजी ! और विचार सुनो ।

दोहा—घट में नभ ज्यों होइ है, ब्रह्म सुख मन मांहि ।
चिन्तारूपी दुख ने, सुख आच्छादिया तांहि ॥
नाम जपे भगवान का, चिन्ता होवे दूर ।
निवारण सुख होइ है, मन में जो भरपूर ॥

मित्र कहता भया, हे तपस्वीजी ! भाव यह है—जैसे घट में आकाश स्वाभाविक ही भरा हुआ है, तैसे मन में ब्रह्म सुख स्वाभाविक ही भरा हुआ है । परन्तु घट में अनाज भर देने से घट का आकाश आच्छादिया जावे है जब घट से अनाज निकास लिया जावे तब घट का आकाश निरावरण होवे है तैसे स्वरूप सुख निराकार ब्रह्म भी मनरूपी घट के अन्दर बाहर स्वाभाविक ही भरा हुआ है । परन्तु जिस काल में इच्छा का अथवा चिन्ता का मन में प्रवेश होवे है, तब स्वरूप सुख आच्छादिया जावे है, और अभाव की तरह भान होवे है । मैं सुखी नहीं हूँ, मैं दुखी हूँ, ऐसा प्रतीत होवे है । जब वांछित विषय की प्राप्ति से अथवा अभ्यास से चित्त समाहित काल में इच्छा अथवा चिन्ता के अभाव से स्वरूप का सुख निरावरण होवे है । 'मैं सुखी हूँ' ऐसी प्रतीत मनमें होवे है परन्तु अज्ञानी अपने स्वरूप से भिन्न भ्रांति से विषय से सुख की प्राप्ति माने है तिस को क्षणिक सुख का लाभ होवे है ।

काहेते दूसरी वस्तु की इच्छा मन में होने से स्वरूप का सुख ढक जावे है और चित्त निरोध आदि से अभ्यासी पुरुष भी अपने से भिन्न सुख की प्राप्ति माने है, तिस को भी परिछिन्न सुख का ही लाभ होवे है । परन्तु राजे आदिकों से अभ्यासी पुरुष को अधिक सुख का अनुभव होवे है । और ज्ञानवान विचार से सर्वदा काल परिपूर्ण स्वरूप सुख का ही अनुभव करे है । विचार यह है जैसे बालक को भूषण दीखे है सोना नहीं दीखे है और स्त्री को भूषण, सोना दोनों दीखें है । और सुनार को केवल सोना ही दीखे है यद्यपि भूषणों का कथन करता हुआ भी सुनार सोने को ही देखे है, भूषणों को नहीं देखे है । तैसे अज्ञानी तो जगत को ही देखे है और जिज्ञासु जगत और ब्रह्म दोनों को जाने है और ज्ञानवान विचार से निरतिशय आनन्दरूप अद्वैत ब्रह्म को ही अनुभव करे है यद्यपि ज्ञानवान जगतका कथन करता हुआ भी जगत को नहीं देखे है, ज्ञानवान सर्वदा काल अद्वैत स्वरूप सुख का ही अनुभव करे है ।

काहेते जो जो सुख से भिन्न होवे है सो सो दुखरूप ही होवे है, यदि सुख से भिन्न आत्मा होवेगा तो आत्मा भी दुख की नांई प्रतिकूल ही होवेगा और आत्मा किसी को भी प्रतिकूल है नहीं किन्तु सर्वदा काल सर्व जीवों को अपना आप आत्मा परम प्रेम का विषय होने से अनुकूल ही है इसलिये सुख से भिन्न आत्मा नहीं है, सुख आत्मा का स्वरूप ही है । याते हे तपस्वीजी ! इस प्रकार विचार दृष्टि से जीव सर्वदाकाल सुख स्वरूप ही है । तपस्वी कहता भया हे मित्र आपने जीवसुखरूप कहा सो ठीक है । परन्तु विक्षेप आदि दुख किसको होवे हैं ।

॥ मित्र का वचन ॥

हे तपस्वीजी ! विक्षेप आदि दुख अन्तःकरण के धर्म हैं, असंग आत्मा के नहीं और विचार यह है कि देवराज इन्द्र को भी ऐसा सुख नहीं होवे है, और चक्रवर्ती राजा को भी ऐसा सुख नहीं होवे है जैसा सुख राग से रहित मुनि, सन्त को एकान्त स्थान में निवास करने से होवे है अथवा जो पुरुष केवल भगवान परायण सर्व इच्छा से रहित होकर एकान्त स्थान में भजन तत्पर करता है उसको इस लोक से लेकर ब्रह्मलोक तक सर्व सुख की प्राप्ति होवे है काहेते इच्छा के अभाव से स्वरूप सुख सदा निरावरण रहता है। हे तपस्वीजी ! विचार से विक्षेप समाधि भी अन्तःकरण के धर्म हैं, मेरे नहीं हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि मन के धर्म हैं। अनुभव करनेवाला सुख स्वरूप मैं आत्मा असङ्ग हूँ। विचार ये है जैसे स्वप्न के राज का सुख जाग्रत के किंचित सुख के समान भी होवे नहीं। काहेते स्वप्न के राज सुख की अपेक्षा से जाग्रत का किंचित सुख भी सच्चा है। तैसे इस लोक के सुख राज आदि ब्रह्मसुख की बूंद के समान भी नहीं हैं। काहेते स्वप्न समान इस लोक के सुख राज आदि मिथ्या हैं और जाग्रतरूप, ब्रह्म सत चित, आनन्द स्वरूप परिपूर्ण है।

याते हे तपस्वीजी ! जैसे स्वप्न से जागे पुरुष को स्वप्न के सम्बन्धियों के वियोग से मोह, शोक होवे नहीं, तैसे हमारे को अद्वैत स्वरूप के बोधरूप जाग्रत से स्वप्न के मित्र का वियोग होने से मोह शोक हुआ नहीं। तब इस प्रकार मित्र का विचार सुनकर तपस्वी धन धन करता हुआ उसी राजकुमार के पास कुटिया पर जाता भया और मन में सोच करता भया, लड़के की परीक्षा के वास्ते ऐसा भयानक शब्द सुनाऊ जिसके सुनते ही मोह के वश होकर

रुदन करता हुआ ज़मीन पर गिर पड़े। तब तपस्वीजी ऐसा भयानक शब्द सुनावते भये।

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—सुन नृप नन्दन बात मम, महा शोक की खानि।
निकसे पीछे अग्नि से, भई कुटुम्ब की हानि॥

अर्थ—हे लड़के जिस वक्त तुम घर से निकले हो पीछे तुम्हारे महलों में आग लगी, तुम्हारा सारा धन कुटुम्ब आदि जलगया है।

॥ कुमार का उत्तर ॥

दोहा—जितने लोग कुटुम्ब सब, इक दिन बिछुड़न होय।
याते हम पहिले तज्यो, संग न करहूँ कोय॥

अर्थ—हे तपस्वीजी! कुटुम्ब के जितने लोग हैं सब का नवका के मुसाफिरों वाला मेला है, एक एक करके संयोग होता हैं फिर क्रम से बिछोहा हो जाता है। ऐसे मुसाफिररूपी शरीरों के वियोग से शोक करना वृथा है। मैं तो पहिले ही घरको छोड़ कर चला आया हूँ अब मैं किसी का भी संग नहीं करूंगा और कुटुम्ब का तो कभी स्मरणमात्र भी नहीं करूंगा।

॥ तपस्वी का वचन ॥

हे लड़के तुमने कुछ भी शोक नहीं किया तुम्हारा कैसा पत्थर चित्त है।

॥ कुमार का उत्तर ॥

हे तपस्वीजी! शरीर सब नाश हो जानेवाले हैं और जो चेतन आत्मा है तिसका नाश नहीं होता अविनाशी आत्मा प्रकाशक और व्यापक है।

॥ तपस्वी का वचन ॥

आत्मा प्रकाशक तो है परन्तु व्यापक नहीं है ।

॥ राजकुमार का उत्तर ॥

हे तपस्वीजी ! जहाँ जहाँ प्रकाश्य प्रकाशक भाव होवे है । वहां वहां व्यापक भाव अवश्य होता है जैसे तेज प्रकाशक है रूप प्रकाश्य है । तेज व्यापक है, रूप व्याप्य है, वास्तव में विचार करके देखिये तो प्रकाश्य प्रकाशक भाव से रहित और व्याप्य व्यापक भाव से रहित जितने रूप है तेज मात्र हैं तैसे ही आत्मा प्रकाशक है दृश्य प्रकाश्य है । आत्मा व्यापक है, दृश्य व्याप्य है । वास्तव में विचार करके देखिये तो प्रकाश्य प्रकाशक भाव से रहित व्याप्य व्यापक भाव से रहित जितना जगत दृश्य है एक आत्मा का रूप है विचार से जब ऐसे असङ्ग होता है तब शीघ्र ही शांति को प्राप्त होवे है और आत्मा सतचित आनन्द परिपूर्ण है जिसमें जगत कल्पित होने से आत्मा का ही रूप है ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

अपने से भिन्न जगत सत क्यों भान होता है ।

॥ राजकुमार का उत्तर ॥

हे तपस्वीजी ! अज्ञान से जगत सत भान होता है विचार करके देखिये तो आत्मा से भिन्न जगत सत होता तो आत्मा कभी न प्रकाशता क्योंकि आत्मा भी घट की नाईं परिछिन्न और जड़ हो जाता, आत्मा सर्व का ज्ञाता होने से चेतन और व्यापक है । याते हे तपस्वीजी ! प्रकाशक आत्मा में नाम रूप जगत कल्पित होने से आत्मा का ही रूप है ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

आत्मा जगत की एकता में तुमने युक्ति कही सो ठीक है, परन्तु कोई दृष्टान्त भी कहना चाहिये ।

॥ राजकुमार का उत्तर ॥

हे तपस्वीजी ! आत्मा जगत की एकता में अब दृष्टांत सुनो— जैसे भूषण सोने में कल्पित होने से स्वर्ण का ही रूप है, तरङ्ग जल में कल्पित होने से जल का ही रूप है, अक्षर स्याही में कल्पित होने से स्याही का ही रूप है, शस्त्र लोहे में कल्पित होने से लोहे का ही रूप है, घड़े मृतिका में कल्पित होने से मृतिका का ही रूप है, वस्त्र सूत में कल्पित होने से सूत का ही रूप है । सर्प रस्सी में कल्पित होने से रस्सी का ही रूप है, दीवार में चित्र कल्पित होने से दीवार का ही रूप है, ठूंठ में चोर कल्पित होने से ठूंठ का ही रूप है । सीपी में चांदी कल्पित होने से सीपी का ही रूप है । काष्ठ में कड़ी, किवाड़, तख्ता कल्पित होने से काष्ठ का ही रूप है । गिलास बोतल, चिमनी, कांच में कल्पित होने से कांच का ही रूप है । कनस्तर, डिब्बे, टीन में कल्पित होने से टीन का ही रूप है । तैसे नाम रूप सर्व जगत परमात्मा में कल्पित होने से परमात्मा का ही रूप है । इसलिये परमात्मा ही अपनी महिमा में स्थित है और कुछ नहीं ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

तुम्हारा यह विचार तो ठीक है परन्तु हे लड़के तुम्हारा सब कुटुम्ब नष्ट होगया अब तुम जाकर राज्य करो अर्थात् राज लक्ष्मी का सुख भोगो ।

॥ राजकुमार का वचन ॥

राजकुमार कहता भया—हे तपस्वीजी लोहे की बेड़ी तो छेनी

से काटी जावे है । परन्तु मोहरूपी बेड़ी ऐसी दृढ़ और कैड़ी है असंख्य जन्मों में भी किसी उपाय नहीं काटी जाती है केवल एक वैराग्य से ही मोहरूपी बेड़ी काटी जावे है । राजकुमार कहता भया कुटुम्ब आदि लोग स्वप्न मात्र होने से मिथ्या हैं । इसलिये हे तपस्वीजी ! हमारे को किसी के साथ मोह नहीं है । मेरे को सब से वैराग्य हुआ है, क्योंकि वैराग्य का पुण्य, सुख, राज, लक्ष्मी के सुख से महान अधिक है ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

राज, लक्ष्मी के सुख से वैराग्य का पुण्य, सुख महान अधिक है । यह कैसे जानना चाहिये ।

॥ राजकुमार का उत्तर ॥

हे तपस्वीजी ! ज्ञान, उपरति, वैराग्य ये तीनों जिस में होवें सो पूर्ण पुण्य का फल है । और जिसमें ज्ञान प्रबल है, वैराग्य, उपरति न्यून हैं वह उससे थोड़े पुण्य का फल है । और जिसमें वैराग्य, उपरति है और ज्ञान नहीं है वह उससे भी थोड़े पुण्य का फल है । और जिसमें ज्ञान, वैराग्य उपरति, तीनों नहीं हैं, सिद्धि और राज लक्ष्मी आदि प्राप्त हैं, वह उससे भी थोड़े पुण्य का फल है । और जिसमें ज्ञान, वैराग्य, उपरति, सिद्धि आदि नहीं हैं, केवल राजलक्ष्मी प्राप्त है, वह उससे भी थोड़े पुण्य का फल है । याते हे तपस्वीजी ! इस प्रकार पूर्वोक्त विचार से राजलक्ष्मी आदि बूंद सुख से ज्ञान, वैराग्य आदि का महान अधिक समुद्ररूप अविनाशी सुख होवे है और विचार यह है राज लक्ष्मी तो पूर्वकृत प्रारब्ध से प्राप्त होवे है, पुरुषार्थ से प्राप्त होवे नहीं और वैराग्यरूपी पुण्य सुख तो पुरुषार्थ से प्राप्त होवे है । याते वैराग्यरूपी पुण्य बढ़ाने के लिये

सदा वैराग्य और अभ्यास का ही पुरुषार्थ करना चाहिये । काहेते वैराग्य ही परम तप है और राग से मन मैला होवे है, वैराग्य से मन निर्मल होवे है अर्थात् मन समाहित होवे है इसलिये वैराग्य ही परम पावन है याते वैराग्यवान ही सर्व बन्धनों से मुक्त होवे है ।

विचार यह है । जैसे सर्प में विष, मिर्च में तीक्षणता, अग्नि में उष्णता, नमक में क्षारता, लोभ में पाप, भोग में रोग रहता है तैसे ही राग वाले विक्षेप चित्त में क्लेश रहता है और जिस प्रकार सूरज में अन्धकार का, चन्द्रमा में ताप का, अमृत में विष का, मधुरता में कटुता का, जाग्रत में स्वप्न का, आकाश में फूल का और सिन्धु में धूल का अभाव रहता है उसी प्रकार उदासीनता वाले समाहित चित्त में क्लेशों का अभाव रहता है । कुमार कहता भया कि क्षणिक सुख राज लक्ष्मी नाशरूप का त्याग करके महान सुखरूप उदासीनता का ही हम सेवन करेंगे । जो पुरुष शाखा पर खड़ा होकर शाखा के मूल को काट रहा है जब शाखा गिरेगी तब वह पुरुष भी साथ ही गिरकर कष्ट पाता है, तैसे ही जो पुरुष धन आदि विषयों को पाप से संग्रह करके उनसे सुख की आशा करता है वह वर्तमान में भी दुखी रहता है और मर कर नरक भोगता है, याते धन आदि विषयों का राग छोड़ कर सदा भजन ही करना चाहिये याते वैराग्य विचार से दीनता से रहित हुआ जिज्ञासू निर्भय होवे है, और ब्रह्मचर्य से अंतःकरण सतो प्रधान होवे है । इसलिये ब्रह्मचर्य और ब्रह्मविचार का सेवन करता हुआ पूर्ण परमानन्द को प्राप्त होवे है । याते हे तवस्वीजी ! चेतन से भिन्न यावत अनात्म जगत स्वप्न समान मिथ्या है ।

हे तपस्वीजी ! जैसे छोटी नौका भी बड़ी नदी से पार कर

देती है, तैसे शास्त्र की थोड़ी बुद्धि भी बड़ी दुखरूपी नदीसे पार कर देती है।

॥ तपस्वी का वचन ॥

हे राजकुमार किस प्रकार शास्त्र की थोड़ी बुद्धि भी बड़े दुखों से छुड़ा देती है इसमें कोई उदाहरण सुनाओ।

॥ राजकुमार का वचन ॥

हे तपस्वीजी—अब उदाहरण सुनो, एक राजा का नाम मुञ्ज था, वह राज करता था, तिसका बड़ा भाई मृत्यु होगया, तिस बड़े भाई का बेटा भोजराज बारह वर्ष की उम्र में ही विद्या पढ़कर बहुत बुद्धिमान हो गया। तब मुञ्ज राजा को यह शंका हुई, कि यह भोज बहुत विद्या पढ़कर बड़ा होशियार हो गया, यह भोज हमारा राज लेकर के मेरे को अपने आधीन कर लेवेगा, याते अभी भोज को मरवा देना चाहिये। ऐसा विचार करके राजा मुञ्ज वज़ीर को बड़ा सख्त हुक्म देता भया, कि आज ही इसी वक्त भोज को जंगल में लेजाकर शीघ्र ही मरवा देवो और मृत्यु समय जो बात कहे लिखकर ले आना, और मृत्यु का निशान भी हमारे को दिखाना, इस प्रकार राजा ने वज़ीर को सख्त हुक्म दे दिया।

बज़ीर ऐसा हुक्म सुनकर बड़ा भयवान होता भया, कि बिना कसूर के भोज को मरवा देने का महान पाप लगेगा, इस प्रकार बज़ीर चिन्ता करता हुआ लाचार होकर नौकरों को साथ लेकर भोज को पकड़ कर बाहर जंगल में मारने के वास्ते ले जाता भया तब भोज ने वज़ीर को कहा, हमारे को दो घड़ी भगवान का भजन कर लेने दो तब वजीर ने कहा भजन कर लो, तब भोज स्नान करके भगवान के ध्यान में बैठ गया, भोज की अचल समाधी लग गई, तब

वज़ीर भोज को देखकर रोने लगा मन में विचार करता भया, आज निर्दोश भोज की मृत्यु हमारे हाथ से हुई, तो हमारे को नर्क मिलेगा, इस प्रकार बजीर पश्चात्ताप करता भया, इधर भोज समाधी से उत्थान होकर वज़ीर को कहता भया, अब हमारे शरीर को कत्ल करदो, तब वज़ीर निराश होकर बोलता भया।

दोहा—वज़ीर भोज को कहत है, तुम हो बुद्धीमान।
अब हम तुम दोनों बचें, ऐसा सोचो ज्ञान॥

भाव यह है—वज़ीर भोज को कहता भया, कि तुम बहुत बुद्धिमान हो तुम ही ऐसी युक्ति विचारो जिस करके हम तुम दोनों बच जावें तुम्हारी बुद्धि बहुत चतुर हैं, तब भोज, अपने बाँये हाथ की अँगुली चाकू से काट कर खून कटोरे में भर कर उस खून से ही कलम भर कर भोज-पत्र पर लिखने लगा, पत्रिका में भोज लिखता भया।

(१) हे चाचाजी—सतयुग में मानधाता राजा बड़ा प्रतापी होता भया, जिसने अपने रथ पर सवार हो कर सात परिक्रमा पृथ्वी पर करने से सात समुद्र बन गये, ऐसा प्रतापी मानधाता इस संसार से राज करके चला गया, मगर यह पृथ्वी उसके साथ नहीं गई, परन्तु हे चाचाजी जिस पृथ्वी के लोभ के वास्ते हमारे को तुम कत्ल करा रहे हो, वह निश्चय करके तुम्हारे साथ तो जरूर ही जावेगी।

(२) हे चाचाजी—त्रेतायुग में श्री रामचन्द्रजी बड़े प्रतापवान थे, जिन्होंने रावण के दश शीश काटे और ग्यारह हज़ार वर्ष राज करके इस जगत से चले गये यह पृथ्वी उनके साथ भी नहीं गई; परन्तु हे चाचाजी—जिस पृथ्वी के लोभ के वास्ते तुम हमारे को कत्ल करा रहे हो, तुम्हारे साथ तो निश्चय ही जावेगी।

(३) हे चाचाजी--द्वापरयुग में राजा युधिष्ठिर आदि पाण्डव चक्रवर्ती राज करके चले गये, यह पृथ्वी उनके साथ भी नहीं गई और अनेक राजे राज करके इस संसार से चले गये, यह पृथ्वी किसी के साथ भी नहीं गई, परन्तु हे चाचाजी ! जिस पृथ्वी के लोभ के वास्ते तुम हमारे को कत्ल करा रहे हो तुम्हारे साथ तो जरूर ही जावेगी, इस प्रकार की पत्रिका लिखकर के भोज ने वजीर को कहा यह पत्रिका चाचाजी को जाकर देदो, भगवान की कृपा से हम तुम दोनों बच जावेंगे, और खून के दाग़वाला यह दुपट्टा ले जावो मृत्यु का निशान दिखा देना, तब वज़ीर राजा के पास जाता भया, तब वजीर से राजा ने पूछा भोज को मरवा दिया वजीर ने कहा मरवा दिया और खूना का सना हुआ दुपट्टा वजीर ने राजा को मृत्यु का निशान दिखा दिया, तब राजा ने कहा मृत्यु के समय कुछ भोज ने कहा था, वजीर ने पत्रिका राजा के आगे धर दीनी, राजा पत्रिका को पढ़ता भया, सम्पूर्ण पत्रिका वैराग्य की लिखी हुई पढ़ चुका तब राजा का चित्त शुद्ध हो गया और पश्चाताप करता हुआ ऊँचे स्वर से रोने लगा और बारम्बार भोज के गुणों का कथन करता भया ।

दोहा—पत्रिका पढ़कर रोता, राजा मुझ अजान ।
राज साथ नहीं जायगा, शत्रू लोभ महान ॥
क़त्ल कराया भोज को, दया न उपजी आन ।
सुन्दर चतुर बालक अहे, भोज गुणों की खान ॥

भाव यह है—पत्र पढ़कर राजा विचार करता भया, बड़े भाई का बेटा एक ही था, और विद्या पढ़ा हुआ बहुत बुद्धिमान था बिना कसूर हमने मरवा दिया, और जिस राज के लोभ वास्ते यह अपराध

किया है, सो यह राज समाज साथ नहीं जावेगा, याते लोभ सबसे बड़ा शत्रु है, लोभ करके ही पाप होता है, पाप से जीव नर्क को चला जाता है, ऐसा बालक सुन्दर श्रेष्ठ गुणों की खान भोज को मरवा दिया, और मेरे मन में किंचित भी दया नहीं आई, याते सर्व पापों का मूल लोभ ही है इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुआ राजा रुदन करता भया, तब वजीर ने कहा, राजा साहब अब आपका ख्याल कैसा हो गया, तब राजा मुझ कहता भया, हे वजीर अगर इस समय भोज जीता होता तो हम भोज को राजगद्दी देकर बन में कल्याण के वास्ते भजन करने चले जाते परन्तु अब तो भोज मर चुका है अब क्या बने, तब वजीर कहता भया, हे राजा साहब आपका ऐसा ख्याल अगर पक्का हो गया है, तो भोज कुशलपूर्वक जीता हैं, तब प्रसन्न होकर राजा कहता भया शीघ्र ही भोज को ले आओ, तब वजीर भोज का धन्यवाद करता हुआ भोज को रथ पर बैठा कर बड़े उत्साहपूर्वक राजा के पासे ले गया, तब राजा भोज को राजगद्दी देकर आप भजन करने के लिये ईश्वर शरण बन को जाता भया, तब भोज मृत्यु से बचने की खुशी करके भगवान की प्रसन्नता अर्पण एक हजार गौ ब्राह्मणों को दान करता भया, और एक लाख मन अनाज गरीबों को दान करता भया ।

तब कुमार तपस्वी को कहता भया, कि जैसे छोटी नौका भी बड़ी अगाध जल की नदी से पार कर देती है, तैसे बड़े भयानक दुखों से शास्त्र की थोड़ी बुद्धि भी जीव को पार कर देती है, अर्थात् वैराग्यवाली भोज की बुद्धि से राजा और वजीर इस लोक में तो निन्दा से बच गये और परलोक में नर्क से बच गये और भोज मृत्यु से बचकर राजगद्दी को प्राप्त हुआ, ऐसी शास्त्र की बुद्धि स्तुति करते योग्य है जो बड़े दुखों से छुड़ा कर सुख प्राप्त कर देती है ।

राजकुमार कहता भया, जो पुरुष ऐसे झूठे कुटुम्ब के मोह से व्यवहार में पाप छल करते हैं। उनको परलोक में नर्क मिलता है और यहाँ दुख पाते हैं। इसी से धन स्त्री के मोह से धर्म का नाश कर देते हैं। परन्तु वह भाई, मित्र, धन आदि परलोक में साथ नहीं जांयगे परलोक में तो पुण्य और पाप ही साथ जावेंगे। इसवास्ते जो धर्म की पालन नहीं करते कुटुम्ब की ही पालना पाप से करते हैं वह सदा दुखी रहते हैं और शांति के समान कोई तप नहीं है। और दया के समान कोई धर्म नहीं। तृष्णा के समान कोई रोग नहीं है और सन्तोष के समान कोई सुख नहीं है और पाप पुण्य दोनों छिपाने से बढ़ते ही जाते हैं और प्रगट करने से घटते ही जाते हैं। इससे पुण्य को छिपाना चाहिये और पाप को प्रगट करना चाहिये पाप का फल दुख जीव नहीं चाहते परन्तु पाप का त्याग नहीं करते कोई उत्तम पुरुष ही पाप का त्याग करता है और पुण्य का फल सुख तो सब जीव चाहते हैं, परन्तु पुण्य करते नहीं, कोई उत्तम पुरुष ही पुण्य करता है।

दोहा—रोटी देवे सन्त को, पुण्य गऊ सम जान।
खिलावे भोजन तृप्ति से, हज़ार द्विज तुल मान॥

भाव यह है—जो गृहस्थी भिक्षु और सन्तका 'नारायणहरी' शब्द सुनकर के भिक्षा रोटी शीघ्रता से देता है उसको गऊ दान करने का फल प्राप्त होता है और जो गृहस्थी आलस्य करके रोटी भिक्षा नहीं देता, ब्रह्मचारी, फकीर, भिक्षु और सन्त के निराश चले जाने का गृहस्थी को पाप लगता है। जो गृहस्थी महात्मा को तृप्ति से भोजन खिलाता है उस गृहस्थी को हजार ब्राह्मण का भोजन खिलाने का फल प्राप्त होता है।

दोहा—सेवा श्रद्धा से करे, प्रसन्न होय नित सन्त ।
कामधेनु सौ जानिये, सेवा फल अनन्त ॥

भाव यह है—जो गृहस्थी भक्त (श्रद्धा) प्रेम से महात्मा की रोज़ ही सेवा पूजन करके महात्मा को प्रसन्न करता है, उस भक्त को सौ कामधेनु गऊ की सेवा पूजन के समान फल प्राप्त होता है, इसलिये अपने कल्याण के वास्ते श्रद्धापूर्वक महात्मा की सेवा और संगति करनी चाहिये ।

और हे तपस्वीजी अतिथि की सेवा के महातम में एक उदाहरण सुनो । हरदयाल नाम का एक भगत था वह जंगल में कुटी बनाकर भजन करता था और उसकी स्त्री सदा सेवा में लगी रहती थी और आये अतिथि सन्तकी प्रेम से दोनों सेवा करते रहते थे एक रोज़ भगवान उनकी परीक्षा करने के लिये शाम के वक्त वृद्ध सन्त का रूप बनाकर उनके पास आगये तब भगत ने सन्त को नमस्कार करके आसन पर बैठा दिया और अपनी स्त्री को कहा कि यह वृद्ध सन्त है और सरदी बहुत है और बाहर शेर का भी डर है याते कुटी के अन्दर सन्त का आसन लगा देना चाहिये और अपने दोनों को बाहर आसन कर लेना चाहिये । स्त्री ने कहा—'हे भगवान आपने बहुत अच्छा विचार किया है ।' तब भगत ने सन्त को भोजन खिलाकर आसन कुटी के अन्दर कर दिया और आप दोनों कुटी से बाहर मैदान में आसन करते भये तब रात के बारह बजे एक शेर आया और भगत को मार कर चला गया तब उसकी स्त्री ने विचार किया कि पति हमारा अतिथि सन्त की सेवा में मृत्यु हो गया है। भगवान का हुक्म ऐसे ही था अब पति के संग सती हो जाना ही हमारा उत्तम धर्म है तब वह स्त्री चिता बना कर पति के साथ

सती होने को तैयार हुई तब सन्तरूप भगवान ने स्त्री को कहा अब तुम्हारा अतिथि सेवा जो गृहस्थ आश्रम का मुख्य धर्म है सो सम्पूर्ण हो गया तब भगवान ने उसके पति को जीवित कर दिया तब दोनों को भगवान का दर्शन होता भया और भगवान ने आशीर्वाद दिया कि तुम दोनों जन्म मरण से रहित हो कर मुक्त हो जाओगे इस प्रकार कह कर भगवान अंतरध्यान हो गये याते हे तपस्वीजी गृहस्थ आश्रम में अतिथि सेवा का महान पुण्य है याते जो भगत सावधान होकर अतिथि सन्तों की सेवा में तत्पर रहते हैं उनको दोनों लोक के सुख प्राप्त हो जाते हैं ।

दोहा—अतिथि सब का गुरू है, तिसकी करे जो सेव ।
सुख पावे इस लोक में, अन्त मुक्ति को लेव ॥
खाली जांय जिन घरों से, ब्रह्मचारी अरु सन्त ।
घोर नर्क में पड़ेंगे, भोगें दुःख अनन्त ॥

अर्थ स्पष्ट है ।

राजकुमार कहता भया—हे तपस्वीजी ! जो पुरुष केवल अपने शरीर के सुख के लिये दूसरों को दुख देते हैं वा पाप करते हैं, जैसे मांस आदि खाने के लिये जीवों का घात करते हैं वह पापी पुरुष खोटी योनियों को पावेंगे और नर्क का दुख भोगेंगे जो पुरुष पराई स्त्री के साथ शरीर करके भोग भोगते हैं उनको परलोक में लोहे के तप्त थम्बे (खम्बे) के साथ लगाकर जलाया जाता है । जो पुरुष कर्ज लेकर नहीं देते उनको अगले जन्म में नारी, पशु, नौकर बनकर बदला देना पड़ता है, जब तक कर्ज का बदला नहीं दिया जावेगा तब तक नहीं छूटेगा । और जो पुरुष धन और कुटुम्ब को ईश्वर का जानकर सदा धर्म को पालते हैं, भगवान को प्यारा

जानकर कुटुम्ब के साथ मोह नहीं करते और पाप से सदा बच जाते हैं और भजन में जिनकी प्रीति है वह दोनों लोकों में सुखी रहते हैं। जो धर्मात्मा पुरुष हैं वह इस लोक के विषयों में सुख का यत्न नहीं करते, केवल परलोक के सुख के वास्ते ही धर्म करते हैं तथा भजन करते रहते हैं वह दोनों लोकों में सुखपाते हैं और जो लोग शरीर के सुखकी कोशिश करते हैं अर्थात् दुनिया के विषय सुख की चाह करते रहते हैं और सदा व्यवहारों की ही फिक्र करते रहते हैं और भजन नहीं करते, परलोक नहीं संभारते, वह दोनों लोकों में दुखी रहते हैं, याते इसलोक के सुख की इच्छा को त्यागकर परलोक के सुख के वास्ते ही पुण्य करना चाहिये, भजन करना चाहिये। जो पुरुष मोह में फँसकर पाप छल करते हैं वह पापी पुरुष हीरा जन्म को गंवाकर चौरासी के चक्कर में आकर जन्मते मरते हैं। और जो पुण्यात्मा पुरुष हैं वह धर्म के वास्ते पुत्र, स्त्री, धन से मोह नहीं करते, उनको धर्म ही प्यारा है जैसे हरिश्चन्द्रराजे आदि अनेकों ही भक्त पुण्य परायण होकर कुटुम्ब का मोह छोड़कर धर्म की पालना करते रहे। उनकी कथा सुनकर पाप नाश होते हैं, क्योंकि धन की शक्ति, शरीर की शक्ति, वाणी की शक्ति, बुद्धि की शक्ति, परमात्मा ने जीवों को धर्म करने वास्ते, भजन करने के वास्ते ही दी है। इस लिये जीवों को धर्म करना और भजन करना ही उचित है। और सम्बन्धियों का संग त्याग कर ईश्वर परायण ही होना चाहिये। इस से हे तपस्वीजी! विचार यह है कि एक चोर था—जब वह मृत्यु होने लगा तब अपने पुत्र को उपदेश करता भया कि हे पुत्र तुम बराबर चोरी करते रहना और जहाँ कथा होती होवे वहाँ भूल कर भी न जाना। तब पुत्र ने कहा हे पिताजी कहीं

रास्ते में कथा हो रही हो तब क्या करना चाहिये । तब पिता पुत्र को कहता भया । हे पुत्र उस समय कानों में उंगली दे लेनी अर्थात् कान बन्द कर लेने जिससे कानों में कथा की बातें ना पड़ जावें ऐसा उपदेश करके चोर मृत्यु को प्राप्त हो गया, पीछे उस चोर का पुत्र रात को राजा का बहुत सा धन चोरी करके ला रहा था । रास्ते में मंदिर में कथा हो रही थी—तब उस पुत्र ने अपने पिता का उपदेश याद करके उंगली से कान बन्द कर लिये परन्तु जब कथा के पास पहुँचा तो देव गति से चोर के कांटा लग गया जब चोर कान से उंगली निकाल कर कांटा निकालने लगा तो कथा में उस वक्त पंडितजी यह उपदेश कर रहे थे कि देवताओं की परछाई नहीं पड़ती और नेत्रों के पलक नहीं झपते यह उपदेश उस चोर के कान में भी पड़ गये और चोर अपना कांटा निकाल कर कानों को उंगली से बन्द कर घर को गया और धन को किसी गुप्त जगह रख दिया । प्रातःकाल राजा के सिपाहियों ने उसे पकड़ कर राजा के सामने खड़ा किया तब राजा ने चोर से पूछा तूने चोरी की है? तब चोर ने कहा मैंने चोरी नहीं की । राजा ने चोर को कैद में भी भेज दिया मगर चोर ने चोरी करने से इन्कार कर दिया तब राजा ने एक कुटनी बुलाकर कहा कि तुम इस चोर का पता लगाओ कि इसने चोरी की है या नहीं तब कुटनी राजा से हाँ करके चली गई और रात्रि को वह देवी का रूप बनाकर जेलखाने में दीपक हाथ में लेकर चोर के पास जाकर कहने लगी कि—'हे बेटा मैं देवी माता हूँ । तू मुझको ठीक बतादे कि तूने चोरी की है या नहीं अगर तु ठीक बतावेगा तो तुझे जेल से निकाल दूँगी और झूंठ बोलेगा तो श्राप देकर भस्म कर दूँगी । तब चोर उसको देवी माता समझकर ठीक २ कहने को तैयार हुआ तब कथा का उपदेश याद आ गया कि

देवता की परछाईं नहीं पड़ती और नेत्रों के पलक नहीं झपते। इस देवी की परछाईं भी पड़ती है और पलक भी झपते हैं, याते यह देवी नहीं है कोई छलरूप कुटनी है। ऐसा जानकर चोर कुटनी से कहने लगा कि देवी माता मैंने चोरी नहीं की है अगर मैं चोरी करता तो कह देता। तब कुटनी को विश्वास होगया कि इसने चोरी नहीं की अगर करता तो मेरे रूप को देखकर जरुर बता देता। ऐसा निश्चय कर कुटनी राजा से जाकर कहती भई। राजा इसने चोरी नहीं की है, मैंने परीक्षा करली है। तब राजा ने कुटनी के कहने से चोर को छोड़ दिया—तब चोर अपने घर आकर विचार करने लगा कि हमारा पिता महान मूर्ख था जो कथा में जाने से रोकता था—ऐसी कथा जिसके एक वाक् ने हमारे को कैद से छुडा दिया—और धन भी बच रहा—याते अब हम चोरी को छोड़ कर ईश्वर परायण होकर कथा सत्संग में ही जाया करेंगे—हे तपस्वीजी ऐसा विचार कर वह चोर रात दिन ईश्वर का भजन करता और कथा सुनता हुआ और वर्तमान काल में सुख से कुटुम्ब का पालन करता हुआ अन्त समय मोक्ष को प्राप्त हो गया—याते हे तपस्वीजी भगवान की कथा सुनने का महात्म वाणी से नहीं कहा जा सकता। कथा का एक वाक् कानों में जबरदस्ती पड़ जाने से भोग मोक्ष दोनों प्राप्त हो गये। हे तपस्वीजी ऐसा विचार कर हम तो कुटुम्ब का मोह त्याग कर अपना स्वधर्म ब्रह्म परायण ही होवेंगे कभी इस झूठे कुटुम्ब का मोह न करेंगे क्यों कि मुसाफिरों की तरह सम्बन्धियों का मेला है, अब वियोग होगया है तो हम क्या अफसोस करें। हे तपस्वीजी! इसपर तुमको एक उदाहरण सुनाता हूँ जिसके सुनते ही मोह शोक सब निवृत्त हो जावें हैं।

एक बहुत बड़ा दरियाव था जिसमें नवका मुसाफिरों से भरी हुई थी, जल बहुत चढ़ा हुआ था और हवा भी बहुत जोर से चल रही थी, दरियाव के बीच में जब नवका आई तब डूबने लगी। तब एक बड़ा बलवान पुरुष नवका से निकल कर तैर करके पार चला गया, पीछे से मुसाफिरों से भरी हुई नवका दरियाव में डूब गई तब जो मुसाफिर तैर कर निकल गया था उसको मुसाफिरों सहित भरी हुई नवका के डूब जाने का कुछ भी अफसोस नहीं हुआ। इसी तरह हे तपस्वीजी! यह घर के सम्बन्धी पिछले जन्म के अज्ञात मुसाफिर हैं, घररूपी नवका धीरे धीरे भरगई अब संसार समुद्र के बीच कर्मरूपी वायु से और कालरूपी गम्भीर जल में अग्नि के निमित्त से घररूपी नवका सम्बन्धीरूपी मुसाफिरों करके भरी हुई एक समय ही डूब गई अर्थात् अग्नि के निमित्त से सारा कुटुम्ब जलकर नाश होगया इस प्रकार मुसाफिरों की तरह झूठे कुटुम्ब के नाश होने से हमारे को शोक नहीं हुआ। हमतो पहेले ही घर से निकल आये अब मैं लोगों का संग नहीं करूंगा। और कुटुम्ब का कभी स्मरण ही नहीं करूंगा सदा आत्म भगवान परायण ही रहूँगा और एकाकी जीवन मुक्त होकर विचरूंगा। तब तपस्वीजी राजकुमार का ऐसा विचार सुनकर धन २ करता हुआ कहता है हमने एक एक की परीक्षा करी है। मगर यह निश्चय हुआ है कि मोहजीत राजा का सारा कुटुम्ब ही निर्मोही है अब तपस्वी निराश होके भगवान की स्तुति करता भया।

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—क्या राजा क्या रंक है, क्या तपी को मान।
जिस पर प्रभु कृपा करें, सो मूर्ति भगवान॥

अर्थ—तपस्वी कहता भया, हम तपस्या का क्या वृथा मान करें ? चाहे राजा होवे चाहे कङ्गाल होवे, जिसपर भगवान कृपा करें, वह मोह रूपी जाल के दुखों से छूट जाता है । इस प्रकार मोहजीत राजा की कथा सम्पूर्ण हुई ।

* इति शुभम ॐ तत्सत् *

भजन

है कोई दम की बात जगत में है कोई दम की बात । टेक० ॥
मुट्ठी बाँधे आयौ जग में हाथ पसारे जात ॥ है० ॥
धन योवन सुख सम्पत्ति स्वप्ना संग न चल है गात ॥ है० ॥
पल पल घटना क्षण नहीं बढ़ना जाय वृथा दिन रात ॥ है० ॥
सम्हल तुम्हारे शिर पर रिपु है काल लगाये घात ॥ है० ॥
कहाँ गये वह संग सँगाती कहाँ गये पितु मात ॥ है० ॥
जग सराय में रहना थोड़ा उठ जाये परभात ॥ है० ॥
त्यागा धर्म कपट नहिं छोड़ा क्यों जग ठग ठग खात ॥ है० ॥
नवलसिंह जब अंत समय हो हाथ मले पछतात ॥ है० ॥

जिज्ञासू की प्रार्थना

दोहा—बारम्बार प्रणाम हो, सर्वज्ञ ईश अनूप ।
द्रष्टा सर्व अधार तू, प्रेरक चेतन रूप ॥१॥
अन्तरयामी सर्व का, सदा जीव के साथ ।
इच्छा पूर्ण कीजिये, आप सर्व के नाथ ॥२॥
कृपासिन्धु दयाल जी, ब्रह्म स्वरूप अपार ।
मुझ अनाथ की बीनती, करो जगत से पार ॥३॥
दुःख रूप संसार यह, जन्म-मरण की खान ।
आप निकासो दयाकर, देर न कीजे आन ॥४॥

परम पिता जो आप हो, सदा हमारे साथ ।
गिरा अनादि भूल से, कोई न पकड़ें हाथ ॥५॥
दीजे बुद्धि विचार की, जानु अपना रूप ।
जन्म-मरण से रहित जो, पूरण शुद्ध स्वरूप ॥६॥
चेतन ब्रह्म अपार जो, सर्व अधार अनन्द ।
शुद्ध बुद्धि से जानिये, लखे नहीं मतिमन्दा ॥७॥
आठ पहर चिंतन करूं, बिसरे नहीं क्षण एक ।
भगवन कृपा कीजिये, मनमें होय विवेक ॥८॥

कुण्डली

ताली बिन ताला न खुले, गुरु बिन होय न ज्ञान ।
ज्ञान बिना नहीं मुक्त है, ये सर्वत्र प्रमान ॥
ये सर्वत्र प्रमान, वेद भी ऐसे गावे ।
पढ़े गुरू बिन ग्रंथ नहीं अज्ञान नसावे ॥
कहे दास हरनाम, वृथा बाग बिन माली ।
होय न गुरु बिन ज्ञान, खुले न ताला बिन ताली ।

दोहा—आपे छन्द बनावता, आपे आप छपाय ॥
आपे छापे शोध के, आपे पाठक भाय ॥
कृपासिन्धु सब सन्त जन, कृपालु परम उदार ।
भूल चूक जो हो कहीं, लीजे स्वयं सुधार ॥
या दुनिया में आय के, कर लीजे दो काम ।
देने को टुकडा भला, लेने को हरिनाम ॥

ॐ तत्सत् ब्रह्म अर्पणमस्तु

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः ! ! शान्तिः !!!

ॐ

मुद्रण तथा बाईन्डिंग
भरत प्रिन्टरी
न्यु मार्केट, पांजरापोल,
रीलीफ रोड, अहमदाबाद-१.

ॐ